जवाहर लाल
नेहरू
बेनकाब

हंसराज रहबर

अपनी बात

इतिहास के अध्ययन का उद्देश्य यह होता है कि तथ्यों को समझकर सत्य की खोज की जाये।

तथ्यो का अपना भौतिक अस्तित्व होता है और सत्य जिस चीज़ का नाम है वह इन तथ्यो के आंतरिक संबंधो और नियमो से निर्धारित होता है। तथ्य और उनके नियम चूंकि बदलते रहते है, इसलिए सत्य का स्वरूप भी बदलता रहा है।

जवाहरलाल नेहरू और गाँधी हमारे राष्ट्रीय संघर्ष के प्रमुख नेता थे, उनके जीवन के अध्ययन का मतलब है, राष्ट्रीय सघर्ष के इतिहास का अध्ययन प्रस्तुत करना। व्यक्ति आते है जाते हैं, पर राष्ट्र अपनी जगह बना रहता है। उसका जीवन एक सतत् बहती नदी के समान है, समय का एक अटूट क्रम है। इसलिए इतिहास की कोई प्रक्रिया अपने ही युग मे समाप्त नही हो जाती, वह अपने बाद के इतिहास की घटनाओं और प्रक्रियाओ को प्रभावित करती रहती है। यह प्रभाव अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। दरअसल अच्छे बुरे का निर्णय वर्ग-दृष्टिकोण से होता है। जिस या जिन वर्गों के हाथ मे सत्ता होती है, वे अपने प्रचार के विशाल साधनो से बुरे प्रभाव को भी अच्छा कर दिखाते हैं और उसे अपने स्थापित स्वार्थो की रक्षा के लिए इस्तेमाल करते है।

हमारे राष्ट्रीय सघर्ष की प्रक्रिया भी १९४७ मे या गाँधी और

जवाहर की मौत के बाद समाप्त नही हो गई, वह आज भी हमारे चिंतन और कर्म को न सिर्फ राजनीति के क्षेत्र मे बल्कि साहित्य, सस्कृति और समाज के हर क्षेत्र मे प्रभावित कर रही है। गाँधी और जवाहरलाल हमारे इस राष्ट्रीय सघर्ष के नायक और उपनायक थे, इसलिए उनका व्यक्तित्व इस प्रभाव को मूर्तरूप प्रदान करता है। इसीलिए उन पर बहुत-कुछ लिखा जा चुका है, लिखा जा रहा है और लिखा जायगा।

और मैंने भी इसीलिए जवाहरलाल नेहरू के जीवन का यह अध्ययन प्रस्तुत करने की ज़रूरत महसूस की।

यह गाँधी शताब्दी का वर्ष है और शताब्दी मनाने का उद्देश्य भी यही है कि गाँधी ने नायक के रूप मे राष्ट्रीय सघर्ष मे जो भूमिका अदा की, उसे उजागर किया जाये। मेरा यह अध्ययन भी इसी सिलसिले की एक कड़ी है। कडी इसलिए है कि जवाहरलाल और गाँधी एक ही रूप है और जवाहरलाल के चरित्र-विश्लेषण से भी गाँधी को समझने मे मदद मिलती है। जवाहरलाल हमारे राष्ट्रीय सघर्ष मे वामपक्ष के नेता मशहूर रहे और उनका सम्बन्ध समाजवादी विचार-धारा से जोड़ा जाता है, पर हकीकत यह है कि उन्होने बातें चाहे कुछ भी की, उनका व्यवहार हमेशा गाँधीवादी रहा।

नवीन शाहदरा
दिल्ली-३२
९-२-६९

—हंसराज रहबर

पुरखे

जवाहरलाल नेहरू के बारे में यह बात अक्सर कही जाती है कि वह एक बड़े बाप के बेटे थे, इसलिए देश की राजनीति मे बहुत जल्दी बहुत बड़े आदमी बन गये। इसमे शक नही कि मोतीलाल नेहरू के बडा आदमी होने से जवाहरलाल को भी बडा आदमी बनने मे मदद मिली, लेकिन बेटे के कुछ अपने विशेष गुण थे जो बाप के गुणों से सर्वथा विपरीत थे और जिनकी चर्चा हम 'बाप-बेटा' नाम के परिच्छेद मे अलग से करेंगे। दरअसल जवाहरलाल नेहरू अपने इन्ही विशेष गुणो के कारण बडा आदमी बनने मे सफल हुए।

उनके गुण और स्वभाव को समझने के लिये उनके कुल और कुटुम्ब को समझना भी जरूरी है क्योंकि कुल और कुटुम्ब से जो संस्कार विरासत मे मिलते हैं, मनुष्य अगर विशेष परिस्थितियो और संघर्षों मे पड़कर उन्हे झटक न दे तो इन्हीं संस्कारो के आधार पर उसका चरित्र-निर्माण होता है।

जवाहरलाल नेहरू वंश के नाते कश्मीरी पंडित थे। यह अपनी संस्कृत की विद्वत्ता के कारण राज-दरबारो मे आदर-सम्मान पाने वाला पुरोहित-वर्ग था, जिसे हम आजकल की परिभाषा मे राज-भक्त बुद्धिजीवी वर्ग भी कह सकते हैं। जब मुसलमानो का राज आया और फारसी दरबारी भाषा बनी तो इस वंश के लोगो ने चट फारसी पढना शुरू कर दी। इसी कारण जवाहरलाल नेहरू के राजकौल नाम के एक पुरखे कोई ढाई सौ बरस पहले अठारहवी सदी के

शुरू मे कश्मीर छोडकर दिल्ली आ बसे । वह सस्कृत और फारसी के माने हुए विद्वान थे । ये मुगल साम्राज्य के पतन के दिन थे । औरग-जेव मर चुका था और फर्रुखसियर बादशाह था । एक बार जब वह कश्मीर गया तो उसकी नज़र राजकौल पर पडी । उसी के कहने से १७१६ के आस-पास कौल परिवार दिल्ली आया । बादशाह ने उन्हे एक बहुत बडी जागीर के अलावा, एक मकान भी दिया, जो ठीक नहर के किनारे स्थित था और इसी कारण उनका नाम 'नेहरू' पडा । धीरे-धीरे कौल झड गया और नेहरू शेष रह गया ।

जैसे-जैसे मुगलो का वैभव घटा नेहरू परिवार की जागीर भी घटते-घटते खत्म-सी हो गई । जवाहरलाल के परदादा लक्ष्मी नारायण नेहरू ने हवा का रुख पहचाना और उन्होने मुगलो के बजाय अग्रेज की नौकरी कर ली । वह दिल्ली दरबार मे कम्पनी सरकार के पहले वकील नियुक्त हुए ।

जवाहरलाल नेहरू के दादा गगाधर नेहरू १८५७ के स्वाधीनता सग्राम के कुछ पहले तक दिल्ली के कोतवाल थे । १८६१ मे जब वह ३४ साल के जवान आदमी थे, उनकी अकाल मृत्यु हो गई । 'मेरी कहानी' मे जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है "मेरे दादा की एक छोटी तस्वीर हमारे यहाँ है, जिसमे वह मुगलो का दरबारी लिबास पहने और हाथ मे एक टेढी तलवार लिये हुए हैं । उसमे वह एक मुगल सरदार जैसे लगते है । हालाकि शक्ल-सूरत उनकी कश्मीरियो की-सी ही थी ।"

मोतीलाल का जन्म पिता की मृत्यु के तीन महीने बाद ६ मई १८६१ को आगरा मे हुआ । १८५७ के बाद बहुत से परिवार दिल्ली छोडकर इधर-उधर चले गये थे । इसी हलचल मे नेहरू परिवार भी दिल्ली से आगरा चला आया था । मोतीलाल के दो भाई और थे, जो उम्र मे इतने बडे थे कि मोतीलाल के जन्म के समय वे दोनो जवान थे । अब इन लोगो ने फारसी के साथ अग्रेजी पढ़ना शुरू कर दी थी । दिल्ली से आगरा आते समय कुछ अग्रेज़ सिपाहियो ने उन्हे घेर

लिया था। दोनो भाइयो की अंग्रेजी जानकारी के कारण ही परिवार की जान बची थी।

आगरा पहुचने के थोडे ही दिन बाद मोतीलाल के बड़े भाई बसीधर ब्रिटिश सरकार के न्याय-विभाग मे नौकर हो गये। नौकरी के कारण जगह-जगह उनका तबादला होता था, जिससे परिवार के साथ उनका सम्बन्ध कट-सा गया। जवाहरलाल के छोटे ताऊ नन्दलाल नेहरू राजपूताना की एक छोटी-सी रियासत खेतडी के कोई दस साल तक दीवान रहे। बाद मे उन्होने नौकरी छोडकर कानून पढा और आगरे मे वकालत शुरू कर दी। जब हाईकोर्ट आगरे से इलाहाबाद चला गया तो नेहरू-परिवार भी इलाहाबाद मे जा बसा।

मोतीलाल नेहरू का लालन-पालन इसी दूसरे भाई नन्दलाल नेहरू ने किया। बच्चो मे सबसे छोटा होने के कारण मोतीलाल स्वभावत माँ के लाडले थे। जवाहरलाल ने 'मेरी कहानी' मे दादी का यह शब्द-चित्र प्रस्तुत किया है : "वह बूढी थी और बडी दबग थी। किसी की ताब नही थी कि उनकी बात को टाले। उनको मरे अब पचास वर्ष हो गये होगे, मगर बूढी कश्मीरी स्त्रिया अब भी उनको याद करती है और कहती है कि वह बडी जोरदार औरत थी। अगर किसी ने उनकी मर्जी के खिलाफ कोई काम किया तो बस मौत ही समझिए।"

मोतीलाल पहले कानपुर मे और फिर इलाहाबाद मे पढते रहे। पढने-लिखने के बजाय खेल-कूद मे उनकी ज्यादा दिलचस्पी थी। कालेज मे वह सरकश लडको के अगुआ समझे जाते थे। 'मेरी कहानी' मे जवाहरलाल ने लिखा है : "उनका झुकाव पश्चिमी लिबास की तरफ हो गया था और सो भी उस वक्त जबकि हिन्दुस्तान मे कलकत्ता और बम्बई जैसे बडे शहरो को छोडकर कही इसका चलन नही था। वह तेज मिजाज और अक्खड थे, तो भी उनके अंग्रेज प्रोफेसर उनको बहुत चाहते थे और अक्सर मुश्किलो से बचा लिया करते थे। वह उनकी

वह अपने पेशे में जी-जान से जुट गये। बड़े भाई के करीब-करीब सभी मुकदमे उन्हें मिल गये और उनमें खूब सफलता प्राप्त हुई। छोटी ही उम्र में अपने पेशे में उन्हें इतनी नामवरी हासिल हुई कि मुकदमे धड़ाधड़ आने लगे और रुपया मेंह की तरह बरसने लगा। अब उन्होंने खेल-तमाशों और दूसरी सारी बातों से ध्यान हटाकर अपनी पूरी शक्ति वकालत में लगा दी थी। कांग्रेस चाहे उन दिनों मध्य वर्ग के पढ़े-लिखे लोगों, डाक्टरों और वकीलों की ही जमात थी, लेकिन मोतीलाल ने इस तरफ जरा भी ध्यान नहीं दिया। बेटा लिखता है:

"साधारण अर्थ में वह जरूर ही राष्ट्रवादी थे। मगर वह अंग्रेजों और उनके तौर-तरीकों के कद्रदाँ थे। उनका यह ख्याल बन गया था कि हमारे देशवासी ही नीचे गिर गये हैं और वे जिस हालत में हैं,

बहुत-कुछ उसी के लायक भी हैं। जो राजनैतिक लोग बातें ही किया करते हैं, करते-धरते कुछ नही, उनसे वह मन ही मन कुछ नफरत सी करते थे। हालाँकि वह यह नही जानते थे कि इससे ज्यादा और वे कर ही क्या सकते थे ? हाँ, एक और खयाल भी उनके दिमाग मे था, जो उनकी कामयाबी के नशे से पैदा हुआ था। वह यह कि जो राजनीति मे पडे हैं, उनमे ज्यादातर—सब नही—वे लोग है, जो अपने जीवन मे नाकामयाब हो चुके है।"

खैर, ज्यो-ज्यो आमदनी बढ रही थी, रहन-सहन मे भी परिवर्तन आ रहा था। मोतीलाल दिलेर, तबियत के शाह-खर्च आदमी थे, फिर उन्हे अपने-आप पर यह भरोसा था कि जितना खर्च करेंगे उससे कही अधिक बात की बात मे कमा लेगे। नतीजा यह हुआ कि परिवार का जीवन देखते ही देखते पूर्ण रूप से विलायती साँचे मे ढल गया।

इसी वातावरण मे जवाहरलाल नेहरू का जन्म १४ नवम्बर १८८९ मे हुआ।

बचपन और शिक्षा

जवाहरलाल मोतीलाल के इकलौते बेटे थे, जाहिर है कि लाडले बेटे थे। विजय लक्ष्मी और कृष्णा जवाहरलाल की दो छोटी बहने थी जो क्रमश ग्यारह और चौदह साल बाद पैदा हुई। वैसे नेहरू-परिवार एक भरा-पूरा परिवार था। जवाहरलाल के बहुत से चचेरे भाई बहन थे। लेकिन उम्र मे सब काफी बडे थे और स्कूल जाते थे। जवाहरलाल उन सबके लिए नन्हा-मुन्हा खिलौना थे।

जवाहरलाल का लालन-पालन बिलकुल अग्रेजी ढग से हुआ और उनकी देख-रेख के लिए एक अग्रेज आया रखी गई। हर साल जवाहरलाल की वर्षगाठ बडे धूम-धाम से मनाई जाती थी। उस दिन उन्हे गेहू तथा दूसरे अनाज से एक बहुत बडी तराजू मे तोला जाता था और यह अनाज गरीबो मे बाँट दिया जाता। माँ अपने लाडले को अपने ही हाथो से नहला-धुलाकर नए कीमती कपड़े पहनाती, फिर जवाहरलाल को तरह-तरह के उपहार दिये जाते और रात को शानदार दावत होती थी जिसमे शहर के रईसो और वकीलो के अलावा मोतीलाल नेहरू के अग्रेज दोस्त भी शामिल होते थे।

जवाहरलाल को और बच्चो की तरह स्कूल नही भेजा गया, उनकी शिक्षा अग्रेज महिलाओ द्वारा घर पर ही हुई। जब वह ग्यारह साल के हुए तो एफ० टी० ब्रुक्स नाम के एक अग्रेज अध्यापक

को उनकी शिक्षा के लिए नियुक्त किया गया। उस समय ये लोग 'आनद भवन' मे रहते थे, जो एक शाहाना महल था और मोतीलाल नेहरू ने हाल ही मे बनवाया था।

ब्रुक्स भी उनके साथ ही आनद भवन मे रहता था। इस व्यक्ति की सगत ने जवाहरलाल को कई तरह से प्रभावित किया। पहली बात तो यह कि जवाहरलाल को किताबें पढने की चाट लगी और उन्हे केरोल तथा किप्लिग की पुस्तके खास तौर पर पसद आई। सर्वेंटीज का विख्यात उपन्यास 'डान क्विकजाट' भी इन्ही दिनो पढा।

दूसरे ब्रुक्स ने विज्ञान के रहस्यो से भी जवाहरलाल का परिचय कराया। जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि आनद भवन मे विज्ञान की एक प्रयोगशाला खड़ी कर ली गई थी जिसमे वह घटो वस्तु-विज्ञान और रसायन-शास्त्र के प्रयोग किया करते थे, जो बड़े दिलचस्प मालूम होते थे।

तीसरी बात यह कि ब्रुक्स की सगत मे जवाहरलाल पर थियोसाफी का खब्त सवार हुआ और कुछ समय तक बड़े ज़ोर से सवार रहा।

ब्रुक्स प्रसिद्ध कांग्रेस नेत्री मिसेज एनी बेसेण्ट की सिफारिश से जवाहरलाल का अध्यापक बना था। मिसेज बेसेण्ट भी थियोसॉफिस्ट[1] थी और ब्रुक्स भी थियोसॉफिस्ट था। उसके कमरे मे हर रोज थियोसॉफिस्टो की सभाएँ हुआ करती थी जिनमे 'अवतारो', 'काम-शरीरो', 'अलौकिक शरीरो' और 'दिव्य पुरुषो' के आस-पास रहने

---

१. थियोसॉफिस्ट ब्रह्मवाद के अनुयायी को कहते हैं। यह एक ऐसा धार्मिक सम्प्रदाय है जो अवतारो मे विश्वास करता है और भगवान के निकट पहुँचने के अध्यात्मिक आनन्द 'में डूब जाना जरूरी समझता है।

वाले 'ब्रह्म-तेज' की चर्चा रहती थी और फिर यूनानी, ईरानी दार्शनिको के अलावा बुद्ध-मत और हिन्दु-मत के धार्मिक ग्रन्थो की भी महिमा गाई जाती थी। जवाहरलाल ने भी इन सभाओ मे जाना शुरू किया और इन सभाओ का जो प्रभाव उन पर पड़ा, उसके बारे मे 'मेरी कहानी' मे लिखा है—"वह सब कुछ मेरी समझ मे तो नही आता था; परन्तु वह मुझे बहुत रहस्यपूर्ण और लुभावना मालूम होता था, और मैं मानने लगा था कि सारे विश्व के रहस्यो की कुजी यही है।········ मुझे 'काम-शरीरो' के सपने आते और मैं बड़ी दूर तक आकाश मे उडता जाता। बिना किसी विमान के यो ही ऊँचे आकाश मे उड़ते जाने के सपने मुझे जीवन मे अक्सर आया करते हैं।"

जवाहरलाल थियोसॉफीकल सोसाइटी का सदस्य भी बन गये और खुद मिसेज बेसेण्ट ने उन्हे दीक्षा दी। लेकिन तीन साल बाद जब ब्रुक्स चला गया तब थियोसॉफी का खब्त भी जवाहरलाल के सिर से उतर गया। मगर इसका प्रभाव स्थाई रूप से बना रहा। इसी कारण वह हमेशा हवा मे उड़ने के सपने देखते रहे और इसी कारण धार्मिक रहस्यवाद उनके विज्ञान मे हमेशा गडमड रहा। दर-असल यह बात उनके वर्ग-स्वभाव से ठीक मेल खाती थी।

चौथा प्रभाव जवाहरलाल नेहरू पर ऐतिहासिक परिस्थितियो का पड़ा। जब उनकी उम्र पद्रह साल थी रूस और जापान मे युद्ध छिड़ गया। एशिया के लोगो की इस युद्ध मे खास दिलचस्पी थी। जवाहरलाल ताजा अखबार पढ़ने के लिए उतावले रहते और जापानियो की विजय से उनका दिल उत्साह से भर जाता। इससे उनकी जापान मे दिलचस्पी बढ़ी। उन्होंने सिर्फ जापान का इतिहास ही नही बल्कि पुराने वीर सरदारो की कहानियाँ भी रूचि से पढ़ी।

जवाहरलाल ने 'मेरी कहानी' मे अपने इस प्रभाव को इन शब्दो मे व्यक्त किया है :

"मेरा दिल राष्ट्रीय भावो से भरा रहता था। मैं यूरोप के पजे

से एशिया और हिन्दुस्तान को आजाद करने के भावो मे डूबा रहता था। मै बहादुरी के बडे-बडे मनसूबे बाँधा करता था कि कैसे हाथ मे तलवार लेकर मै हिन्दुस्तान को आज़ाद कराने के लिए लड़ूंगा।"

और हम देखेंगे कि उन्होने सिर्फ मनसूबे ही बाँधे, तलवार की तरफ हाथ कभी नही बढाया, बल्कि तलवार उठाने का हमेशा विरोध ही किया।

मई १६०५ मे उन्हे आगे पढ़ने के लिए इंगलैड भेज दिया गया और वहाँ वह लदन के हॅरो स्कूल मे भर्ती हो गये। इस स्कूल मे अंग्रेज लार्डो और रईसो के लडके पढते थे। हिन्दुस्तानी राजे-महाराजे और नवाबो के लड़के भी प्रायः यही दाखिल होते थे। जब जवाहरलाल नेहरू भर्ती हुए थे तब भी चार-पाँच हिन्दुस्तानी लडके वहाँ पढ रहे थे। उनमे एक महाराजा बड़ौदा का लड़का था, जो जवाहरलाल से बहुत आगे था। दूसरा लड़का महाराजा कपूरथला का बडा बटा परमजीतसिह था। उसका स्वभाव बड़ा ही विचित्र था। लडके उसके तौर-तरीको का मजाक उडाते तो वह चिढ़कर धमकी देता कि जब तुम कपूरथला आओगे, तब मैं तुम्हारी खबर लूंगा। इस पर उसकी और भी हँसी उड़ती।

घर से दूर और अजनबियो के दरम्यान रहने का जवाहरलाल का यह पहला मौका था। पहले-पहल तो उनका मन वहाँ नही लगता था। पर धीरे-धीरे अपने आपको वातावरण के अनुकूल बना लिया। स्कूल के कामो के अलावा वह बाहर की दुनिया मे भी दिलचस्पी लेने लगे।

उन दिनो हवाई जहाज उड़ना शुरू ही हुआ था। यह वह जमाना था जब राइट ब्रदर्स ने हवाई जहाज़ का आविष्कार किया था। विज्ञान के आविष्कार मे और खासकर हवाई जहाजो मे जवाहरलाल की गहरी दिलचस्पी थी। उन्होने एक बार जोश मे भरकर पिता को लिखा कि वह दिन अब दूर नही, जब मै हर इतवार

की छुट्टी मे हवाई जहाज द्वारा उडकर आपसे मिलने हिन्दुस्तान आया करूँगा ।

१९०५ के अत मे ब्रिटिश पार्लमेंट के चुनाव हुए, जिनमे लिबरल पार्टी की भारी जीत हुई। जवाहरलाल नेहरू ने इसमे इतनी दिलचस्पी ली कि ससदीय चुनाव प्रणाली को बखूबी समझ लिया। बाद मे उनके दर्जे के मास्टर ने इस सम्बध मे कुछ सवाल पूछे तो अग्रेज लडके भी उनका जवाब नही दे पाये। लेकिन जवाहरलाल ने सब सवालो का ठीक-ठीक जवाब दिया । उन्हे तो नए मत्रिमडल के करीब-करीब सभी सदस्यो के नाम भी याद थे ।

स्कूल मे अच्छा काम करने के लिए उन्हे एक पुस्तक इनाम मे मिली । यह, इटली के देशभक्त नेता गैरी बाल्डी से सम्बधित थी । इस पुस्तक को पढने से पता चला कि गैरी बाल्डी ने कैसे अपने देश को फ्रास और आस्ट्रिया की गुलामी से आजाद किया था ।

उन दिनो हिन्दुस्तान मे भी बडी-बडी घटनाएँ घट रही थी और काग्रेस का रूप बदल रहा था। लार्ड कर्जन ने बगाल को विभाजित करने की योजना बनाई थी और इसके विरुद्ध एक देश-व्यापी आदोलन उठ खडा हुआ था । विदेशी कपडे का बायकाट और स्वदेशी का इस्तेमाल इस आदोलन का बडा नारा था । महा-राष्ट्र के बाल गगाधर तिलक, पजाब के लाला लाजपत राय और बगाल के विपन चद्रपाल इस आदोलन मे इतने प्रसिद्ध हुए कि हिन्दुस्तान भर मे बाल, लाल और पाल तीन नाम एक साथ लिए जाने लगे । इस आदोलन की खबरें भी जवाहरलाल को आदोलित करने लगी । ये खबरे इगलैंड के अखबारो मे कम छपती थी । पर वह अपने चचेरे भाइयो से इनका पता लगाते रहते थे ।

दो बरस हैरो मे बिताकर जवाहरलाल अक्तूबर १९०७ मे केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज मे पहुँच गये । तब उनकी उम्र सत्रह-अठारह बरस के करीब थी । जिंदगी ने लडकपन बिताकर जवानी की देहरी

पर कदम रखा था। और लिखा है कि "मै ऐंठ के साथ केम्ब्रिज के विशाल भवनो और उसकी तग गलियो मे चक्कर काटा करता और यदि कोई जान-पहचान वाला मिल जाता तो बडा खुश होता।"

केम्ब्रिज का माहौल हैरो से एक दम भिन्न था। यहाँ जवाहरलाल को जो लोग मिले वे प्राय: सभी जवानी के नशे मे ऐंठकर चलने वाले थे। वे अपनी विद्वत्ता बघारने के लिए साहित्य और इतिहास के बारे मे, राजनीति और अर्थशास्त्र के बारे मे, बढ-चढ़ कर बाते करते थे। कोई भी अपना अज्ञान दूसरे पर जाहिर नही करना चाहता था। इसलिए हर एक बात-चीत मे ऊँची-ऊँची किताबों के हवाले देता और बडे-बडे लेखको तथा विचारको के नाम गिनवाता था। जवाहरलाल ने प्राकृतिक विज्ञान का कोर्स लिया था, जिसके विषय रसायन-शास्त्र, भू-गर्भ-शास्त्र और वनस्पति शास्त्र थे। पर अपने-आपको वातावरण के अनुकूल ढालने और दूसरो की बात-चीत मे सफलतापूर्ण भाग लेन के लिए उन्होने भी साहित्य, दर्शन तथा इतिहास की पुस्तके पढी। बर्नार्ड शॉ, आस्कर वाइल्ड और वाल्टर पेटर केम्ब्रिज के विद्यार्थियो के प्रिय साहित्यकार थे, पर जवाहरलाल के अपने शब्दो मे "उन दिनों केम्ब्रिज मे नीत्शे की धूम थी।" नीत्शे दुनिया का सबसे बडा सनकी दार्शनिक है। उसके नजदीक 'झूठ सच, और सच झूठ है।' नैतिक मूल्यो को—नेकी-बदी को—सिर्फ निर्बल लोग ही मानते है, जो सबल है, अति मानव है, वह इन भ्रमो और बधनो मे नही पडता। उसका अपना आचरण ही नैतिकता है और वह कानून से ऊँचा है।

नीत्शे का दर्शन केम्ब्रिज के अग्रेज लडको की मनोवृत्ति के ठीक अनुकूल था। ब्रिटिश साम्राज्य उन दिनो दुनिया का सबसे बड़ा साम्राज्य था, जिस पर सूर्य नही डूबता था। केम्ब्रिज मे पढने वाले साम्राज्य के चहेते बेटो मे अति मानव की भावना उत्पन्न हो जाना

स्वभाविक बात थी । यहाँ से निकलकर वे उपनिवेशो मे शासक बनकर जाते थे। वहाँ की पिछडी हुई गरीब जनता पर जुल्म ढाना और उसे लूट-खसोट कर अपने और अपने सजातियो के लिए सुख आनद और आराम के साधन जुटाना वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे । नीत्शे का दर्शन उन्हे हर तरह की आत्मग्लानि से बचाये रखता था । आस्कर वाइल्ड और वाल्टर पेटर का साहित्य भी नीति और धर्म के दमनकारी बधनो से ऊपर उठकर आनद से जीने की लालसा जगाता और भोगवाद की भावना को दृढ बनाता था ।

जवाहरलाल ने अपने पर इस वातावरण के प्रभाव को 'मेरी कहानी' मे यो व्यक्त किया है। " ··मेरा रुझान जीवन का सर्वोत्तम उपभोग करने और उसका पूरा तथा विविध आनद लेने की ओर था। मैं जीवन का उपभोग करता था और इस बात से इनकार करता था कि मैं उसमे पाप की कोई बात क्यो समझूँ ? साथ ही खतरे और साहस के काम भी मुझे अपनी ओर आकर्षित करते थे । पिताजी की तरह मैं भी हर वक्त कुछ हद तक जुआरी था। पहले रुपये का जुआरी और फिर बडी-बडी बाजियो का—जीवन के बडे-बडे आदर्शों का ।"

जवाहरलाल जितने दिन इगलैंड मे रहे, उनमे जीवन के सर्वोत्तम उपभोग और विविध आनद लेने का रुझान बराबर बढता रहा। १९१० मे केम्ब्रिज से वह 'डिग्री लेकर निकले और कानून पढने के लिए इनर टैम्पिल मे भर्ती हुए। वहाँ उन्हे हॅरो के कुछ पुराने दोस्त मिले । उनके साथ रहने से जवाहरलाल की आदते और भी खर्चीली हो गईं । बाप खर्च के लिए काफी पैसा भेजता था, पर बेटा उससे ज्यादा खर्च कर डालता था। इससे मोतीलाल को सन्देह हुआ कि जवाहरलाल कही बुरी संगत में तो नही पड गया। लेकिन ऐसी कोई बात नहीं थी ।

केम्ब्रिज से निकलने के बाद जवाहरलाल के सामने जब यह सवाल आया कि उन्हे कौन-सा 'कैरियर' चुनना चाहिए तो बहुत

समझ-सोचकर बाप का पेशा अपनाने का निर्णय लिया। लेकिन वकालत पढने मे उन्हे खास दिक्कत नही हुई इन दो सालो मे वह लदन मे खूब इधर-उधर घूमे, आयरलैंड गये और जर्मनी, फ्रास आदि यूरोप के देशो का भी भ्रमण किया।

१९१२ मे उन्होने बैरिस्टरी पास की और सात साल बाद इंगलैंड से घर की ओर चले।

स्वदेश वापसी

जवाहरलाल ने स्वदेश लौटकर हाईकोर्ट मे वकालत शुरू की। शुरू-शुरू के दो-तीन महीने मेल-मुलाकातो और पुराने सम्बध स्थापित करने मे वडे आनद मे बीते। पर धीरे-धीरे जीवन बेकार, उद्देश्यहीन और नीरस महसूस होने लगा। कारण इसका वह खुद ही यह वताते हैं—"इगलैंड की अपनी सात वरस की जिन्दगी मे मेरी जो आदतें और जो भावनाएँ बन गई थी, वे जिन चीजो को मैं यहाँ देखता था उनसे मेल नहीं खाती थी। तक्दीर से मेरे घर का वायुमडल वहुत अनुकूल था और उससे कुछ शान्ति भी मिलती थी। परन्तु उतना काफी न था। उसके वाद तो वही वार लायब्रेरी, वही क्लब और दोनो मे वही साथी, जो उन्ही पुराने विषयो पर, आमतौर पर कानूनी पेशे सम्वन्धी बातो पर ही वार-वार बातें करते थे। निस्सदेह यह वायुमडल ऐसा न था जिससे बुद्धि को कुछ गति या स्फूर्ति मिले, और मेरे मन मे जीवन के बिलकुल नीरसपन का भाव घर करने लगा कहने योग्य विनोद या प्रमोद की वाते भी न थी।"

जवाहरलाल को जो पहला मुकदमा मिला, उसकी फीस पाँच सौ रुपये थी। इस सम्बन्ध मे मोतीलाल नेहरू का एक पत्र देखिए जो उन्होंने २१ अक्तूबर १९१२ को वेटे के नाम लिखा था :

"प्रिय जवाहर,

एक अति जोशीले मवक्किल ने तुम्हे फीस के रूप में ५००) का मनिआर्डर भेजा है और यह मसूरी मे तुम्हारे पास पुन प्रेषित

हुआ है। तुम्हारे पिता को जो पहली फीस मिली थी वह ५) रु० थी। इससे स्पष्ट है कि तुम अपने पिता से सौ गुना ज्यादा हो। मुझे इच्छा होती है कि मैं अपनी बजाये अपना बेटा होता। इस मवक्किल का नाम राव महाराज सिंह है। वह कामगज के है। हाई कोर्ट मे उनके कई मुकदमे हैं और मुझे नही मालूम कि वह उनमे से किसमे तुम्हे नियुक्त करना चाहते हैं। पर यह धन तुम्हारा है और तुम्हारी माताजी को खुशी होगी कि तुम्हे यह पहली फीस के रूप मे मिला। इस प्रकार से यह उस व्यक्ति के लिए दोहरे आनद की बात है, जिसने ५) रु० की फीस से शुरू किया।

तुम्हारा प्रिय पिता"

इसी साल दिसम्बर मे काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन बांकीपुर मे हुआ। जवाहरलाल ने डेलिगेट की हैसियत से इसमे भाग लिया और 'मेरी कहानी' मे उसका यह चित्र प्रस्तुत किया है :

"बहुत हद तक वह अग्रेजी जानने वाले उच्च श्रेणी के लोगो का उत्सव था, जहाँ सुबह पहनने के कोट और सुन्दर इस्त्री किये हुए पतलून बहुत दिखाई देते थे। वस्तुत वह सामाजिक उत्सव था, जिसमे किसी प्रकार की राजनीतिक गर्मागर्मी न थी, गोखले जो हाल ही अफ्रीका मे लौटकर आये थे, उसमे उपस्थित थे। उस अधिवेशन के प्रमुख व्यक्ति वही थे। उनकी तेजस्विता, उनकी सच्चाई और उनकी शक्ति से वहां आये उन थोडे-से व्यक्तियो मे वही एक ऐसे मालूम होते थे, जो राजनीतिक मामलो पर संजीदगी से विचार करते थे और उनके सम्बध मे सोचते थे। मुझ पर उनका अच्छा प्रभाव पड़ा।"

गोपाल कृष्ण गोखले उन दिनो पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य भी थे। इस हैसियत से उन्हे अपने लिए फर्स्ट क्लास का डिब्बा रिजर्व कराने का हक हासिल था। १९०७ के सूरत अधिवेशन मे जब कांग्रेस गर्मदल और नर्मदल मे बंटी तो गर्मदल के नेता तिलक और नर्मदल अर्थात् माडरेटो के नेता गोखले थे। गांधीजी

और राजेन्द्र प्रसाद राजनीति मे इन्हे अपना गुरू मानते थे और जवाहरलाल भी इन्ही मे प्रभावित हुए।

नर्मदल और गर्मदल की नीतियो को समझने के लिए कांग्रेस के पिछले इतिहास पर एक नजर डालनी होगी। उसी सदर्भ मे हम राजनीति मे जवाहरलाल नेहरू और उनके पिता मोतीलाल नेहरू की भूमिका को समझ पायेंगे।

यह एक हकीकत है कि १८८५ मे कॉंग्रेस की स्थापना ह्यूम नाम के अग्रेज ने उस समय के वायसराय लार्ड डफरिन के मशविरा से की। अधिवेशन के अन्त मे ह्यूम ने डेलिगेटो के सम्मुख प्रस्ताव रखा कि हम ब्रिटिश साम्राज्य की मलका को, जिसे हम सब प्रिय हैं, जिसके हम सब बेटे हैं और जिसकी मैं जूतियाँ सीधी करने के भी लायक नही हूँ, तालियाँ बजाकर धन्यवाद दे।

कॉंग्रेस अधिवेशन की सरकारी रिपोर्ट मे लिखा है कि इस पर इतनी तालियाँ बजी कि ह्यूम का बाकी भाषण उनकी गूंज मे डूब गया।

१८८५ से १९०५ तक कांग्रेस विशुद्ध रूप से राजभक्त संस्था बनी रही, जिसमे डाक्टर, वकील और उच्च वर्ग के दूसरे अग्रेजी पढे-लिखे लोग इकट्ठे होते थे। वे हिन्दुस्तानियो को अधिक सरकारी नौकरियाँ, वायसराय की लेजिस्लेटिव कौंसिल और प्रान्तो की लेजिस्लेटिव कौंसिलो मे अधिक प्रतिनिधित्व दिये जाने की मांग किया करते थे। स्वशासन की, देश की आजादी की बात वे सोच ही नही सकते थे। उनका यह विश्वास था कि देश की उन्नति के लिए ब्रिटिश सरकार का बने रहना जरूरी है और हम हिन्दुस्तानियों को शिक्षा, सस्कृति और राजनीति के क्षेत्र मे अग्रेजो से बहुत-कुछ सीखना है।

१९०६ मे कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ जिसके अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी थे। इस अधिवेशन मे 'स्वराज्य' का, विदेशी के

बहिष्कार और 'स्वदेशी' के समर्थन का प्रस्ताव पहली बार पास हुआ। साथ ही भारतीय उद्योगो और राष्ट्रीय शिक्षा को बढावा देने की बात भी कही गई थी। यो स्वराज्य, बायकाट, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा चार बाते कांग्रेस कार्यक्रम का अग बन गई।

इस कार्यक्रम के आधार पर देश-भर मे जो स्वदेशी आन्दोलन चला महज प्रस्ताव पास कर देने वाले माडरेट लोग उसमे साथ नही दे पाये और उन्ही के कारण अगले साल सूरत मे कांग्रेस नर्मदल और गर्मदल मे बँट गई।

गर्मदल वाले जिनके नेता तिलक थे कट्टरपथी राष्ट्रवादी भी कहलाते थे। कारण यह है कि उनका सामाजिक दृष्टिकोण पुनरुत्थान-वादी था और वे प्राचीन भारत के पुनरुद्धार के सपने देखते थे। उनकी यह धारणा थी कि अग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता हमारे राष्ट्रीय गौरव को नष्ट कर रही है। इसलिए वर्तमान शिक्षा का स्थान राष्ट्रीय शिक्षा को लेना चाहिए। तिलक महाराष्ट्र मे अपना राजनैतिक प्रचार शिवाजी और गणेश के नाम पर धार्मिक मेलो द्वारा करते थे और बगाल के गर्म दलिए कलकत्ता की कालिदेवी के भक्त थे। निस्सदेह ये लोग ब्रिटिश शासन के खिलाफ थे और स्वराज्य चाहते थे। लेकिन उन्होने धर्म का राजनीति से जो नाता जोड़ दिया था, उसके परिणाम आगे चलकर अच्छे नही निकले।

इसके विपरीत नर्मदल वालो अर्थात् माडरेटो ने भारतीय सस्कृति से अपना नाता तोड़ लिया था। वे पुराने सामाजिक रीति-रिवाजो को और जात-पाँत को पसद नही करते थे और वे उन्हे उन्नति-विरोधी समझते थे। उनकी दृष्टि पश्चिम की ओर थी और पाश्चात्य ढग की उन्नति की ओर उनका बहुत आकर्षण था। वे समझते थे कि हमारे देश मे ऐसी उन्नति इग्लैड के ससर्ग ही से आ सकती है। राजनीति मे ब्रिटेन की लिबरल पार्टी उनका आदर्श थी। उन्हे आशा थी कि अग्रेज खुद ही धीरे-धीरे भारतीयो को शिक्षित करके और लोकतत्र

लागू करके हिन्दुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर आस्ट्रेलिया और कनाडा जैसा स्वशासित उपनिवेश बना देगे ।

स्वदेशी आन्दोलन बहुत जबर्दस्त था । इसे अब गर्मदल चला रहा था। ब्रिटिश सरकार ने इस दल को कुचलने के लिए दमन-चक्र चलाया। १९०७ मे एक कानून पास करके राजनैतिक जलसो पर रोक लगा दी और एक नया सख्त प्रेस एक्ट बनाकर अखबारो पर प्रतिबन्ध बढा दिये । गर्मदल के नेताओ को लम्बी-लम्बी सजायें दी गई और कुछ गिरफ्तारी से बचकर विदेश भाग गये । पुलिस को जुल्म ढाने की खुली छूट दे दी गई, मीटिंगे भग की गई, पजाब के किसान विद्रोहो को निदर्यता से कुचला गया और राष्ट्रीय गीत गाने के लिए स्कूल के बच्चो तक को गिरफ्तार किया गया । अकेले बगाल मे १९०६ और १९०९ के दरम्यान ५५० राजनैतिक मुकदमे चलाये गये ।

दूसरी ओर माडरेटो को खुश करने के लिए १९०९ मे मोर्ले-मिंटो योजना की घोषणा की गई । इस योजना के अनुसार सेंट्रल लेजिस्लेटिव कौसिल मे और प्राविशल कौसिलो मे अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुने गये भारतीय प्रतिनिधियो की सख्या बढा दी गई । इन कौसिलो के कोई अधिकार नही थे । उनके सदस्य वायसराय और गवर्नरो को सिर्फ सलाह दे सकते थे । इसके अलावा १९११ मे बग-भग का प्रस्ताव भी वापस ले लिया । काँग्रेस पर अब माडरेटो का कब्जा था । उसके प्रवक्ता ने बयान दिया कि "हर एक दिल ब्रिटिश सिहासन के प्रति श्रद्धा और भक्ति से धडक रहा है और ब्रिटिश राजनीति के प्रति विश्वास और कृतज्ञता दुगुनी बढ गई है ।"

जवाहरलाल जब केम्ब्रिज मे थे तो वहाँ हिन्दुस्तानी विद्यार्थियो की "मजलिस" नाम की एक सस्था थी, जिसमे वे राजनैतिक समस्याओ पर विचार करते और भाषण देते थे । उस समय वे सब लोग बिना किसी अपवाद के तिलक दल या गर्म दल के थे और उन्हे माडरेट दल से चिढ़ थी ।

मोतीलाल १८८८ ही से कांग्रेस अधिवेशन मे भाग लेते आ रहे थे। १९०६-७ मे वह परिस्थितिवश कुछ अधिक सक्रिय हो गये। माडरेटो मे वह बहुत से लोगो को जानते थे और बहुत से उनके वकील साथी थे। यो उनका सम्बन्ध भी नर्म दल से था और गर्मदल के वह सख्त विरोधी थे। बगाल और महाराष्ट्र के गर्मदलियो की तो वह कडी आलोचना किया करते थे। जवाहरलाल को पिता की यह बात पसद नही थी। उन्होने अपने एक पत्र मे पिता के एक लेख की आलोचना करते हुए लिखा कि आपकी राजनैतिक कार्यवाहियो से ब्रिटिश सरकार बहुत खुश हुई होगी। बेटे का यह पत्र पढकर मोती-लाल बहुत झुँझलाये। उन्होने करीब-करीब यहाँ तक सोच लिया कि जवाहरलाल को फौरन इग्लैड से वापस बुला ले।

लेकिन जवाहरलाल वापस आकर जिस कांग्रेस मे शामिल हुए, उस पर माडरेटो का कब्जा था और गोखले उसके प्रमुख नेता थे। उन्होने भारत-सेवक समिति नाम की एक सस्था भी सगठित कर रखी थी। जो लोग इसके सदस्य बनते थे, वे निर्वाह-मात्र पर अपना जीवन स्वदेश-सेवा मे लगा देते थे। गोखले की इस समिति ने भी जवाहरलाल का ध्यान आकर्षित किया और उसके सदस्यो की उनके दिल मे बडी इज्जत थी, क्योकि वह एकाग्रचित्त होकर लगातार काम करते थे। लेकिन वह खुद इसके सदस्य इसलिए नही बन पाये कि "उनकी राजनीति मेरे लिए बहुत ही नर्म थी और कुछ इसलिए कि उन दिनो अपना पेशा छोडने का मेरा कोई इरादा न था।" (मेरी कहानी, पृष्ठ ५६)

राजनीति मे उन दिनो वाकई कोई खास गर्मी नही थी। जवाहर लाल नेहरू अपना वकालत करते और शिकार से जी बहलाते रहे। देश मे नौजवानो के जो क्रान्तिकारी गुप्त दल बने हुए थे, जिन पर सरकार की कडी नजर रहती थी, उनकी ओर जवाहरलाल का ध्यान जाता तो निश्चित रूप से उनके वकालत के पेशे मे विघ्न पडता।

१९१४ मे विश्व-युद्ध शुरू हुआ तो राजनीति मे एकदम हरकत आई। ब्रिटिश सरकार ने भारत रक्षा कानून पास करके झट अपना शिकजा कसा। क्रान्तिकारी दलो के जुझारू नेताओ को या तो गिरफ्तार करके जेलो मे डाल दिया या देश से निर्वासित कर दिया। काँग्रेस ने चट युद्ध मे हर तरह के समर्थन का प्रस्ताव पास करके ब्रिटिश सम्राट् के प्रति अपनी वफादारी का सबूत दिया।

तिलक को सरकार ने अपने अखबार मे प्रकाशित एक लेख के लिए १९०२ मे छ साल की सजा दी थी और बर्मा मे माडले जेल मे भेज दिया था। वह वहाँ से हाल ही मे छूटकर आये थे। उन्होने और मिसेज एनी बेसेण्ट ने अलग-अलग होमरूल लीगे कायम की। जवाहरलाल इन दोनो के सदस्य बन गये, लेकिन काम उन्होने मिसेज बेसेण्ट ही की लीग मे किया। वह उच्च वर्ग की एक अग्रेज महिला थी। हिन्दुस्तान की राजनीति मे उनकी खास दिलचस्पी थी और वह उसे अपने ही ढग से चला रही थी। वह गुलाम हिन्दुस्तानियो का उपकार कर रही थी या अग्रेज शासको का, उनके बारे मे यह बात विशेष रूप से समझने की थी। पर जवाहरलाल ने इस तथ्य पर कोई प्रकाश नही डाला हालाँकि नेहरू-परिवार से उनके पुराने गहरे सम्बन्ध थे। जवाहरलाल ने थियोसॉफी की दीक्षा भी उन्ही के हाथो ली थी।

हिन्दुस्तान की अग्रेज सरकार ने उन दिनो अपनी सारा शक्ति समुद्र पार लडे जा रहे युद्ध मे लगा रखी थी। गाँवो मे किसानो की जब्री भर्ती शुरु कर दी थी। शहर मे मध्य वर्ग के लोगो को साथ लेने के लिए उसने 'यूरोपियन डिफेंस फोर्स' ढग की 'इडियन डिफेस फोर्स' का सगठन शुरु किया था। लोगों को इसके बारे मे कई तरह की शिकायत थी। पहली शिकायत तो यह थी कि इसमे गोरे-काले का भेद-भाव बरता जाता था। अतएव यूरोपियन डिफेंस फोर्स के साथ जो व्यवहार किया जाता था, वह इस हिन्दुस्तानी डिफेस फोर्स के

साथ बिल्कुल नही किया जाता था। यो भी लोगो को इसमे भर्ती होना पसंद नही था, क्योकि वे अपने अंग्रेज शासको से नफरत करते थे, युद्ध मे उसकी जीत के बजाय हार चाहते थे और जर्मन पेश-कदमी की खबरे सुनकर खुश होते थे। स्वाभाविक बात थी कि वे इस फोर्स से सहयोग करने को तैयार न थे।

लेकिन मिसेज बेसेण्ट की होमरूल के सदस्यो ने जिनमे जवाहर-लाल भी शामिल थे, बहुत बहस के बाद संयुक्त-प्रान्त की इस फोर्स के साथ सहयोग करना ही तय किया। तर्क यह था कि इन हालतो मे भी देश के नौजवानों के लिए यह अच्छा मौका है कि वे फौजी शिक्षा ग्रहण करे। जवाहरलाल ने भी इस फोर्स मे भर्ती होने के लिए अपनी अर्जी भेज दी और अपनी तजवीज को आगे बढाने के उद्देश्य से इलाहाबाद मे एक कमेटी भी सगठित कर ली। मोतीलाल नेहरू, तेजबहादुर सप्रू, श्री सी० वाई० चिन्तामणि तथा ऐसे ही दूसरे माडरेट लीडर इस कमेटी के सदस्य थे।

जाने क्यो उन्ही दिनो सरकार ने मिसेज बेसेण्ट को यकायक गिरफ्तार करके भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत नजरबद कर दिया। जवाहरलाल का कहना है कि उस क्षण के जोश मे उन्होने कमेटी के सदस्यो के सामने यह प्रस्ताव रखा कि सरकार की इस नजरबंदी वाली हरकत के विरोध स्वरूप डिफेंस फोर्स के सिलसिले के सब काम बन्द कर दिये जाये और इस मतलब का एक आम नोटिस निकाल दिया गया। जवाहरलाल का यह भी ख्याल है कि लडाई के दिनो मे ऐसा आक्रामक कार्य करने के लिए इनमे से कुछ लोग पीछे बहुत पछताये।

भी बन गये ।

इस सम्बन्ध मे गांधीजी की गतिविधियो पर एक नजर डाल लेना भी दिलचस्पी से खाली नही होगा। वह इन्ही दिनो दक्षिण अफ्रीका मे लन्दन आये । वहाँ होटल मेमिल मे उनका शानदार स्वागत हुआ । उन्होने भारतीय नौजवानो से अपील की कि इस सकट-काल मे वे अपनी 'राज-भक्ति' का परिचय दे । उन्होने अपने और दूसरे हिन्दुस्तानियो के हस्ताक्षरो से एक पत्र भारत-मत्री को भिजवाया जिसमे ब्रिटिश अधिकारियो को युद्ध के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित की ।

यह बात जग जाहिर है कि इसके बाद गाँधीजी ने लदन मे हिन्दुस्तानियो की एक वालटियर एम्बुलेंस कोर सगठित की। फिर वह हिन्दुस्तान चले आये और वायसराय से पत्र-व्यवहार करने के बाद गुजरात के किसानो मे 'फौज मे भर्ती होकर स्वराज्य प्राप्त करो' का अभियान चलाया। वह जुलाई, १९१८ तक बराबर इसी काम मे लगे रहे ।

कांग्रेस ने चूँकि सरकार को युद्ध मे अपने पूर्ण सहयोग का विश्वास दिलाया था, इसलिए युद्ध के चार सालो मे सरकार की भी कांग्रेस पर विशेष कृपा-दृष्टि रही । १९१४ के वार्षिक अधिवेशन मे मद्रास के गवर्नर लार्ड पेटलैड, १९१५ के अधिवेशन मे बम्बई के गवर्नर लार्ड विलगडन और १९१६ के अधिवेशन मे सयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर जेम्स मेस्टन शामिल हुए । इन अग्रेज गवर्नरो का निहायत जोशीली तालियो से स्वागत किया जाता था ।

कांग्रेस की राजनीति मे एक विशेष परिवर्तन यह आया कि १९१६ की लखनऊ कांग्रेस मे गर्मदल और नर्मदल के सब नेता एक मच पर इकट्ठे हो गये और यही कांग्रेस और मुस्लिम लीग मे समझौता हो गया । जवाहरलाल का कहना है कि लखनऊ के इस अधिवेशन मे जो सयुक्त कांग्रेस-लीग योजना मजूर हुई, वह उन्ही के घर मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की मीटिंग मे बनी थी ।

गया।

जवाहरलाल ने सयुक्त कांग्रेस-लीग योजना का, बहुत-सी छोटी-छोटी बातो का और विशेषकर लखनऊ अधिवेशन मे गाँधीजी से अपनी पहली मुलाकात का जिक्र बडे गर्व से किया है। लेकिन क्रान्तिकारियो की इस इतनी बडी घटना का जिक्र करना उन्होने मुनासिब नही समझा। शायद इसलिए कि वह उनकी तबीयत के माफिक नही थी और उनके 'कैरियर' मे फिट नही होती थी। वह लिखते है "पिताजी कभी-कभी खयाल करते थे कि मै सीधे उस हिंसात्मक कार्य की तरफ जा रहा हूँ जिसको बगाल के नौजवानो ने अख्तयार किया था। इससे वह बहुत ही चिंतित रहते थे, जबकि दरअसल मेरा आकर्षण उस तरफ था नही। हाँ, यह खयाल मुझे हर वक्त घेरे रहता था कि हमे मौजूदा हालत को चुपचाप बर्दाश्त नही करना चाहिए और कुछ-न-कुछ करना जरूर चाहिए।" (मेरी कहानी पृष्ठ ६१)

आगे चलकर हम इस 'कुछ-न-कुछ' को खूब देखेगे और यह भी देखेगे कि मोतीलाल के मन मे ऐसी कोई चिंता न थी। उन्होने अपने विलायत पास बेटे की लिबरल आत्मा को खूब पहचान लिया था। पहचाना नही था तो दूर के लोगो ने, जो उनकी गरम-गरम बातो मे आ जाते थे।

नेता और जनता

युद्ध के समाप्त होते-होते हिन्दुस्तान ने एक भयकर ज्वालामुखी का रूप धारण कर लिया, जिसमे से जहाँ-तहाँ स्वत: लपटे फूट पडती थी। समूची जनता मे असाधारण असन्तोष फैला हुआ था।

युद्ध के दिनो मे विदेशों से माल आना बन्द हो गया था और सरकार की जरूरते बढ गई थीं। इसलिए भारतीय उद्योगों को और विशेषकर कपडे और लोहे के उद्योगो की जो तरक्की हुई थी, उससे बड़े कारखानेदार मालामाल हो गये थे। वे अपनी बचत के धन को और बढाने और उसे नए धन्धो मे लगाने के सपने देख रहे थे। यह तभी सम्भव था जब विदेशी साम्राज्य की गिरफ्त ढीली हो।

नए-नए कल कारखाने लग जाने से मजदूरो की सख्या भी बहुत बढ गई थी। लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी। पैसा तो कुछ ऊपर के लोगो ने ही कमाया था। आम जनता पर तो अतिरिक्त करो तथा लगान का बोझ ही बढा था और बढती हुई मँहगाई ने कमर अलग तोड दी थी। मजदूरो, किसानो और मध्यवर्ग मे सख्त बेचैनी थी। सिपाही जो युद्ध के मोर्चे से लौटकर आये थे, पहले से 'जो हुक्म' वाले सिपाही नही रहे थे। उनका ज्ञान और अनुभव बढ गया था और उनमे भी बहुत अशान्ति थी। १६१५ मे क्रान्ति के प्रयास विफल बना दिये जाने के बाद से फौज मे बराबर बगावते होती रही थी और उनके कारण सरकार बहुत परेशान थी।

फिर रूस की महान् अक्तूबर क्रान्ति ने दुनिया को हिला दिया

नया था। इससे मदिरो से निकले आ रहे मेहनतकश अवाम मे नया जोश, उत्साह पैदा हुआ था। उनके सामने अपने शोषको और शासको से क्रान्ति द्वारा मुक्ति पाने का मार्ग खुल गया था।

महायुद्ध और रूसी क्रान्ति के कारण पूर्व के सभी उपनिवेशो मे राष्ट्रीय आदोलन की लहर बहुत ऊँची उठ गई थी।

ऐसे मे नेताओ के लिए 'कुछ-न-कुछ' करना जरूरी था और इस कुछ-न-कुछ की शुरूआत यो हुई कि जनवरी, १६१६ मे सरकार ने केन्द्रीय असेम्बली मे रोलट बिल पेश किया। इसमे कानूनी कार्रवाई किये बिना ही गिरफ्तार करने और जेल मे डाल देने की धाराएँ रखी गई थी। गांधीजी ने वायसराय से प्रार्थना की कि सरकार इस बिल को कानून न बनाये। गांधीजी की यह प्रार्थना कैसे मान ली जाती, सरकार राष्ट्रीय आन्दोलन की बढती हुई लहर को दमनकारी कानूनो द्वारा कुचलने की तैयारी कर रही थी। रोलट बिल को मार्च मे कानून बना दिया गया।

गांधीजी ने रोलट एक्ट के विरुद्ध नाराजगी जाहिर करने के लिए अहिंसात्मक सत्याग्रह की योजना बनाई। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका मे अहिंसात्मक सत्याग्रह का काफी अनुभव प्राप्त कर चुके थे। इसका मतलब था दमन की शक्ति को शान्तिपूर्ण ढग से चुनौती देना और जो कानून हमे पसन्द नही है, उसे तोडकर जेल जाना। इसी आधार पर गांधीजी ने एक सत्याग्रह सभा बनाई। उसके सदस्यो से यह प्रतिज्ञा कराई जाती थी कि वे सरकार द्वारा उत्तेजना दिलाई जाने पर भी शान्त रहेगे और रोलट कानून की अवहेलना करके जेल जायेंगे।

जवाहरलाल लिखते हैं "जब मैंने अखबारो मे यह खबर पढी तो मुझे बडा सतोष हुआ। आखिर इस उलझन से एक रास्ता मिला था। वार करने के लिए एक हथियार तो मिला, जो सीधा, खुला और बहुत करके राम-बाण था। मेरे उत्साह का पार न रहा ....."

(मेरी कहानी)

वह तुरन्त सत्याग्रह-सभा में भर्ती होने को तैयार हो गये; पर मोतीलाल ने घोर विरोध किया। जवाहरलाल ने इसके दो कारण बताये है : एक तो यह कि वह नए नए प्रस्तावों मे बह जाने वाले न थे। कोई नया कदम आगे बढाने से पहले वह उनके नतीजों को अच्छी तरह सोच लिया करते थे। दूसरा कारण यह कि वह अपने बच्चो से बहुत प्यार करते थे और उन्हे जवाहरलाल का जेल जाना बहुत नागवार मालूम होता था। दरअसल पहला ही कारण ठीक मालूम होता है, क्योकि जब जेल जाने का समय आया तो जवाहरलाल को भी भेजा और खुद भी गये। वह अनुभवी व्यक्ति थे और वह गांधी जी के सामाजिक तथा राजनैतिक विचारो और सत्याग्रह की नीति को कोई महत्व नही देते थे। उन्होने २७ फरवरी, १९२० को जवाहरलाल के नाम एक खत मे लिखा था

"जहाँ तक गांधीजी के राजनैतिक विचारो का प्रतिपादन करने की बात है, मै उनके प्रति आदर रखते हुए भी उन विचारो को महज इसलिए मानने को तैयार नही हूँ कि वे उनके विचार है। मै दास को पहले ही सचेत कर चुका हूँ कि हमे जोरदार खीचतान के लिए तैयार रहना चाहिए। गांधीजी शास्त्री (श्रीनिवास शास्त्री) से बाते करने दिल्ली जा रहे हैं। उनका मालवीय से लगातार ताल्लुक और उनसे आम रजामदी हमारे दल के लिए अच्छी निशानी नही हैं और न खुद गांधीजी के ही लिए यह बहुत शुभ है। अपनी लोकप्रियता पर हद से ज्यादा भरोसा करना ठीक नही। मिसेज बेसेंट इसकी कीमत चुका रही है और दूसरो के साथ भी ऐसा ही हुआ है। मुझे बहुत दु ख होगा अगर यही बात गांधीजी के साथ हुई। अपनी मौजूदा हालत मे मुझे किसी के भी राजनैतिक विचारो से झगडा करने का अधिकार नही; फिर गांधीजी और मालवीयजी जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियो से झगडा करने की बात तो और भी कम है;

लेकिन जिस ढंग से देश शक्ल अखत्यार कर रहा है, उसकी तरफ से मैं आखे नही मुँद सकता। अधिकारियो या नर्मदल वालों से समझौता करने की कोशिश का नतीजा बरबादी होगा, भले ही वह किसी के जरिये हो। जो हालत है उसके बारे मे मेरी अपनी राय तो यह है।"

यह खत उन्होने आरा से लिखा था। इससे देश की भावी राजनीति और गांधीजी के बारे मे उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है।

जाहिर है कि वह गांधीजी के सत्याग्रह के रास्ते को पसन्द नही करते थे और वह उनकी नीतियो को समझौतापरस्ती की सुधारवादी नीतियाँ मानते थे और इस खत के लिखते समय तक मानते रहे। लेकिन जवाहरलाल ने अपने दिल मे सत्याग्रह के रास्ते पर चलने का निश्चय कर लिया था और इस बात को लेकर बाप-बेटे मे काफी संघर्ष रहा।

आखिर मोतीलाल ने गांधीजी को इलाहाबाद बुलाया। दोनो मे बडी देर तक बातें हुई। उसके बाद खुद गांधीजी ने जवाहरलाल को सलाह दी कि वह जल्दी मे कोई ऐसा काम न करें, जो पिता को असह्य हो।

लेकिन सत्याग्रह की नौबत ही नही आई। घटनाओ ने दूसरा ही रास्ता अख्तयार कर लिया।

गांधीजी ने सार्वजनिक विरोध प्रदर्शित करने के लिए छ अप्रैल का दिन मुकर्रर किया था। तीली दिखाने की देर थी ज्वालामुखी फट पड़ा। देश-भर मे हड़तालें हुईं और तमाम काम-काज बन्द हो गया। दिल्ली, अमृतसर और अहमदाबाद में पुलिस और फौज ने प्रदर्शनकारियो पर गोली चलाई। इससे लोगो का क्रोध और भडक उठा। उन्होंने भी सरकार की बर्बर दमनकारी शक्ति पर जवाबी हमले किये। कुछ बैंक और दूसरी सरकारी इमारतें फूंक डाली।

अमृतसर जलियांवाला बाग हत्या-कांड इसी दिन की घटना है।

वहाँ इस नाम के एक बाग मे जलसा हो रहा था। हजारों आदमी जमा थे। बाहर निकलने के लिए सिर्फ एक छोटा-सा रास्ता था। जनरल डायर ने उस पर तोपे लगा दी और लोगो को बिखर जाने की चेतावनी दिये बिना ही गोली चलाने का हुक्म दे दिया। अधाधुंध कोई १६०० राउंड चलाये गये। हपडा-दपडी मे कुछ लोग एक-दूसरे के पाँव तले कुचले गये, पास ही एक कुआँ था, कुछ उसमे गिर पडे। एक तरफ एक छोटी-सी दीवार थी, लोगो ने जब उसे फाँद कर निकल जाने की कोशिश की तो तोपो और बन्दूको का रुख उस तरफ फेर दिया गया। उस दीवार पर अब तक गोलियों के निशान मौजूद है।

इस हत्या-कांड मे कितने लोगो की जाने गईं यह अंदाजा लगाना मुश्किल था। लेकिन सरकारी रिपोर्ट ही के अनुसार ३७२ व्यक्ति मरे और १२०० घायल हुए। ये आंकड़े भी घटना की भयंकरता को सिद्ध करने के लिए काम नही है। डायर ने सरकार द्वारा नियुक्त हटर कमेटी के सामने बयान देते हुए कहा था—"मैं सैनिक दृष्टिकोण मे न सिर्फ उन लोगो पर जो वहाँ मौजूद थे बल्कि पूरे पजाब की जनता पर नैतिक प्रभाव पैदा करना चाहता था।" अर्थात उन्हे आतकित करना चाहता था। इगलैड के हाऊस ऑफ लार्डस ने डायर को अपने इस 'कारनामे' के लिए बीस हजार पौड का पुरस्कार दिया।

लेकिन पजाब की वीर जनता और समूचे देश की जनता आतकित होने के बजाय अपना खून चूसने वाले विदेशी शासको के विरुद्ध उठ खडी हुई। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद और दूसरे स्थानों पर अग्रेजी सरकार पर जबर्दस्त हमले शुरू हो गये। सर वालेंटाईन चिरोल के शब्दो मे: "आंदोलन ने ब्रिटिश राज के विरुद्ध एक संगठित विद्रोह का रूप धारण कर लिया"। (इंडिया c-3)

लेकिन गांधीजी इस पर खुश होने के बजाय बिगड़ बैठे।

उन्होंने एक ही सप्ताह बाद आदोलन वापस ले लिया और एक बयान मे कहा—"मैंने हिमालय जितनी बडी गलती की, जिससे सच्चे सत्याग्रहियो को नही, बल्कि उपद्रवियो को अव्यवस्था फैलाने का अवसर मिला।" २१ जुलाई को प्रेस के नाम एक खत मे लिखा, "सत्याग्रही का आशय सरकार को परेशान करना कभी नही होता।"

१९०९ की तरह अग्रेज सरकार ने अब भी एक ओर क्रान्तिकारी जनता को कुचलने के लिए दमन-चक्र चलाया और दूसरी ओर माडरेटो को लुभाने के लिए माण्टेगू-चेम्सफोर्ड सुधारो का टुकडा फेका। इन सुधारों को कानून १९१९ मे बनाया गया; लेकिन घोषणा १९१७ मे कर दी गई थी। माडरेटो ने हृदय से घोषणा का स्वागत किया था और उन्होने १९१८ मे कांग्रेस से निकलकर लिबरल फेडरेशन नाम की एक अलग सस्था बना ली थी।

१९१९ का हिन्दुस्तान १९०९ के हिन्दुस्तान से एकदम भिन्न था। स्थिति मे भारी परिवर्तन आ चुका था। जैसा कि मोतीलाल ने बेटे के नाम अपने उक्त पत्र मे लिखा है, किसी भी नेता के लिए इस परिवर्तन को नजरदाज करना अपने लिए राजनैतिक मौत सहेजना था। इसलिए १९०९ के बहुत से माडरेट अब कांग्रेस ही मे टिके रहे। (इसमे सदेह नही कि उनमे से कई समय के साथ आगे भी बढे थे)। लिबरल फेडरेशन मे बहुत कम लोग गये, जो गये वे सरकार के पिटठु अथवा टोडी कहलाये।

माण्टेगू-चेम्सफोर्ड सुधारो को स्वीकार या अस्वीकार करने के सवाल पर कांग्रेस मे भी तीव्र मतभेद था। सी० आर० दास और मोतीलाल नेहरू उन्हे ठुकरा देने वालो के नेता थे, जबकि गांधीजी और मिसेज बेसेण्ट सरकार के साथ सहयोग करने के पक्ष मे थे। गांधीजी ने मार्शल-ला, जलियांवाला बाग, कलकत्ता, बम्बई और अहमदाबाद की घटनाओ के बाद भी ३१ दिसम्बर १९१९ को अपने अखबार 'यग इडिया' मे लिखा था .

"सुधार, कानून और घोषणा हिन्दुस्तान के साथ न्याय करने की ब्रिटिश लोगो की नीयत की सच्चाई का प्रमाण है···इसलिए हमारा कर्त्तव्य सुधारो की कडी आलोचना करना नही बल्कि हमारा कर्त्तव्य यह है कि हम उन्हे सफल बनाने के लिये चुपचाप काम शुरू कर दे।"

इधर सरकार से सहयोग की सलाह दी जा रही थी, उधर शोषित जनता क्रान्ति के पथ पर तेजी से आगे बढ रही थी। दिसम्बर १९१८ मे बम्बई के मिल-मजदूरो ने हडताल शुरू की जो इतनी व्यापक थी कि जनवरी मे हडताली मज़दूरो की सख्या १२५००० तक पहुँच गई थी। जैसे-जैसे जग के बाद का आर्थिक सकट बढता गया, जनता का असन्तोष भी बढता गया। १९२० के अत तक इस सकट ने भयानक रूप धारण कर लिया था। इस वर्ष के सिर्फ पहले छ महीनों मे २०० हडतालें हुई, जिनमे पंद्रह लाख मजदूरो ने भाग लिया।

देहात मे किसानो की जो हालत थी, सरकार और जमीदारो के हाथो उनका जो शोषण हो रहा था, उससे वे अपने आप विद्रोह के लिए उठ खडे हुए थे। उन दिनो के किसान-विद्रोह का अदाजा उस एक घटना से सहज मे लग जायगा जो खुद जवाहरलाल ने 'मेरी कहानी' मे बयान की है।

जून के शुरू मे कोई २०० किसान प्रतापगढ के देहात से पचास मील पैदल चलकर इलाहाबाद आये ताकि अपने दुखो और मुसीबतो की कहानी खास-खास नेताओ को सुनाये। बाबा रामचन्द्र नाम के एक व्यक्ति उनके अगुवा थे और ये लोग जमुना के तट पर डेरा डाले हुए थे। जवाहरलाल कुछ मित्रो को साथ लेकर उनसे मिलने गये। किसानो ने बताया कि ताल्लुकेदार जोर-जुल्म से वसूली करते हैं, कैसा उनका अमानुषी व्यवहार है और कैसी उनकी असह्य हालत हो गई है।

किसानो की प्रार्थना पर जवाहरलाल अपने साथियो समेत देहात

मे भी गये ताकि उनकी यह हालत अपनी आँखो देखे। तीन दिन वहाँ रहकर जो कुछ देखा उसका वर्णन यो किया है

"हमने देखा, सारे देहाती इलाको मे उत्साह की लहर फैल रही है और उनमे अजीब जोश उमड पडता है। जरा जवानी कह दिया और बडी-बडी सभाओ के लिए लोग इकट्ठा हो गये। एक गाँव से दूसरे गाँव और दूसरे से तीसरे गाँव, इस तरह सब गाँवो मे सदेश पहुँच जाता और देखते-देखते सारे गाँव खाली हो जाते और खेतों मे दूर-दूर तक सभा-स्थल पर आते हुए मर्द, औरत और बच्चे दिखाई देते·····

"·····और वे हमे आशा तथा प्रेम-भरी आँखो से देखते थे—मानो हम कोई शुभ सदेश सुनाने आये हो, या उनके रहनुमा हो, जो उन्हे उनके लक्ष्य तक पहुँचा देगे।"

और आगे लिखा है :

"जो लोग वहाँ आये थे, उनमे से बहुतो के जमीन नही थी और जिन्हे जमीदारो ने वेदखल कर दिया था। उन्हे सहारे के लिए न अपनी जमीन थी और न अपना झोपडा। यो जमीन उपजाऊ थी; मगर उस पर लगान आदि का बोझ बहुत भारी था। खेत छोटे-छोटे थे और एक-एक खेत पाने के लिए कितने ही लोग मरते थे। उनकी इस तडप से फायदा उठाकर जमीदारो ने, जो कानून के मुताबिक एक हद से ज्यादा लगान नही बढा सकते थे, कानून को ताक पर रख कर भारी-भारी नजराना वगैरह बढा दिया था। वेचारे किसान कोई चारा न देखकर रुपया उधार लाते और नजराना वगैरह देते और फिर जब कर्ज और लगान तक न दे पाते तो वेदखल करा दिये जाते। उनका सब कुछ छिन जाता···।"

इस हालत मे किसानो का वगावत पर आमादा होना स्वाभाविक था। इसी साल सर्दियों मे सरकार ने उनके नेताओ को गिरफ्तार कर लिया। उन पर प्रतापगढ मे मुकदमा चलाया जाने वाला था कि

किसानों की एक बहुत बडी भीड अदालत मे जमा हो गई और जेल तक, जिसमे नेताओं को रखा हुआ था उनकी एक लाइन लग गई। मैजिस्ट्रेट ने घबरा कर मुकदमा मुल्तवी कर दिया। किसान डटे रहे और दूसरे दिन जब उनके नेताओ को रिहा कर दिया, तब हटे।

यो १६२० के अन्त मे देश, उस साल के कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष लाला लाजपतराय के शब्दो मे, क्रान्ति के मुहाने पर खडा था; पर क्रान्ति नेताओ के "सस्कार तथा परम्परा के प्रतिकूल थी।" अपने उपरोक्त देहात के दौरे के बारे मे लिखते-लिखते सच्चाई के क्षण मे जवाहरलाल ने इसी बात को यो स्वीकारा है :

"....मुझे ताज्जुब होता था कि मैं अपने आस-पास जमा होने वाले इन हजारो आदमियो मे हर बात मे, अपनी आदतो मे, इच्छाओ मे, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण मे बहुत भिन्न होते हुए भी, इन लोगो की सदिच्छा और विश्वास कैसे हासिल कर सका? क्या इसका सबब यह तो नही था कि इन लोगो ने मुझे मेरे मूलस्वरूप से कुछ जुदा समझ लिया? जब वे मुझे ज्यादा पहचानने लगेंगे तब भी क्या वे मुझे चाहेगे? क्या मैं लम्बी-लम्बी बाते बना-बनाकर उनकी सदिच्छा प्राप्त कर रहा हूं? ......मगर मेरा यह विचार न हटा कि उनका मुझ पर प्रेम मैं जैसा कुछ हूँ उनके लिए नही, बल्कि मेरी बाबत उन्होने जो कुछ सुन्दर कल्पना कर ली थी, उसके कारण था। यह झूठी कल्पना कितने समय तक टिकी रह सकती थी? और यह टिकी रहने भी क्यो दी जाय? जब उनकी यह कल्पना झूठी निकलेगी और उन्हें असलियत मालूम होगी, तब क्या होगा?"

असहयोग

जब देश इस तेजी से क्रान्ति की ओर बढ रहा था, नेताओ के लिए माण्टेगू-चेम्सफोर्ड सुधारो को स्वीकार करके असेम्बली और कौंसिलो मे चले जाना सहज नही था। अतएव स्थिति को भाँपकर कांग्रेस का विशेष अधिवेशन सितम्बर, १६२० मे कलकत्ता मे बुलाया गया। गांधीजी ने जो कल तक सुधारो को स्वीकार करके सरकार को सहयोग देने पर बल दे रहे थे, अब इस अधिवेशन मे असहयोग आदोलन चलाने का प्रस्ताव रखा। इस आदोलन का नेतृत्व कांग्रेस नेता करेगे और इसका मूल्य यह था कि जनता मार खाते हुए भी शान्त रहेगी और आदोलन को अहिंसात्मक बनाये रखेगी।

अधिवेशन के अध्यक्ष लाला लाजपतराय ने प्रस्ताव का विरोध किया क्योकि उन्हे गाँधीजी की अहिंसात्मक असहयोग की योजना पसद नही थी, इसीसे उन्होने कहा था, 'देश क्रान्ति के मुहाने पर खडा है, पर क्रान्ति नेताओ के सस्कार और परम्परा के प्रतिकूल है।" वह एक लम्बे अर्से तक देश से बाहर रहने के बाद हाल ही मे अमरीका से लौटे थे और जवाहरलाल ही के शब्दो मे उनका दृष्टिकोण सामाजिक तथा आर्थिक था, जो कि उनके अर्से तक विदेशो मे रहने से और भी मजबूत हो गया था और उसके कारण उनकी दृष्टि अधिकांश हिन्दुस्तानी नेताओ की बनिस्पत ज्यादा व्यापक थी। (मेरी कहानी)

न सिर्फ लाला लाजपतराय ने बल्कि करीब-करीब सभी पुराने महारथियो ने गांधीजी के इस असहयोग-प्रस्ताव का विरोध किया।

देशबन्धु सी० आर० दास इस विरोध के अगुआ थे। विरोध का कारण यह नही था कि वे कौसिलो का बायकाट करना नही चाहते थे, बल्कि वे और आगे जाने को तैयार थे। जनता जिस हद तक आगे बढ चुकी थी, यह प्रस्ताव उसकी रहनुमाई के लिए नाकाफी था।

लेकिन मोतीलाल नेहरू और खिलाफत के नेताओ मुहमद अली और शौकत अली (अली ब्रादर्स) ने गाँधीजी का साथ दिया। युद्ध के बाद अग्रजो ने तुर्की के साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उससे साम्राज्य-वाद विरोधी मुस्लिम जनता को खिलाफत कमेटी के झडे तले सगठित होने का एक आधार मिल गया था। गाँधीजी ने असहयोग आन्दो-लन मे मुसलमानो का सहयोग प्राप्त करने के लिए खिलाफत कमेटी के नेताओ से समझौता किया था। यही समझौता उन दिनो की हिन्दू-मुस्लिम एकता का आधार बना था। बहुत-से पुराने काँग्रेसी नेताओ के विरोध के बावजूद इसी एकता के नाम पर गाँधीजी का प्रस्ताव पास हो गया।

प्रस्ताव मे घोषणा की गई थी कि जब तक स्वराज्य कायम न हो जाये, गाँधीजी अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन बराबर चलाते रहेगे। आन्दोलन का कार्यक्रम यह था कि तमाम सरकारी खिताब त्याग दिये जाये, कौसिलो, अदालतो और शिक्षा-सस्थाओ का बायकाट किया जाय, विदेशी कपड़े का बायकाट करके खद्दर पहना जाय और घर-घर में चर्खा काता जाय। आन्दोलन के अन्तिम चरण मे सरकार को लगान देना बन्द करना भी कार्यक्रम में शामिल था।

जवाहरलाल ने लिखा है . "कलकत्ता के विशेष अधिवेशन ने काँग्रेस की राजनीति मे गाँधी-युग शुरू किया; जो तब से अब तक कायम है—हाँ, बीच मे थोड़ा-सा समय (१९२२ से १९२९ तक) जरूर ऐसा गया, जिसमे गाँधीजी ने अपने-आपको पीछे रख लिया था और स्वराज्य पार्टी को, जिसके नेता देशबन्धु दास और मेरे पिताजी थे, अपना काम करने दिया था। तब से काँग्रेस की सारी

दृष्टि ही बदल गई, विलायती कपडे चले गये और देखते-देखते सिर्फ खादी-ही-खादी दिखाई देने लगी, कांग्रेस मे नई किस्म के प्रतिनिधि दिखाई देने लगे, जो खास करके मध्यम वर्ग की निचली श्रेणी के थे · । (मेरी कहानी)

विदेशी कपडे के बायकाट से भारतीय उद्योगपतियो के हित का पोषण होता था, इसलिए कार्यक्रम की इस मद को प्रमुख रखा गया। लोगो मे उत्साह तो था ही, बडी मात्रा मे विदेशी कपडे जलाये गये और चरखा काता जाने लगा। मध्यवर्ग के हजारो नौजवान स्वाधीनता-सग्राम मे भाग लेने के लिए कालेजो-स्कूलो को छोडकर मैदान मे निकल आये।

नवम्बर मे"जब नई कौंसिलो के चुनाव हुए तो दो-तिहाई लोगो ने अपने वोट नही डाले। हालाँकि वोट का अधिकार सम्पत्ति के आधार पर समूचे देश की सिर्फ २ ८ प्रतिशत आबादी को प्राप्त था। कुछ चुनाव-केन्द्रो पर तो एक भी व्यक्ति वोट डालने नही आया।

आन्दोलन की इस सफलता से कॉंग्रेस का सम्मान बढा। कहने की जरूरत नही कि जिन नेताओ ने कलकत्ता अधिवेशन मे गांधीजी के प्रस्ताव का विरोध किया था, उन्होने भी आन्दोलन का साथ दिया। जिन कुछेक नामी वकीलो ने अदालतो का बायकाट किया उनमे मोतीलाल के अलावा सी० आर० दास और लाजपत राय भी थे।

तीन महीने बाद कॉंग्रेस का वार्षिक अधिवेशन नागपुर मे हुआ। उसमे "वैधानिक तथा शान्तिपूर्ण उपायो से स्वराज्य प्राप्त करने" का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया। सर्वसम्मति ही से आन्दोलन के नेतृत्व की बागडोर गांधीजी को सौंप दी गई और उन्होने वायदा किया कि वह स्वराज्य बारह महीने के भीतर-भीतर अर्थात् ३१ दिसम्बर, १९२१ तक अवश्य प्राप्त कर लेंगे। बाद मे सितम्बर, १९२१ के एक सम्मेलन मे यहाँ तक घोषणा कर डाली कि "मुझे

साल के अन्त तक स्वराज्य प्राप्त कर लेने का इतना विश्वास है कि अगर स्वराज न मिला तो आप लोग मुझे ३१ दिसम्बर के बाद जिन्दा नही पायेंगे।"

यह और बात है कि गांधीजी अपनी इस बात पर कायम रहे न रहे, लेकिन लोग इतनी जल्द स्वराज्य पा जाने की उम्मीद से बहुत बडी तादाद मे आन्दोलन मे खिच आये। कांग्रेस और खिलाफत उनके लिए दो प्रिय शब्द बन गये। स्वयं-सेवक दल सगठित होने लगा, जलसे-जलूसो की बाढ-सी उमड आई और वातावरण "भारत माता की जय", "वन्दे मातरम्" तथा "अल्लाह हू अकबर" के नारो से गूंज उठा। विचार और ध्येय चूंकि स्पष्ट नही था; इसलिए समूचा आन्दोलन राजनैतिक से कही अधिक धार्मिक जान पड़ता था।

व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर जवाहरलाल ने लिखा है :

"राजनीति मे, क्या हिन्दू और क्या मुसलमान दोनो तरफ धार्मिकता की इस बढती से कभी-कभी मुझे परेशानी होती थी। मुझे वह बिलकुल पसन्द न थी। मौलवी, मौलाना और स्वामी तथा ऐसे ही दूसरे लोग जो कुछ अपने भाषणो मे कहते उसका अधिकांश मुझे बहुत बुराई पैदा करने वाला मालूम होता था। उनका सारा इतिहास, सारा समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र मुझे गलत दिखाई देता था और हर चीज को जो मजहबी झुकाव दिया जाता था, उससे स्पष्ट विचार करना रुक जाता था। कुछ-कुछ तो गांधीजी के भी शब्द-प्रयोग मेरे कानो मे खटकते थे। जैसे "राम राज्य" जिसे वह फिर लाना चाहते हैं। लेकिन उस समय मुझमे दखल देने की शक्ति न थी और मैं इसी खयाल से तसल्ली कर लिया करता था कि गांधीजी ने उनका प्रयोग इसलिए किया है कि इन शब्दो को सब लोग जानते हैं और जनता उन्हे समझ लेती है। उनमे जनता के हृदय तक पहुंच जाने की विलक्षण स्वभाव-सिद्ध कला है।" (मेरी कहानी)

हम देखेगे कि जवाहरलाल मे दखल देने की शक्ति आगे भी कभी पैदा नही हुई। गाँधीजी के विचारो और नीतियो को नापसन्द करते हुए भी वह हमेशा मानते और अपने मन को किसी-न-किसी खयाल से तसल्ली देते रहे।

ब्रिटिश सरकार का भी यही खयाल था कि भारत की जनता अन्धविश्वासी है। वह जिस तरह सन्तो, महात्माओ और अवतारो की पूजा करती है, उसी तरह राजपुरुषो के प्रति भक्ति भी उसे घुट्टी मे मिली है। इसलिए वह गाँधीजी के तोड के तौर पर युवराज अर्थात् प्रिंस आफ वेल्ज़ को भारत के दौरे पर लाई। पर उसकी यह धारणा मिथ्या सिद्ध हुई। ज्यो ही १७ नवम्बर, १९२१ को युवराज हिन्दुस्तान पहुँचा, सारे देश मे मुकम्मिल हडताल हुई। विदेशी सरकार के प्रति अपने असन्तोष का इतना बडा सफल प्रदर्शन हिन्दुस्तान ने पहली बार किया था। इसके बाद युवराज जहाँ भी गया, वहाँ-वहाँ हडतालो और सूनी सड़को ने उसका स्वागत किया। सरकार की प्रतिष्ठा को जबर्दस्त धक्का लगा। उसने झल्लाकर दमन-चक्र तेज कर दिया। लोग भी क्रोध से बिफर गये। जनता और सरकार मे खूनी टक्करे शुरू हो गई, जिन्हे रोकने मे गाँधीजी असमर्थ रहे। उन्हे कहना पडा कि स्वराज तो मेरी नाक मे जलन पैदा करने लगा है।

दिसम्बर मे जब कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अहमदाबाद मे हुआ तब तक बीस हजार आदमी जेलो मे जा चुके थे। सरकार ने स्वय-सेवक दल को अवैध घोषित कर दिया था। फिर भी नौजवान विद्यार्थी और मजदूर हजारो की तादाद मे उसमे भर्ती हो रहे थे।

१९२१ सघर्ष का साल था। न सिर्फ यह कि असहयोग आन्दोलन देश-भर मे बढता-फैलता चला गया बल्कि उसने जन-सघर्ष के विभिन्न रूप धारण कर लिये। असम-बगाल रेलवे मजदूरो ने जबर्दस्त हड़ताल की, अवध का किसान आन्दोलन जोर पकड गया और उन्होने कही-कही जमीदारो को लूटना शुरू कर दिया। मिदनापुर

मे लगानबन्दी आन्दोलन शुरू हुआ, मालाबार के लडाकू मोपलो ने बगावत कर दी और पजाब मे अकालियो ने गुरुद्वारा के महन्तो के विशेष अधिकार समाप्त करने का आन्दोलन चलाया।

अहमदाबाद का कांग्रेस अधिवेशन क्रान्ति के इस बढते हुए उभार मे हुआ। गाँधीजी के सिवा कांग्रेस के और सब बड़े नेता जेल जा चुके थे। सी० आर० दास को इस अधिवेशन की अध्यक्षता करनी थी, वह भी जेल मे थे। गाँधीजी उनके स्थान पर एक अंग्रेज पादरी को पकड लाये, जिसने शान्ति और अहिंसा का धार्मिक उपदेश दिया।

एक प्रस्ताव द्वारा गाँधीजी को पूर्ण अधिकार देकर आन्दोलन का डिक्टेटर बना दिया गया और कहा गया कि जब तक स्वराज्य प्राप्त न हो जाय आन्दोलन को दृढ निश्चय के साथ जारी रखा जाय। १८ साल की उम्र के प्रत्येक नागरिक से अपील की गई कि वह अवैध राष्ट्रीय स्वय-सेवक दल का सदस्य बने।

उग्र विचारो के प्रसिद्ध रिपब्लिकन नेता हसरत मोहानी भी इस अधिवेशन मे उपस्थित थे। निर्भीक राजनीतिक नेता होने के अलावा वह उर्दू के मशहूर शायर भी थे। रूस की अक्तूबर क्रान्ति से प्रभावित होकर उन्होने लिखा था

> गाँधी की तरह बैठ के क्यों कातेगे चर्खा,
> लेनिन की तरह देगे न दुनिया को हिला हम।

उनके कारण एक दिलचस्प घटना घटी। उन्होने एक प्रस्ताव रखा कि 'स्वराज' शब्द की व्याख्या "मुकम्मिल आजादी—विदेशी साम्राज्य के समस्त नियन्त्रण से मुक्ति" कर दिया जाय। गाँधीजी बडे तिलमिलाये और विरोध करते हुए बोले, "यह बडी गैर जिम्मे-दारी की बात है, इससे मेरी आत्मा को बडा दुख पहुँचा है।" गाँधी जी की आत्मा को दुख कैसे पहुँचाया जा सकता था? प्रस्ताव रद्द हो गया।

सुभाष बोस उस समय नौजवान थे। आदोलन मे नये-नये आये थे। १९२१ मे गाँधीजी से उन्होने पहली मुलाकात की, जिसमे उन्होने 'स्वराज' शब्द और उसे प्राप्त करने की योजना की व्याख्या चाही। पर गाँधीजी ने जो कुछ कहा, इससे उन्हे सख्त निराशा हुई। बाद मे अपनी इस भेंट का जिक्र करते हुए अपनी 'भारतीय सघर्ष' पुस्तक मे लिखा है .

"उनका वास्तविक आशय क्या था मै समझ नही पाया। या तो वह अपने सारे भेद समय से पहले बताना नही चाहते थे या उन दाँव-पेचो के बारे मे वे खुद स्पष्ट नही थे, जिनके द्वारा सरकार को मजबूर किया जा सकता था।"

जवाहरलाल नेहरू ने इसी बात को ज़रा उलझाकर, जैसाकि उनकी आदत थी, यो बयान किया है

"···· हम स्वराज के बारे मे बहुत बढ-चढकर बाते करते थे। मगर शायद हर व्यक्ति जैसा चाहता वैसा ही उसका मतलब निकाला करता था। ज्यादातर नवयुवको के लिए तो इसका मतलब था राजनैतिक आजादी या ऐसी ही कोई चीज और लोकतन्त्री ढग की शासन प्रणाली और यही बाते हम अपने सार्वजनिक भाषणो मे कहा करते थे। बहुत लोगो ने यह भी सोचा था कि इससे लाजिमी तौर पर मजदूरो और किसानो के बोझ, जिनके तले वे कुचले जा रहे है, हलके हो जायेगे। मगर यह जाहिर था कि हमारे ज्यादातर नेताओ के दिमाग मे स्वराज का मतलब आजादी से बहुत छोटी चीज थी। गाँधीजी इस विषय पर एक अजीब तौर पर अस्पष्ट रहते थे और इस बारे मे साफ विचार कर लेने वालो को वह बढावा नही देते थे। मगर हाँ, हमेशा अस्पष्टता से ही, किन्तु निश्चित रूप से, पददलित लोगो को लक्ष्य करके वह बोला करते थे और इससे हम कइओ की बडी तसल्ली हो जाती थी · ·· "

अहमदाबाद मे गाँधीजी को डिक्टेटर बना दिया था। आदोलन

की रूप-रेखा क्या होगी, वह इसे कैसे और कब चलायेंगे—ये सब उन्हीं पर छोड दिया गया। लोग बड़ी उत्सुकता से उनकी ओर देख रहे थे, पर उन्होने एक महीना तक कुछ नही किया। किसानों की मदी के मारे बुरी हालत थी। उपनिवेशों मे साम्राज्यवाद और सामन्त-वाद का दोहरा शोषण और दमन उन्ही को सहना पडता है, इसलिए क्रान्ति की सबसे बडी शक्ति भी वही है। इसलिए लोग लगान-बदी आदोलन शुरू करने की आज्ञा लेने उनके पास आने लगे। गुंटूर जिला के किसानो ने उनकी आज्ञा के बिना ही लगान देना बद भी कर दिया। गाँधीजी ने तुरन्त काँग्रेस अधिकारियो को आदेश भेजा कि तमाम लगान अदाकर दिया जाये।

गाँधीजी ने लगान-बदी आंदोलन की एक सीमित योजना बनाई, जिसके लिए बारदोली के छोटे-से जिले को चुना। यहां वह आंदोलन को अपने नियत्रण मे रखकर विशुद्ध अहिंसात्मक ढग से चलाना चाहते थे और पहली फरवरी, १९२२ के दिन वायसराय को इसकी सूचना भेज दी क्योकि सत्याग्रही शत्रु से भी अपना कार्यक्रम छिपाता नही।

लेकिन चद ही दिन बाद गोरखपुर जिला के चौरी-चौरा गांव में क्रुद्ध किसानो की भीड ने पुलिस चौकी को आग लगादी जिसमें पुलिस के २२ कर्मचारी जिदा जला दिये गए थे।

गाँधीजी उस समय बारदोली मे थे। यो ही उन्हें इस घटना की खबर मिली, उन्होने तुरन्त १२ फरवरी को कार्यकारिणी की बैठक बुलाई और विद्रोही किसानो के इस क्रान्तिकारी अमल को "अमा-नुपिक व्यवहार" कहकर असहयोग आदोलन वापस ले लिया।

स्वाधीनता-संग्राम और क्रान्तिकारी देश-भक्त जनता के साथ गाँधीजी का यह कितना बडा विश्वासघात था। इसका अंदाजा उस समय की देश की राजनैतिक स्थिति को समझकर सहज में लगाया जा सकता है। बारदोली के इस निर्णय के तीन दिन पहले आंध्र

६ फरवरी को वायसराय ने भारत-मंत्री को लदन मे यह तार भेजा था :

"कस्बो के निम्न वर्गों पर असहयोग आंदोलन का गहरा प्रभाव पडा है··· कुछ क्षेत्रो मे—विशेषकर असम, सयुक्त-प्रान्त, बिहार, उडीसा और बगाल मे किसान लडने पर आमादा हो गये हैं। जहाँ तक पजाब का सम्बन्ध है अकाली आदोलन ·····देहाती सिखो तक जा पहुँचा है। देश-भर की अधिकाश मुस्लिम आबादी क्रुद्ध और उद्दड है······स्थिति गम्भीर है··· · हिन्दुस्तान की सरकार एक ऐसी भयकर अव्यवस्था के लिए तैयार है, जिसका सामना उसे अतीत मे कभी नही करना पडा और वह इस तथ्य को भी छिपाना नही चाहती कि इस स्थिति ने बडी भारी चिंता पैदा कर दी है।"

(रजनी पामदत्त—आज का भारत)

अब उस प्रस्ताव की, जो गाँधीजी ने बारदोली की बैठक मे पास करवाया, सात धाराओ मे से सिर्फ चार देखिए, उनसे भी देश की राजनैतिक स्थिति और आदोलन बन्द करने का मशा स्पष्ट हो जाता है।

धारा २—जब भी जन सविनय भग आदोलन शुरू किया जाता है, अहिंसात्मक घटनाएँ होने लगती हैं। इससे सिद्ध होता है कि देश अभी काफी अहिंसात्मक नही है। इसलिए कांग्रेस कार्य-कारिणी सविनय भग आदोलन बन्द करने का फैसला करती है और स्थानीय कांग्रेस कमेटियो को हिदायत करती है कि वे किसानो को यह मशविरा दे कि उनके जिम्मे सरकार का जो लगान और दूसरे कर बाकी है, वे सब अदा कर दे और आक्रामक ढग की सारी कार्रवाइयाँ बन्द कर दी जाये।

धारा ३—जन आदोलन तब तक स्थगित रहेगा जब तक कि वातावरण के इतना अहिंसात्मक होने का यकीन न हो जाय कि ऐसे घोर कर्म जैसा गोरखपुर मे हुआ, अथवा ऐसे उपद्रव जैसे १७

नवम्बर और १३ जनवरी को बम्बई और मद्रास में हुए, फिर न होने पाये।

धारा ६—कार्यकारिणी कांग्रेस वर्करो और संस्थाओ को रिश्रतो को इस बात से अवगत कराने का मशविरा देती है कि जमीदारो को लगान अदा न करना कांग्रेस प्रस्ताव के विपरीत है और देश के हितो के लिए हानिकर है।

धारा ७—कार्यकारिणी जमीदारो को विश्वास दिलाती है कि उनके कानूनी अधिकारो पर प्रहार करना कॉग्रेस आदोलन का कतई उद्देश्य नही है बल्कि कमेटी की ख्वाहिश यह है कि अगर रिश्रतो को कोई शिकायत हो तो उसे आपस की बात-चीत तथा मध्यस्थता द्वारा तय कर दिया जाय।"

जो माडरेट लोग पहली गोलमेज कान्फ्रेस मे शामिल होने लदन गये थे, उनके आचरण की आलोचना करते हुए जवाहरलाल ने लिखा है :

"यह बात हमे पहले से भी ज्यादा साफ नजर आ गई कि राष्ट्रीयता की धोखे की टट्टी मे विरोधी आर्थिक हित अपना काम कर रहे थे और किस तरह स्थापित स्वार्थ उस राष्ट्र-धर्म के नाम पर भविष्य के लिए अपनी रक्षा करने की चेष्टा कर रहे थे।"

(मेरी कहानी)

क्या गांधीजी का यह बारदोली फैसला भी सत्य और अहिंसा की धोखे की टट्टी मे जमीदारो के निहित स्वार्थो और खुद विदेशी सरकार के स्थापित स्वार्थो की रक्षा करना नही था? क्या इससे यह भी सिद्ध नही हो जाता कि जनता तो क्रान्ति के लिए उठ खड़ी हुई थी, पर निहित स्वार्थो की रक्षा करने वाले कांग्रेसी नेता देश की क्रान्तिकारी शक्तियो से विदेशी साम्राज्यवाद से भी ज्यादा सत्रस्त थे?

हम देखेंगे कि जवाहरलाल ने गांधीजी के इस फैसले के प्रति

विक्षोभ और विरोध व्यक्त किया है, पर वास्तव मे इसका समर्थन किया है और समर्थन का ढग यह अपनाया है कि जो गाली गांधीजी अथवा उनके अनुयायी काँग्रेस नेताओ को दी जा सकती है वह पहले ही उन लोगो को दे लो, जो खुले रूप मे अग्रेज के तरफदार बने हुए थे, जो माडरेट कहलाते थे ।

गांधी और जवाहरलाल

गाँधीजी ने जब असहयोग आन्दोलन स्थगित करने की घोषणा की मोतीलाल नेहरू, लाजपत राय, सी० आर० दास, मुहम्मद अली, शौकत अली,—काग्रेस और खिलाफत के सभी बड़े नेता जेलो मे बन्द थे। उन्हे इस घोषणा से बडा आघात पहुँचा। सुभाष के कथनानुसार सी० आर० दास क्रोध से तिलमिला उठे। जवाहर लाल ने अपने साथ के लोगो की प्रतिक्रिया को इन शब्दो में व्यक्त किया है:

"जब हमे मालूम हुआ कि ऐसे वक्त मे जबकि हम अपनी स्थिति मजबूत करते जा रहे थे, हमारी लड़ाई बन्द कर दी गई है, तो हम बहुत बिगडे। मगर हम जेल वालों की मायूसी और नाराजगी से हो ही क्या सकता था? सत्याग्रह बन्द हो गया और इसके साथ ही असहयोग भी जाता रहा...।" (मेरी कहानी)

लखनऊ जेल मे बन्द इन लोगो ने अपने मुलाकातियो के हाथ गांधीजी को एक पत्र भिजवाया, जिसमे उन्होने अपना दुःख, विक्षोभ और विरोध व्यक्त किया था। विजय लक्ष्मी एक मुलाकात मे उसका उत्तर लाई, जो गाँधीजी ने १९ फरवरी, १९२२ को बारदोली ही से जवाहरलाल के नाम लिखा था। खत यो शुरू होता है।

"प्रिय जवाहर लाल,

मुझे मालूम हुआ है कि तुम सब को कार्य-समिति के प्रस्तावो पर भयकर पीड़ा हुई है। मुझे तुम से हमदर्दी है और पिताजी की

बात सोचकर मेरा दिल टूटता है। उन्हे जो पीडा हुई होगी, उसकी मैं अपने मन में कल्पना कर सकता हूँ। परन्तु मुझे यह भी महसूस होता है कि यह पत्र अनावश्यक है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि पहले आघात के बाद स्थिति सही तौर पर समझ मे आ गई होगी। बेचारे देवदास की बचपन भरी नासमझियो का हमारे दिमाग पर बहुत बोझा नही होना चाहिए। बिलकुल सम्भव है कि उस गरीब लडके के पैर उखड गये हो और उसका मानसिक सतुलन जाता रहा परन्तु इससे इन्कार नही किया जा सकता कि असहयोग आन्दोलन से सहानुभूति रखने वाली गुस्से से पागल भीड ने पुलिस के सिपाहियो की वहशियाना ढग से हत्या की। इससे भी इन्कार नही किया जा सकता कि यह भीड राजनैतिक चेतना रखने वाली भीड थी। ऐसी साफ चेतावनी पर ध्यान न देना बडा अपराध होता।"

फिर क्रान्तिकारी उभार का, बम्बई तथा मद्रास की घटनाओ का विवरण देते हुए आगे लिखा है—"ये सब खबरे और दक्षिण से इस से भी ज्यादा खबरे मेरे पास थी, तब चौरी-चौरा के समाचारो ने बारूद मे जबर्दस्त चिनगारी का काम दिया और आग लग गई। मै तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि अगर यह चीज मुल्तवी न कर दी जाती, तो हम एक अहिंसक आन्दोलन के बजाय असल मे हिंसक सग्राम को चलाते।" जाहिर है कि गाँधीजी की सशस्त्र क्रान्ति के हिंसक सग्राम मे कोई दिलचस्पी नही थी, वह तो नेता ही इसलिए बने थे कि लोगो को इस रास्ते पर चलने से रोका जाय। लेकिन सवाल यह है कि रगरूट भर्ती कराना, चाहे इसी आशा मे कि इससे स्वराज्य मिलेगा, क्या साम्राज्यवादी हिंसक युद्ध को बढावा देना नही था? और अगर देश मे सशस्त्र क्रान्तिकारी युद्ध नही लडना था तो नौजवानो को फौजी शिक्षा दिलाने का अर्थ क्या था?

अब देखिए पत्र के अन्त मे जवाहरलाल को किन शब्दो मे दिलासा दिया गया है और भावुकतापूर्ण ढग से बात टाली गई है।

"जो हो, जेल के वातावरण के कारण हमारे मन मे सारी बातें नही आ सकती। इसलिए मैं चाहूगा कि तुम बाहर की दुनिया को अपने खयाल से ही निकाल दो और समझ लो कि वह है ही नही। मै जानता हूँ कि यह काम बहुत ही कठिन है, परन्तु यदि कोई गम्भीर अध्ययन शुरू कर दो और कोई शरीर-श्रम का काम हाथ में ले लो तो यह काम हो सकता है। सबसे बडी बात यह है कि तुम चाहे कुछ भी करो, मगर चर्खे से न उकताओ। तुम्हारे और मेरे पास बहुत-सी बाते करने और बहुत-सी मान्यताएँ रखने पर अपने-आप से अरुचि होने के कारण हो सकते है, मगर इस बात पर अफसोस करने का कभी कारण नही मिलेगा कि हमने चर्खे पर श्रद्धा केन्द्रित कर ली या मातृ-भूमि के नाम पर हमने रोज इतना अच्छा सूत क्यो काना ? तुम्हारे पास 'साग सिलेशियल' है। मैं एडविन आर्नल्ड जैसा बेमिसाल अनुवाद तो नही दे सकता, मगर मूल सस्कृत का उल्था यो है, "शक्ति बेकार नही जाती, नष्ट तो होती ही नही। धर्म के थोडे-से अश से मनुष्य कई बार गिरने से बच जाता है।" इस धर्म का आशय कर्म-योग से है और हमारे युग का कर्म-योग चर्खा है। प्यारे लाल की मार्फत तुमने मुझे खून सुखाने वाली खुराक पिलाई है, उसके बाद तुम्हारा उत्साहवर्धक पत्र आना चाहिए।"

अब देखिए कि जवाहरलाल पर इस खत का क्या असर होता है और वह अहिसा तथा चर्खे के इस दर्शन से, जो' हमारे युग का कर्म-योग है,' कैसे धीरे-धीरे अपनी पट्टी बिठाते है। "मेरी कहानी" के 'अहिसा और तलवार का न्याय' नाम के परिच्छेद मे वह लिखते है :—

"असल बात तो यह है कि फरवरी, १९२२ मे सत्याग्रह का स्थगित किया जाना महज चौरी-चौरा की वजह से नही हुआ, हालाँकि ज्यादातर लोग यही समझते थे। वह तो असल मे एक आखिरी निमित्त हो गया था। ऐसा मालूम होता है कि गाँधीजी ने बहुत

अर्से से जनता के नजदीक रहकर एक नई चेतना पैदा कर ली थी, जो उनको यह बता देती है कि जनता क्या महसूस कर रही है और वह क्या कर सकती है तथा क्या नही कर सकती और वह अक्सर अपनी अन्त. प्रेरणा या सहज बुद्धि से प्रेरित होकर काम करते हैं जैसा कि महान लोकप्रिय नेता अक्सर किया करते हैं। वह इस सहज प्रेरणा को सुनते हैं और तुरन्त उसी के अनुकूल रूप अपने कार्य को दे देते हैं। और उसके बाद अपने चकित और नाराज साथियो के लिए अपने फैसले को कारण का जामा पहनाने की कोशिश करते हैं। यह जामा अक्सर बिलकुल नाकाफी होता है, जैसा कि चौरी-चौरा के बाद मालूम होता था।" अब इस कारण के जामे को कम-से-कम अपने लिए काफी बनाने के लिये जवाहरलाल तर्क को यों आगे बढ़ाते हैं, "उस वक्त हमारा आन्दोलन, बावजूद उसके ऊपरी दिखाई देने वाले और लम्बे-चौडे जोश के अन्दर से तितर-बितर हो रहा था। तमाम सगठन और अनुशासन का लोप हो रहा था···

"गाँधीजी के दिमाग मे जिन असरो और वजहो ने काम किया वे सम्भवत: यही थे , उनकी मूल बातो को, तथा अहिंसा-शास्त्र के मुताबिक काम करना वाछनीय था, इस बात को मान लेने के बाद कहना होगा कि उनका फैसला सही था। उनको ये सब खराबियाँ रोककर नए सिरे से रचना करनी थी।"

पर फैसले को सही मान लेने के बावजूद जवाहरलाल की अपनी तसल्ली नहीं होती। वकील थे, इसलिए जानते थे कि विरोधी पक्ष का वकील इससे उलट तर्क भी प्रस्तुत कर सकता है। अतएव खुद ही अपनी बात का खंडन करते हुए तुरन्त लिखते हैं :

"एक दूसरी और बिलकुल जुदा दृष्टि से देखने पर उनका फैसला गलत भी माना जा सकता है, लेकिन उस दृष्टिकोण का अहिंसात्मक तरीके से कोई ताल्लुक न था। आप एक साथ दायें-बायें दोनो रास्तो पर नहीं चल सकते। इसमे कोई शक नही कि अपने उस

आन्दोलन को उस अवस्था मे और इस खास इक्के-दुक्के की वजह से सरकारी हत्याकाण्डो द्वारा कुचल डालने का निमन्त्रण देने से भी राष्ट्रीय आन्दोलन खत्म नही हो सकता था, क्योंकि ऐसे आन्दोलनो का यह तरीका है कि वे अपनी चिता की भस्म मे से ही फिर उठ खडे होते है। अक्सर थोडी अल्पकालिक हार से भी समस्याओ को भली-भाँति समझने और लोगों को पक्का तथा मजबूत करने मे मदद मिलती है। असली बात पीछे हटना या दिखावटी हार होना नही है बल्कि सिद्धान्त और आदर्श है।" एक ही पैरे मे बात को फिर पलटते है, "लेकिन १९२१ और १९२२ मे हमारे सिद्धान्त और हमारा लक्ष्य क्या था ? एक धुंधला स्वराज्य, जिसकी कोई स्पष्ट व्याख्या न थी और अहिंसात्मक लडाई की एक खास पद्धति। अगर लोग किसी बडे पैमाने पर इक्के-दुक्के हिंसा-काण्ड कर डालते तो अपने-आप पिछली बात यानी अहिंसा का तरीका खत्म हो जाता और जहाँ तक पहली बात यानी स्वराज्य से ताल्लुक है उसमे कोई ऐसी बात न थी जिसके लिए लोग लडते। आमतौर पर लोग इतने मजबूत न थे कि वे ज्यादा अर्से तक लडाई चलाये जाते और विदेशी शासन के खिलाफ करीब-करीब सर्वव्यापी असन्तोष और कांग्रेस के साथ लोगो की हमदर्दी के बावजूद लोगो मे काफी बल या सगठन न था।"

जवाहरलाल ने यह ठीक लिखा है कि "आप एक साथ दाये और बाये दोनो रास्तो पर नही चल सकते।" लेकिन इस सारी बहस से यह जरा भी स्पष्ट नही, या गाँधीजी के स्वराज्य की व्याख्या की तरह जान-बूझकर स्पष्ट नही होने दिया कि वह खुद दाये या बाये किस रास्ते पर चल रहे है? वह गाँधीजी के अहिंसा और हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्तो को दरुस्त मानते है या नही ? वह यह बताने का साहस नही करते कि चौरी-चौरा के बाद आन्दोलन को बद कर देना सही था या गलत। तर्क इधर भी और उधर भी दोनो तरफ समान गति से चलता है। बाद मे भी वह हमेशा बात को उलझाने की

सवाल यह पैदा होता है कि क्या जवाहरलाल ने कभी इसकी आवश्यकता महसूस की ? बातो को जाने दीजिए क्या अमल मे उन्होने गांधीजी से अलग कभी कोई रास्ता अपनाया ?

१९२१ मे फैजाबाद जिले मे दूर-दूर तक दमन हुआ । कारण यह कि देहात के किसानो ने "गाँधीजी की जय" का नारा लगाते हुए एक तालुक्केदार का माल-असबाब लूट लिया था । यह घटना बयान करते हुए जवाहरलाल नेहरू "मेरी कहानी" मे लिखते है :

"जब मैंने यह सुना तो मैं बहुत बिगडा और दुर्घटना के एक या दो ही दिन के अन्दर उस स्थान पर जा पहुँचा, जो अकबरपुर (फैजाबाद जिला) के पास ही था। मैंने उसी दिन एक सभा बुलाई और कुछ ही घण्टो मे पांच छ हजार लोग कई गाँवो से, कोई दस-दस मील की दूरी से वहाँ इकट्ठे हो गए। मैंने उन्हे आडे हाथो लिया और बताया कि किस तरह उन्होने अपने-आपको तथा हमारे काम को धक्का पहुँचाया और शर्मिन्दगी दिलायी और कहा कि जिन-जिन ने लूटमार की है, वे सबके सामने अपना गुनाह कबूल करे। (उन दिनो मैं गांधीजी के सत्याग्रह की भावना से, जैसा कुछ मैं उसे समझता था भरा हुआ था !) मैंने उन लोगो से जो लूट-मार मे शरीक थे, हाथ ऊँचा उठाने के लिए कहा, और कहते ताज्जुब होता है कि बीसो पुलिस अफसरो के सामने कई दर्जन हाथ ऊपर उठ गये। इसके माने थे यकीनन उन पर आफत आना।"

जवाहरलाल खुद महसूस करते जान पड़ते हैं कि उनका यह काम ताल्लुकेदारो और विदेशी साम्राज्य के स्थापित स्वार्थो की रक्षा तथा निरीह किसानो और क्रान्ति के प्रति विश्वास-घात था, इसीलिए कोष्ठो मे लिखते है कि मैं उन दिनो गाँधीजी के सत्याग्रह की भावना से भरा हुआ था। लेकिन सात साल बाद अर्थात १९२८ मे जब लखनऊ के एक कांग्रेस जुलूस मे उनके शरीर पर पहली बार पुलिस

की लाठियाँ पड़ी, तब ?

"इस छोटी-सी घटना का हाल मैंने कुछ विस्तार से लिखा है क्योंकि इसका मुझ पर खास असर हुआ। मुझे जो शारीरिक कष्ट हुआ, वह मेरी इस खुशी के खयाल के आगे याद ही नही रहा कि मैं भी लाठी के प्रहारो को वर्दाशत करने और उनके सामने टिके रहने के लायक मज़वूत हूँ। और जिस वात से मुझे ताज्जुब हुआ वह यह कि इस सारी घटना मे, और जवकि मैं पीटा जा रहा था, तव भी, मेरा दिमाग ठीक-ठीक काम करता रहा और मैं अपने अन्दर की भावनाओ का ज्ञान-पूर्वक विश्लेषण करता रहा। इस रिहर्सल ने मुझे दूसरे दिन सवेरे वडी मदद दी, जबकि हमारा और भी सख्त इम्तहान होने वाला था। क्योंकि दूसरे दिन सवेरे ही साईमन कमीशन आने वाला था और उस समय हम विरोधी प्रदर्शन करने वाले थे।"

दूसरे दिन की मार और भी सख्त थी। लिखा है, "मार से मुझे अधेरी आ गई और कभी-कभी मन-ही-मन गुस्सा और पलट कर मारने का ख्याल भी आया।.........मगर लम्वे अर्से की तालीम और अनुशासन ने काम दिया और मैंने अपने सिर को मार से वचाने के सिवा हाथ तक नही उठाया।"

मतलव यह कि जवाहरलाल ने गाधीजी से अलग रास्ता कभी नही अपनाया वल्कि अपने को अहिसा और हृदय-परिवर्तन की शिक्षा के अनुरूप ढाला, खुद लाठियाँ खाकर समूची क्रान्तिकारी जनता को हर हालत मे शान्त रह कर शत्रु की गोलियो का शिकार वनने की शिक्षा दी। फिर सिर झुका कर पिटते रहने को भारत की परम्परा सिद्ध करने के लिए अहिसा और हृदय-परिवर्तन के डाँडे गौतम वुद्ध की इस शिक्षा मे जा मिलाये "इस दुनियाँ मे नफरत का अत नफरत से नही हो सकता, नफरत प्रेम करने ही से जायेगी।" और "आदमी को चाहिऐ गुस्से को दया के जरिए और वराई को

भलाई के जरिए जीत।"

इसके भी आठ साल बाद की परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए जवाहर लाल ने 'मेरी कहानी' के "हृदय परिवर्तन या बल-प्रयोग शीर्षक परिच्छेद मे लिखा है।

"उनका (गांधीजी का) तरीका तो खुद कष्ट-सहन का है। इसको समझ सकना कुछ कठिन है, क्योंकि इसमे कुछ अध्यात्मिक भावना छिपी है और हम न तो इसे नाप-जोख ही सकते हैं और न किसी भौतिक तरीके ही से उसकी जाच कर सकते हैं। इसमे कोई शक नही कि विरोधी पर इस तरीके का काफी असर पड़ता है। यह तरीका विरोधियों की नैतिक दलीलो का पर्दाफास कर देता है, उन्हे घबरा देता है, उनकी सर्वोच्च भावना को जागृत कर देता है, और समझौते का दरवाजा खोल देता है......"

फरवरी १९२२ मे तो गांधीजी ने चौरी-चौरा की घटना के कारण सत्याग्रह बंद किया था। लेकिन दस साल बाद फरवरी १९३२ मे जब आंदोलन अपने पूरे जोवन पर था, अहिंसा के तरीके ने विरोधी पर अपना असर दिखाया। अंग्रेज साम्राज्य का प्रतिनिधि वायसराय लार्ड इर्विन महात्मा जी की अध्यात्मिक शक्ति से घबराया और समझौते का दरवाजा 'खुल सिम सिम' का मंत्र पढ़ने की तरह यकायक खुल गया। गाधीजी इस दरवाजे से नई दिल्ली के वायसराय हाउस मे दाखिल हुए और अपनी ग्यारह शर्तों में से एक भी शर्त मनवाये बिना ही समझौता कर आये। जवाहरलाल जैसे पहले सत्याग्रह बन्द कर देने से व्यथित हुए थे, अब वैसे ही इस ४ मार्च के समझौते से उनका व्यथित होना स्वाभाविक था। लेकिन :—

छोड़ दी गई है और न कोई सिद्वान्त ही त्यागा गया हे । उन्होंने धारा नम्बर २ का एक विशेष अर्थ लगाया, जिससे वह हमारी स्वतन्त्रता की माग से मेल खा सके । इसमे उनका आधार खास कर 'भारत के हित' मे शब्द थे । यह अर्थ मुझे खीचातानी का मालूम हुआ । मैं उसका कायल तो नही हुआ, लेकिन उनकी बातचीत से मुझे कुछ सात्वना जरूर हुई । मैंने उनसे कहा कि समझौते के गुण दोष को एक तरफ रख दे, तो भी एका-एक कोई नई बात खडी कर देने के आपके तरीके से मैं डरता हूँ । आपमे कुछ ऐसी अज्ञात वस्तु है, जिसे चौदह साल के निकट सम्पर्क के बाद भी मै बिलकुल नही समझ सका हूँ और इसने मेरे मन मे भय पैदा कर दिया है। उन्होने अपने अन्दर ऐसे अज्ञात तत्व का होना तो स्वीकार किया मगर कहा कि मैं खुद भी इसके लिए जवाबदेह नही हो सकता, न यही पहले से बता सकता हूँ कि वह मुझे कहाँ और किस ओर ले जायगा ।" (मेरी कहानी)

यह 'अज्ञात तत्व' जिससे जवाहरलाल भयभीत और सत्रस्त है और जिसके बारे मे गाधी खुद नही बता सकते कि वह उन्हे कहा और किस ओर ले जायेगा, नीत्शे का अति मानववाद है और हमारे राष्ट्रीय आदोलन को समझ-सोचकर सुधारवादी मार्ग पर चलाने वाली थियोसॉफिस्ट मिसेज एनी बेसेण्ट का ब्रह्मवाद भी है। दोनो से जवाहरलाल का पुराना परिचय है और उन्होने गाँधी जी मे अज्ञात तत्व एक बार नही अनेक बार देखा है । लिखा है

"भारत का धार्मिक साहित्य बडे-बडे तपस्वियो की कथाओ से भरा पडा है, जिन्होने घोर तप और त्याग के द्वारा भारी पुण्य-सचय करके छोटे-छोटे देवताओ की सत्ता हिलादी तथा प्रचलित व्यवस्था उलट-पलट दी । जब कभी मैंने गाधीजी के अक्षय अध्यात्मिक भडार से बहने वाली विलक्षण कार्य-शक्ति और

आतरिक बल को देखा तो मुझे अकसर ये कथाएँ याद आ जाया करती है। वह स्पष्टत: दुनिया के साधारण मनुष्य नही है। वह तो विरले और कुछ और तरह के साँचे मे ढाले गये है और अनेक अवसरो पर हमे उस अज्ञात के दर्शन होते थे।" (मेरी कहानी)

अब ऐसी अज्ञात शक्ति के आगे तर्क कैसे चल सकता है ? वह जो भी फैसला कर ले और जो भी कदम उठा ले, ठीक है। अतएव जब दिल्ली समझौता टाएँ-टाएँ फश हो जाने के बाद दोबारा सत्याग्रह शुरू हुआ और गांधीजी ने उसे उपवास के बल पर स्थगित किया तब जवाहरलाल ने लिखा :

"अपना उपवास शुरू करने से कुछ दिन पहले उन्होने मुझे अपने खास ढग का एक पत्र भेजा, जिससे मेरा दिल बहुत हिल गया। चूँकि उन्होने जवाब माँगा था, इसलिए मैने नीचे लिखा तार भेजा :

"आपका पत्र मिला, जिन मामलो को मै नही समझता, उनके बारे मे मै क्या कह सकता हूँ ? मै तो एक विचित्र देश मे अपने को खोया हुआ-सा अनुभव करता हूँ जहाँ आप ही एक मात्र दीप-सतम्भ है। अन्धेरे मे मै असना रास्ता टटोलता हूँ, लेकिन ठोकर खाकर गिर जाता हूँ। नतीजा जो कुछ हो, मेरा स्नेह और मेरे विचार आपके साथ होगे।"

उनका उपवास सकुशल पूरा हुआ। उपवास के पहले ही दिन वह जेल से रिहा कर दिए गए, और उनके कहने से छ. हफ्ते के लिए सविनिय-भग स्थगित कर दिया गया।" (मेरी कहीनी)

गाँधीजी और जवाहरलाल, रूप चाहे अलग-अलग भर रखे थे, दोनो समझ-सोचकर एक ही मार्ग और एक ही नीति पर चल रहे थे। वे दोनो एक दूसरे के पूरक थे। गाँधीजी ने अगर हमारी पिछड़ी हुई जनता के अन्धविश्वास का सहारा लेकर रामराज्य के सपने दिखाये तो जवाहरलाल ने इतिहास लिखकर उन सपनो मे रंग भरा और रामराज्य की सीमाएँ निर्धारित की, जो पश्चिम मे

मध्य एशिया तक और पूर्व-दक्षिण मे हिन्द चीनी तथा जावा और सुमात्रा तक फैली हुई थी। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्म-कथा मे ठीक ही लिखा है :

"वहुत-सी वातो मे गाधीजी से मत-भेद होने पर भी जवाहर लाल जी उनके नेतृत्व के महत्व को जानते और मानते थे, उसे किसी तरह कमजोर करना नही चाहते थे। यही कारण था कि मत-भेद होते हुए भी हम उनके साथ काम कर सकते थे।"

हम देखेगे कि गाँधीजी के नेतृत्व को कमजोर करने का तो सवाल ही पैदा नही होता जवाहरलाल ने हमेशा उसे मजबूत किया। कारण यह कि गाँधी जी की समझौते की नीति से उन्हे कोई मत-भेद ही नही था, मत-भेद अगर होता था तो इस वात मे कि समझौते मे क्या पाया और क्या नही पाया। लिखा है :

"हम लोग वड़ी-वड़ी वाते और लच्छेदार भाषा के आदी थे और दिमाग मे हमेशा सौदा करने की तजवीजें चला करती थी।" (मेरी कहानी)

सत्य, अहिंसा और हृदय-परिवर्तन का दर्शन इस सौदेवाजी और स्थापित स्वार्थों की रक्षा का दर्शन है और इसीसे 'अज्ञात' तत्व की सृष्टि होती है।

कुछ-न-कुछ

१२ फरवरी को सत्याग्रह बन्द हुआ। उसके लगभग एक महीना बाद अर्थात् १० मार्च को सरकार ने गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया, मुकदमा चलाया और उन्हे छ साल की लम्बी सजा दे दी; लेकिन दो साल के भीतर ही रिहा भी कर दिया।

जवाहर लाल १९२२ के इस सत्याग्रह मे पहली मर्तबा गिरफ्तार हुए थे और उन्हे छः महीने की सजा हुई थी। लेकिन सरकार ने मुकदमे पर पुनः विचार करके तीन माह बाद छोड दिया। वह साबरमती जेल मे गाँधी जी से मिले और उनके मुकदमे की सुनवाई के समय भी वह अदालत मे मौजूद थे। उस समय का दृश्य 'मेरी-कहानी' मे इन शब्दो मे प्रस्तुत किया है :

"वह एक हमेशा याद रखने लायक प्रसंग था और हम मे से जो लोग उस वक्त वहाँ मौजूद थे वह शायद उसे कभी भूल नही सकते। जज एक अंग्रेज था। उसने अपने व्यवहार मे काफी शराफत और सद्भावना दिखाई। अदालत मे गाँधीजी ने जो बयान दिया वह दिलो पर बहुत ही असर डालने वाला था। हम लोग जब वहाँ से लौटे तब हमारे दिल हिलोरे ले रहे थे और उनके ज्वलन्त वाक्यो और उनके चमत्कारी भावो और विचारों की गहरी छाप हमारे मन पर पड़ी हुई थी।"

गाँधीजी के चमत्कारी भावो और विचारो की बानगी देखिए।

ब्रिटिश साम्राज्य को अपनी सेवाओ का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा था :

"अपनी तमाम सेवाओ मे मैं इस विश्वास से प्रेरित हुआ था कि इन सेवाओ द्वारा अपने देशवासियो के लिए पूर्ण समानता का पद प्राप्त करना सम्भव हो सकेगा।" (आज का भारत)

इस सम्वन्ध मे सोचने की एक वात तो यह है कि वे देशवासी कौन थे, जिनके लिए पूर्ण समानता के पद की कामना की गई थी और जब साम्राज्यवादियो ने खुद-ब-खुद यह पद न दिया तो उन पर अहिंसात्मक आन्दोलन का और चर्खे का दवाव डाला गया। दूसरी वात यह कि इस आन्दोलन मे जनवरी, १९२२ तक तीस हजार आदमी जेल मे गये। जिन काग्रेस और खिलाफत के वडे नेता भी शामिल थे, पर आन्दोलन के सूत्रधार गाँधीजी को गिरफ्तार नही किया गया, उन्हे पूरी छूट दिए रखी। लेकिन आन्दोलन के भयकर रूप धारण करते ही जव गाँधीजी ने अपने हाथो उसका गला घोट दिया तो सरकार को उन्हे यकायक गिरफ्तार करने और इतनी लम्वी सजा देने की जरूत क्यो महसूस हुई ? इस रहस्य को समझना कठिन नही है, जरा सोचने की वात है। नेता सजा पाकर ही लोकप्रिय वनते हैं। सरकार ने मिसेज एनी वेसेंट को भी युद्व के दिनो मे अकारण गिरफ्तार करके अकारण नजरवन्द कर दिया था।

वहरहाल गाँधीजी के चमत्कारी भावो और विचारो की गहरी छाप मन पर लेकर जवाहरलाल इलाहावाद लौटे और उन्हे जेल से वाहर रहना सूना सूना और दु खप्रद जान पडा। सत्याग्रह वन्द हो जाने के वावजूद विलायती कपडे का वहिष्कार अव भी जारी था क्योकि इसमे हिन्दुस्तान के वडे उद्योगपतियो का लाभ था और इस वहिष्कार के क्रान्तिकारी रूप धारण करने की कोई आशका न थी। जवाहरलाल ने इसमे दिलचस्पी लेना शुरू की।

"इलाहावाद के लगभग सभी व्यापारियो ने यह वादा कर रखा

था कि वे विलायती कपडा न बाहर से मँगायेंगे और न हिन्दुस्तान ही मे किसी से खरीदेगे। इस मतलब के लिए उन्होने एक मडल भी बना रखा था। मडल के कायदो मे यह लिखा हुआ था कि जो कोई वादा तोडेगा उसे जुर्माने की सजा दी जायेगी। लेकिन कुछ बडे बडे व्यापारियो ने अपना यह वादा तोडकर विदेशो से कपडा मँगाना शुरू कर दिया। जब उन पर कहा-सुनी का कोई असर न हुआ तो जवाहरलाल ने उनकी दुकानों पर धरना देना तय किया। धरने के डर से इन लोगो ने जुर्माना भर दिया और विलायती कपड़ा मंगवाना बन्द कर दिया। जुर्माने का रुपया मडल के पास गया।"

अब विदेशी कपडे के बहिष्कार मे अंग्रेज व्यापारियो की हानि थी। सरकार ने जवाहरलाल और उनके साथियो को गिरफ्तार कर लिया और उन पर लोगो को डरा-धमकाकर रुपया ऐंठने का आरोप लगाया था। इसके साथ ही राज-द्रोह का भी आरोप था। जवाहरलाल को तीन जर्मो मे एक साल नो महीने की सजा हुई और उन्हे दोबारा जेल भेज दिया गया।"

अगले साल अर्थात् जनवरी १९२३ के अन्त मे सारे राजनैतिक कैदी छोड दिए गए। जवाहरलाल जब जेल से घर पहुँचे तो उन्हे सबसे पहले जो खत मिला वह इलाहाबाद हाईकोर्ट के तत्कालीन चीफ जस्टिस सर ग्रिमवुड मियर्स का था। जैसा कि सर ग्रिमवुड ने बाद मे खुद बताया, उन्हे आशा थी कि जवाहरलाल बहुत ऊँचा उठेगे। इसलिए, मेल-मुलाकात बढाकर और अपना दृष्टिकोण समझाकर वह जवाहरलाल पर अपनी नेक नसीहत का असर डालना चाहता था। मेल-मुलाकात बढी। और सिर्फ सर ग्रिमवुड ही से नही बहुत से अंग्रेजो से मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू के अच्छे सम्बन्ध थे। जवाहरलाल के अपने शब्दो मे "शायद नर्म दल वालो तथा अन्य लोगो की बनिस्बत जो हिन्दुस्तान मे अंग्रेजो से राजनैतिक सहयोग करते है, मेरा अंग्रेजो से ज्यादा मेल

खाता है।" निस्सदेह इस मेल ने भी ऊँचा उठने मे सीढी का काम दिया।

उस साल वहुत से काग्रेसी नेता जेलो से बाहर आकर म्यूनिस्पैलिटियो के अध्यक्ष बने। देशबन्धु चितरजनदास कलकत्ता के पहले मेयर चुने गये। विट्ठल भाई बम्बई कार्पोरेशन के प्रेसिडेण्ट चुने गये और सरदार वल्लभ भाई अहमदाबाद के। इसी प्रकार सयुक्त प्रान्त (यू० पी०) मे, ज्यादातर बडी म्यूनिस्पैलिटियो के चेयरमैन काग्रेसी ही वने। अतएव जवाहरलाल भी अपनी रिहाई के कुछ हफ्तो वाद ही इलाहाबाद म्यूनिस्पैलिटी के अध्यक्ष चुने गये।

इसके अलावा जवाहरलाल प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के मत्री और फिर अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के भी मत्री बना दिये गये। लिखा है कि "इन तीनो हैसियतो से, मै वहुत-से कामो मे लग गया और इस तरह मैने उन मामलो से बचने की कोशिश की जो मुझे परेशनी मे डाले हुए थे, लेकिन उनमे वचना सम्भव न था। जो प्रश्न बार-बार मेरे मन मे उठते थे और जिनका कोई सतोपजनक उत्तर मुझे नही मिलता था, उनसे मैं कहाँ भाग सकता था? इन दिनो जो काम मैं करता था वह सिर्फ इसलिए कि मैं अपने अन्तर्द्वन्द्व से वचना चाहता था।" (मेरी कहानी)

१९२१ मे असेम्वली और कौसिलो का वहिष्कार कर दिया। गया था। अव जब कांग्रेसी नेता जेलो से रिहा हुए तो कौसिलो मे जाने न जाने के सवाल पर फिर जोरो से वहस उठी। जो लोग चुनाव लडकर कौंसिलो और असेम्वली मे जाने और भीतर से सरकार के विरुद्ध लडने के पक्ष में थे, वे परिवर्तनवादी कहलाये और उनके नेता चितरजन दास और मोतीलाल नेहरू थे। जो लोग अव भी असेम्वली और कौसिलो का वहिष्कार वदस्तूर जारी रखने और अपनी समस्त शक्ति अछूतोद्धार तथा चर्खा कातने आदि के रचनात्मक कार्य मे लगा देने के पक्ष मे थे, अपरिवर्तनवादी कहलाये और

उनके नेता गाँधीजी थे।

यो काँग्रेस दो गुटो मे वँट गई और दोनो गुटो मे बड़ा कड़ा सघर्ष चला। लेकिन १९२३ के चुनावो मे परिवर्तनवादियो को जिन्होने स्वराज पार्टी सगठित करली थी, शानदार सफलता मिली और वे असेम्बली तथा कौसिलो मे अपने बहुत से उम्मीदवार भेजने मे सफल हुए।

१९२४ मे स्वराजियो ने सी० आर० दास और मोती लाल नेहरू के नेतृत्व मे काँग्रेस पर भी कब्जा कर लिया और कहा जाता था कि आइन्दा पाँच-छः साल के लिए गाधीजी और उनके अपरिर्वतनवादी अनुयायियो का प्रभाव राजनीति मे फीका पड गया और स्वराजियो का बोल-बाला रहा।

जवाहरलाल कौसिलो मे जाने के पक्ष मे तो नही थे, लेकिन उन्होने और कुछ दूसरे लोगो ने इन दोनो गुटो मे समझौता कराने की कोशिश की, जिसमे उन्हे सफलता नही मिली।

सी० आर० दास ने जवाहरलाल को स्वराजियो के मत का बनाने की कोशिश की, पर उन्हे सफलता प्राप्त नही हुई। लिखा है कि "यद्यपि मुझे दिखाई नही देता था कि मुझे क्या करना चाहिए और उन्होने अपनी सारी वकालत खर्च कर दी, तो भी मेरा दिल उनके अनुकूल न हुआ।"

इस संघर्ष तथा मतभेद ने बाप-बेटे के आपसी सम्बध पर क्या असर डाला, इस सिलसिले मे जवाहरलाल का अपना कहना तो यह है कि उन्होने मुझ पर स्वराजी बन जाने के लिए कभी जोर नही डाला और सब कुछ मेरी मर्जी पर छोड दिया। लेकिन उर्दू के मशहूर शायर फिराक गोरखपुरी ने, जो उन दिनों कांग्रेस दफतर आनंद भवन मे जवाहरलाल के साथ काम करते थे, अपने एक संस्मरण मे लिखा है :

"देशबंधु चितरंजदास, पडित मोतीलाल नेहरू लाला लाज-

पतराय और देश-भक्तो का एक बडा भाग असहयोग आँदोलन के चार साल बाद यह चाहने लगा कि असेम्बली और कौंसिलो का बायकाट बद कर दिया जाये और चुनाव लडा जाये। महात्मा गाँधी टस-से-मस नहीं होते थे। जवाहरलाल नेहरू इस मामले मे रहे तो खामोश, पर गाधीजी से खुल्लम-खुल्ला मतभेद का विचार उनके मार्ग मे बाधा बन जाता था। बाप-बेटे मे अर्थात् मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू मे एक मन मुटाव पैदा हो गया। मुझे क्या खबर थी कि आनद भवन एक मूक पर अप्रिय तनाव मे ग्रस्त हो चुका है। उन्ही दिनो एक रोज जब जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस महासमिति के दफतर मे मौजूद नही थे, दफतर मे डाक आई जो मुझे सौंप दी गई। उसमे एक लिफाफा जवाहरलाल नेहरू के नाम था और पता महात्मा गाँधी का लिखा हुआ था। उस समय मुझ मे एक अपराध हुआ, जिसे मैं आज प्रकट कर रहा हुँ। मुझे कोई अधिकार गाँधीजी के जवाहरलाल के नाम इस व्यक्तिगत पत्र को खोलने का न था। मुझ मे रहा न गया और अत्यन्त सावधानी से मैंने इस खत को खोलकर पढ लिया। गाँधीजी ने जवाहरलाल को लिखा था कि तुम तकलीफ और परेशानी महसुस कर रहे हो, तो मैं तुम्हे किसी कालेज मे प्रोफेसरी दिलाने की तुरत कोशिश कर सकता हूँ। मैंने सावधानी से लिफाफा बद कर दिया और वह दूसरे दिन जवाहरलाल नेहरू को मिल गया। उन्हे या किसी को पता नही चलने पाया कि मैं महात्माजी का खत पढा चुका हूँ। उस समय मुझे मालूम हुआ कि बाप-बेटे मे तनाव यहाँ तक पहुँच गया है। होता यह था कि हर साल एक दिन पडित मोतीलाल नेहरू लगभग दस हजार रुपये जवाहरलाल के नाम करेंट अकाउंट मे बैंक मे जमा कर देते थे, ताकि साल भर तक उन्हे अपने निजी खर्च के लिए बाप से कुछ माँगना न पडे। पर जब उक्त मन-मुटाव पैदा हो गया, तो उस साल मोतीलाल जी ने ऐसा नही किया था,

जिससे यह गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गई थी।"

(आज कल · नेहरू-स्मृति अक)

इन्ही दिनो का लिखा हुआ गाँधीजी का एक खत बाद मे जवाहरलाल नेहरू ने अपने द्वारा सम्पादित 'कुछ पुरानी चिट्ठियाँ" नाम की पुस्तक मे प्रकाशित किया है। यह खत १५ सितम्बर, १९२४ को लिखा गया था। फिराक ने गालबिन यही खत पढा होगा। खत देखिए, इससे गाँधीजी की अपनी मन स्थिति पर भी प्रकाश पडता है :

"दिल को छने वाला तुम्हारा निजी पत्र मिला। मै जानता हूँ कि इन सब चीजो का तुम बहादुरी से मुकाबला करोगे। अभी तो पिता जी चिढे हुए है और मै बिलकुल नही चाहता कि तुम या मै उनकी झुझलाहट बढाने का जरा भी मौका दे। सभव हो तो उन से जी खोलकर बाते कर लो और ऐसा कोई काम न करो, जिससे वह नाराज हो। उन्हे दुखी देखकर मुझे दुख होता है। उनकी झुझलाहट उनके दु ख की अचूक निशानी है। हसरत (मौलाना हसरत मोहानी) आज यहाँ आये थे। उनसे पता चला कि हर कांग्रेसी के कातने सम्बधी मेरे प्रस्ताव से भी उन्हे अशान्ति होती है। मुझे ऐसा महसूस होता है कि कांग्रेस से हट जाऊँ और चुपचाप तीनो काम करने लगू। उनमे जितने भी सच्चे स्त्री-पुरुष हमे मिल सकते है उन सब के खपने की गुजायश है। लेकिन इस से भी लोगो को अशान्ति होती है। पूना के स्वराज्यवादियो से मेरी लम्बी बातचीत हुई। वे कातने को भी राजी नही और मेरे कांग्रेस छोड देने पर भी सहमत नही। उनकी समझ मे यह नही आता कि योही मै अपना स्वरूप छोड दूगा, मेरा कोई उपयोग नही रह जायगा। यह भद्दी स्थिति है। मगर मै निराश नही हूँ। मेरा ईश्वर पर विश्वास है। इतना ही जानता हूँ कि इस घडी मेरा क्या धर्म है। इसके आगे का मुझे मालूम ही नही। फिर मैं क्यो चिता करूँ ?

क्या तुम्हारे लिए कुछ रुपये का बदो-बस्त करूँ ? तुम कुछ कमाई का काम क्यो न हाथ मे ले लो ? आखिर तो तुम्हे अपने ही पसीने की कमाई पर गुजर करनी होगी, भले ही तुम पिताजी के घर मे रहो। कुछ समाचार पत्रो के सम्वाददाता वनोगे, या अध्यापकी करोगे ?

सप्रेम तुम्हारा मो क गांधी"

सवाल यह पैदा होता है कि जब जवाहरलाल असेम्बली और कौंसिलो मे जाने के बारे मे अपने पिता और सी. आर दास से सहमत नही थे तो उन्होने म्यूनिसिपैलिटी का चेयरमैन बनना कैसे स्वीकार किया ? यह भी तो वैसा ही काम था।

लेकिन यह काम उन्होने डेढ दो साल तक बडी दिलचस्पी से किया और इतनी अच्छी तरह किया कि प्रान्तीय सरकार ने भी उनके इस काम की तारीफ की।

इस बीच मे एक बात यह हुई कि पजाब मे सिक्खो ने नाभा के सिख राजा को गद्दी से उतारने के विरोध मे सत्याग्रह शुरू किया। वे जैतो नाम के स्थान पर जहाँ अखड पाठ रोक दिया गया था, जत्थे भेजते थे। सरकार मार-पीट करती और फिर सत्याग्रहियो को पकडकर बीहड जगल मे छोड आती थी और नेताओ को जेल मे डाल देती थी।

जवाहरलाल आचार्य गिडवानी और मद्रास के के० सन्तानम को साथ लेकर अकालियो का यह सत्याग्रह देखने गये। रियासत की सरकार ने जत्थे के दूसरे लोगो के साथ इन तीनो को भी गिरफ्तार कर लिया, चाहे वे कहते रहे कि हम महज दर्शक हैं और जत्थे मे शामिल नही। मुकदमा चलाया गया और उन्हे दो-दो साल कैद की सजा दे दी गयी। कहने की जरूरत नही कि रियासत की जेल निहायत सख्त थी। लेकिन मोतीलाल के हस्तक्षेप और वायसराय को लिखने के कारण तीनो कुछ ही दिनो मे छूट गये।

नाभा से लौटने पर जवाहरलाल कोकनाडा कांग्रेस अधिवेशन (१९२३) मे शामिल होने गये। वहाँ कांग्रेस सेवादल की नीव रखी गई। हार्डीकर के कहने पर जवाहरलाल नेहरू उसमे दिलचस्पी लेने लगे।

लेकिन वहाँ से लौटे ही थे कि इलाहाबाद मे एक दिलचस्प घटना घटी। जनवरी, १९२४ मे कुम्भ का मेला था। इस पर्व पर लाखो हिन्दू यात्री सगम पर स्नान करने आते है। पर उस वर्ष गगा की धार कुछ खतरनाक सूरत अख्तयार कर गई थी और सरकार ने सगम पर नहाने के सिलसिले मे कुछ पाबदियाँ लगा दी थी। अब नहाने का महत्व सगम पर ही था, इसलिए पडित मदन-मोहन मालवीय ने इन पाबदियो पर एतराज किया और अगर वे न हटाई गई तो सत्याग्रह की चुनौती दी।

कुम्भ के दिन सुबह-सुबह जवाहरलाल नेहरू यो ही मेला देखने की नीयत से सगम पर जा निकले। उनका इरादा उनके अपने कथनानुसार नहाने का बिलकुल नही था, क्योकि गगा-स्नान मे पुण्य अर्जित करने मे उनका विश्वास नही था। लेकिन जब उन्होने मालवीयजीको दो सौ आदमियो के साथ जिला मजिस्ट्रेट की मनाही के बावजूद सगम की ओर बढते देखा तो वह भी चट जोश मे आकर सत्याग्रही दल मे शामिल हो गये। घुडसवार और पैदल पुलिस ने सत्याग्रहियो को घेर लिया, हल्का-सा डडा भी चला, लेकिन मालवीयजी और सत्याग्रही अपने स्थान पर डटे रह। इस हालत मे जब काफी समय बीत गया तो मालवीय जी एकाएकी उठे और तीर की तरह घोडो और पुलिस वालो के बीच मे से निकलकर गोता जा लगाया। जवाहरलाल और दूसरे सत्याग्रही भी उनके पीछे चले और सबके-सब पानी मे कूद पडे। इसके बाद पुलिस वहाँ से हटा ली गई।

गगा-स्नान से पुण्य अर्जित करने की बात जाने दीजिए, पर

मालवीयजी के साथ अखबारो में जवाहरलाल की भी बडी चर्चा रही और उन्होने खूब ख्याति अर्जित की।

स्वराज्य पार्टी के लोग यह कहकर असेम्बली और कौसिलो मे गये थे कि हम सरकार से सहयोग नही करेगे। लेकिन भीतर जाकर बहुत से सदस्य ओहदो के प्रलोभन मे आ गये। मोतीलाल बहुत गरजे-चिल्लाये और पार्टी से निकाल देने की धमकी दी। लेकिन इससे कुछ लाभ न हुआ। कुछ स्वराजी मिनिस्टर हो गये और कुछ प्रान्तो मे कार्यकारिणी के सदस्य। उन्होने अपना एक अलग दल बनाया और अपना नाम 'प्रति सहयोगी' रखा।

हिन्दु-मुस्लिम एकता टूट चुकी थी और अब बडे-बडे शहरो मे जरा-जरा-सी बात पर साम्प्रदायिक दगे भडक उठते थे। जवाहरलाल के कथनानुसार हमारी आजादी की लडाई मे स्पष्ट आदर्शो और ध्येयो की कमी ने साम्प्रदायिक जहर फैलाने मे मदद दी। पजाब मे एक असाधारण और विकट तिकोना तनाव पैदा हो गया था। कारण यह है कि जिस तरह असेम्बली और कौसिलो पर और नौकरियो मे मुसलमानो को अलग प्रतिनिधित्व दे दिया गया था, सिख भी अपनी जाति के लिए अलग प्रतिनिधित्व की माँग कर रहे थे।

जवाहरलाल इन बातो से बहुत विक्षुब्ध थे और वह हिन्दुस्तान से कही दूर चले जाना चाहते थे। फिर उनकी पत्नी कमला अर्से से बीमार रहती थी और डाक्टरो ने स्वीटजरलैंड मे उनका इलाज कराने का मशविरा दिया। अतएव जवाहरलाल ने चेयरमैनी से इस्तीफा दे दिया।

मार्च १९२६ के शुरू मे वे कमला और अपनी बेटी इंदिरा के साथ जहाज मे बम्बई से वेनिस के लिए रवाना हुए। उनकी बहन विजयलक्ष्मी और बहनोई रजीत पडित भी इसी जहाज से अपने तौर पर योरुप जा रहे थे।

राष्ट्रीयता और अंतरराष्ट्रीयता

जवाहरलाल देश के रूढिग्रस्त और साम्प्रदायिक वातावरण से ऊबकर यूरोप गये थे। कोई पौने दो साल बाद १९२७ के अत मे वहाँ से लौटे तो बहुत अच्छी शारीरिक और मानसिक अवस्था मे लौटे। अपनी इस अवस्था को उन्होने खुद यो चित्रित किया है :

"मै ऐसा महसूस करता था कि मुझमे शक्ति और जीवन लबालब भर गया है, और इसमे पहले भीतरी द्वद्व और मनसूबो के बिगड जाने का जो खयाल मझे अक्सर परेशान करता रहता था, वह इस वक्त न रहा था। मेरा दृष्टि-बिन्दु व्यापक हो गया था और केवल राष्ट्रीयता का लक्ष्य मुझे निश्चित रूप मे तग और नाकाफी मालूम होता था। इसमे कोई शक नही कि राजनैतिक स्वतत्रता लाजिमी थी, लेकिन वह तो सही दिशा मे कदम भर है। जब तक सामाजिक आजादी न होगी और समाज का तथा राज का बनाव समाजवादी न होगा, तब तक न तो देश ही अधिक उन्नति कर सकता है, न उसमे रहने वाले लोग ही। मै यह महसूस करने लगा कि मुझे दुनिया के मामले ज्यादा साफ दिखाई दे रहे है। आजकल की दुनिया को जो कि हर वक्त बदलती रहती है। चालू मामलो और राजनीति के बारे मे ही नही, बल्कि सास्कृतिक और वैज्ञानिक तथा और भी ऐसे विषयो पर जिनमे मेरी दिलचस्पी थी, मैने खूब पढा। योरुप और अमरीका मे जो बडे-बड़े राजनैतिक आर्थिक और सास्कृतिक परिवर्तन हो रहे थे, उनके अध्ययन मे मुझे बड़ा लुत्फ आता था।

यद्यपि सोवियत रूस के कई पहलू अच्छे नही मालूम होते थे, फिर भी वह जोरो से मुझे अपनी ओर खीचता था और ऐसा मालूम होता था कि वह दुनिया को आशा का सन्देश दे रहा है। १९२५ के आस-पास योरुप एक तरीके से एक जगह जमकर बैठने की कोशिश कर रहा था। महान आर्थिक सकट तो उसके बाद ही आने वाला था। लेकिन मैं वहाँ से यह विश्वास लेकर लौटा कि जमकर बैठने की यह कोशिश तो ऊपरी है और निकट भविष्य मे योरुप मे और दुनिया मे भारी उथल पुथल होने वाली है तथा बडे-बडे विस्फोट होने वाले है।

"मुझे फौरन ही सबसे पहले करने का काम यह दिखाई दिया कि हम देश को इन विश्व-व्यापी घटनाओ के लिए शिक्षित व उद्यत करें, उसे उनके लिए जहाँ तक हमसे हो सके वहाँ तक तैयार रखे। यह तैयारी ज्यादातर विचारो की तैयारी थी, जिसमे सबसे पहली यह थी कि हमारी राजनैतिक आजादी के लक्ष्य के बारे मे किसी को कुछ शक नही होना चाहिए। यह बात तो सबको साफ-साफ समझ लेनी चाहिए कि हमारे लिए एक मात्र राजनैतिक ध्येय यही हो सकता है और औपनिवेशिक पद के बारे मे जो अस्पष्ट और गोल-मोल बाते की जाती है, उनसे आजादी बिलकुल जुदा चीज है। इसके अलावा सामाजिक ध्येय भी था। मैंने महसूस किया कांग्रेस से यह उम्मीद करना कि अभी इस तरफ वह ज्यादा दूर जा सकेगी, बहुत ज्यादा होगा। कांग्रेस तो महज एक राजनैतिक राष्ट्रीय सस्था है, जिसे दूसरे तरीको पर सोचने का अभ्यास न था। लेकिन, फिर भी इस दिशा मे भी शुरूआत की जा सकती है। कांग्रेस से बाहर मजदूर मडलो मे और नौजवानो मे खयालात कांग्रेस से ज्यादा दूर तक फैलाये जा सकते थे, इसके लिये मैं अपने को कांग्रेस के दफ्तर के काम से अलग रखना चाहता था। इसके अलावा मेरे मन मे कुछ-कुछ यह खयाल भी था कि मैं कुछ महीने सुदूर भीतर के गाँवो मे रहकर उनकी हालत का अध्ययन करने मे बिताऊँ। लेकिन ऐसा

होना न था और घटनाओ ने तय कर लिया था कि वे मुझे कांग्रेस की राजनीति मे घसीट लेगी ।" (मेरी कहानी)

उद्धरण वहुत लम्वा हो गया है । लेकिन इस समय देश एक ऐतिहासिक मोड पर था । यह उद्धरण इस मोड को, आगामी घटनाओ को, हमारी राजनीति को और खुद जवाहरलाल को समझने की कुजी है । "कुछ-कुछ यह खयाल" की द्विचितता और इस वाक्य पर "लेकिन ऐसा होना न था और घटनाओ ने तय कर लिया था कि वे मुझे कांग्रेस की राजनीति मे घसीट लेंगी" विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है। मुझे अनायास उर्दू का एक शेर स्मरण हो आया है । शेर यह है ·

जी में आता है लगा दूं आग कोहे-तूर को,
फिर खयाल आता है मूसा बे-वतन हो जाएगा ।

कवि रूढि और अधविश्वास के खिलाफ विद्रोह की भावना से प्रेरित है । उसे यह कहानी कि खुदा ने हजरत मूसा को कोहे-तूर पर जलवा दिखाया था सरासर झूठ जान पडती है । इस झूठ को मिटाने के लिए वह चाहता है कि कोहे-तूर को ही आग लगा दूं । लेकिन फौरन ही खयाल आता है कि अगर इस झूठ को मिटा दिया, इस कहानी का ही अस्तित्व न रहा तो हजरत मूसा का क्या वनेगा उसे कौन पूछेगा ? वह वे-वतन नही हो जायेगा ? मूसा मे कवि की आस्था है, इसलिए वह कोहे-तूर को आग लगाने का अपना विद्रोही विचार त्याग देता है ।

पडित जवाहरलाल नेहरू के हजरत मूसा थे महात्मा गांधी यह वात याद रखने की है ।

यूरोप से लौटते ही जवाहरलाल कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन मे शरीक हुए । वहाँ उन्होंने मुकम्मिल आजादी के वारे मे, युद्ध के खतरे के वारे मे और साम्राज्य-विरोधी-लीग के वारे मे आदि कई प्रस्ताव रखे, जो विना किसी विरोध के पास हो गये । आजादी के प्रस्ताव

का तो मिसेज एनीवेसेन्ट तक ने समर्थन कर दिया। चारो तरफ के इस समर्थन से जवाहरलाल को खुशी के वजाय परेशानी हुई क्यो कि लोगो ने या तो इन प्रस्तावो का मतलब और महत्व नही समझा या अपने मन मे सोचा कि नौजवान अगर प्रस्ताव भर पास कर देने से खुश होते हैं, तो पास कर दो, इस मे हर्ज ही क्या है ?

ठीक टालने ही की वात थी। उसी समय उसी वैठक मे एक दूसरा प्रस्ताव आया जो साईमन कमीशन के वहिष्कार सम्वन्धी था और जिसमे यह तजवीज रखी गई थी कि सव दलों की एक कान्फ्रेस वुलाई जाए जो हिन्दुस्तान के लिए शासन-विधान तैयार करे। जाहिर है कि जो शासन-विधान माडरेटो समेत सव दलो के सहयोग से तैयार होना था, वह डोमीनियन स्टेट्स अर्थात औपनिवेशिक-पद से ज्यादा क्या हो सकता था। सर्वदल सम्मेलन के इस प्रस्ताव ने आजादी के प्रस्ताव को कागज का एक पुर्जा मात्र बना दिया।

सभापति डा० अन्सारी थे। नौजवानो के प्रतिनिधि जवाहरलाल और सुभाप वोस दोनो को यहाँ सचिव नियुक्त किया गया।

जवाहरलाल ने सुभाप का जिक्र नही किया सिर्फ अपने ही सेक्रेटरी वनाये जाने की वात लिखी है और आजादी का प्रस्ताव वे-असर तथा खत्म कर दिये जाने के वावजूद अपने इस पद पर वने रहने के दो कारण वताये है, एक यह कि "डाक्टर अन्सारी मेरे पुराने और प्यारे दोस्त थे। और इनकी इच्छा थी कि मैं ही सेक्रेटरी वनूँ।" दूसरा असल कारण यह था कि उन दिनो कॉंग्रेस दुविधा मे पडी हुई थी, कभी वह उग्रता की तरफ वढती तो कभी नरमी की तरफ हटती थी। "मैं चाहता था कि जहाँ तक मुझसे हो सके वहाँ तक इस दुविधा मे झूलती हुई कांग्रेस को नरमी की तरफ न झुकने दूँ। और उसे आजादी के ध्येय पर उठाये रहूँ।"

लेकिन हम देखेंगे कि जहाँ सुभाष अपने ध्येय पर अडिग रहे,

वहाँ घटनाएँ जवाहरलाल को अपने साथ घसीट ले गई।

बाद मे जवाहरलाल के प्रस्तावो का विरोध हुआ और सबसे ज्यादा विरोध गाँधीजी ने किया। इन प्रस्तावो की उन्होंने जल्दबाजी मे और बिना सोचे-समझे पेश किया गया" कहकर निन्दा की। ४ जनवरी १९२८ को जवाहरलाल के नाम लिखे पत्र मे अपने इस विरोध को इन शब्दो मे व्यक्त किया है :

"प्रिय जवाहरलाल,

मेरा खयाल है, तुम्हे मुझसे इतना अधिक प्रेम है कि मैं जो कुछ लिखने जा रहा हूँ उसका तुम बुरा नही मानोगे। जो हो, मुझे तो तुमसे इतना ज्यादा प्रेम है कि जब मुझे लिखने की जरूरत महसूस हो तब मैं अपनी कलम को रोक नही सकता।

तुम बहुत ही तेज जा रहे हो। तुम्हे सोचने और परिस्थति के अनुकूल बनने का समय लेना चाहिए था। तुमने जो प्रस्ताव तैयार किए और पास कराये उनमे से अधिकाश के लिए एक साल की देर थी "गणतन्त्री सेना" (Republicun army) मे तुम्हारा कूद पडना जल्दबाजी का कदम था। परन्तु मुझे तुम्हारे इन कामो की इतनी परवाह नही, जितने तुम्हारे शरारतियो और हुल्लडबाजो को प्रोत्साहन देने की है। पता नही, तुम अब भी विशुद्ध अहिंसा मे विश्वास रखते हो या नही। परन्तु तुमने अपने विचार बदल दिये हो तो भी तुम यह नही सोच सकते कि अनाधिकृत और अनियन्त्रित हिंसा से देश का उद्धार होने वाला है। अगर अपने यूरोपीय अनुभवो के प्रकाश में देश के ध्यानपूर्वक अवलोकन से तुम्हे विश्वास हो गया हो कि प्रचलित तौर-तरीके गलत हैं तो बेशक अपने ही विचारो पर अमल करो, मगर मेहरबानी करके कोई अनुशासन-बद्ध दल बना लो। कानपुर का अनुभव तुम्हे मालूम है। प्रत्येक संग्राम मे ऐसे मनुष्यो की टोलियाँ चाहिएँ जो अनुशासन मानें। तुम अपने साधनो के बारे में लापरवाह होकर इस तत्त्व की उपेक्षा कर रहे हो।

अब तुम राष्ट्रीय महासभा के कार्यवाहक मन्त्री हो। ऐसी सूरत मे तुम्हे सलाह दे सकता हू कि तुम्हारा कर्त्तव्य है कि केद्रीय प्रस्ताव अर्थात् एकता पर और साईमन-कमीशन के बहिष्कार के महत्वपूर्ण परन्तु गौण प्रस्ताव पर अपनी सारी शक्ति लगा दो। एकता के प्रस्ताव का सगठन करने और समझाने-बुझाने के तुम्हारे तमाम बडे गुणो के उपयोग की जरूरत है। मेरे पास अपनी बातो का विस्तार करने का समय नही है, परन्तु बुद्धिमान के लिये इशारा काफी होना चाहिये।

आशा है कमला का स्वास्थ्य यूरोप की तरह अच्छा होगा।

सप्रेम तुम्हारा

बापू

शायद जवाहरलाल ने इसके उत्तर मे अपने मन के भाव व्यक्त किये हो। लेकिन उनका पत्र हमारे पास नही, लेकिन गाँधीजी ने १७ जनवरी को इस सिलसिले मे फिर एक लम्बा पत्र लिखा। उसका सिर्फ अन्तिम पैरा देखिए।

"तुम्हारी पताका फहरे, इसका एक शानदार तरीका सुझाऊँ। मुझे प्रकाशन के लिए एक पत्र लिखो, जिसमे तुम्हारे मत-भेद प्रकट किये गये हो। मैं उसे "यग इन्डिया" मे छाप दूँगा और उसका सक्षिप्त उत्तर लिख दूँगा। तुम्हारा पहला पत्र मैंने पढने और जवाब देने के बाद फाड दिया था। दूसरा रख लिया है और अगर तुम और कोई खत लिखने की तकलीफ नही उठाना चाहते तो जो चिट्ठी मेरे सामने है उसी को छापने के लिए तैयार हूँ। मुझे पता नही, इसमे कोई बुरा लगने वाला अश है। लेकिन कोई हुआ तो विश्वास रखो मैं ऐसे अश निकाल दूँगा। मैं उस पत्र को एक स्पष्ट और प्रमाणित दस्तावेज मानता हूँ।"

क्या यह पब्लिक के साथ ब्लैकमेलिग का सुझाव नही है? सोचिए, क्या इसी का नाम सत्य और अहिंसा है?

कि "कोई भी महत्त्वपूर्ण बात उनको बताये बिना नही की जाती थी" इससे यूरोप के अपने इस दौरे मे नेहरू ने जो कुछ किया उसकी पूरी जानकारी बराबर गांधी जी को जुटाई और उनकी राय पूछी। उदाहरण के लिए मद्रास अधिवेशन मे जिस साम्राज्य विरोधी लीग के बारे मे प्रस्ताव पास किया गया उसका सगठन ब्रेसेल्स मे दलित राष्ट्रो के सम्मेलन ने किया था, जिसमे नेहरू कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप मे शरीक हुए थे। उसके बारे मे गांधी जी ने जवाहरलाल के नाम अपने २५ मई १९२७ के पत्र मे यह मत व्यक्त किया है :

"दलित राष्ट्र सम्मेलन की कार्रवाइयो के बारे मे मैने तुम्हारा सार्वजनिक विवरण और तुम्हारा निजी गुप्त विवरण भी खूब ध्यान लगाकर पढा। खुद मुझे तो इससघ से बहुत आशा नही है, क्योकि और कुछ कारण न भी हो तो यह तो है ही कि उसकी स्वतत्र प्रवृत्ति का दारोमदार उन्ही सत्ताओ के सद्भाव पर है, जो दलित राष्ट्रो के शोषण मे हिस्सेदार है और मेरा खयाल है कि यूरोपियन राष्ट्रो के जो सदस्य इस सघ मे शरीक हुए थे वे अत तक गर्मी कायम नही रख सकेगे। कारण, जिसे वे अपने स्वार्थ की हानि समझेगे उसमे वे अपने को अनुकूल नही बना सकेंगे। इधर यह खतरा है कि हमारे लोग अपनी भीतरी शक्ति का विकास करके मुक्ति प्राप्त करने के बजाय उसके लिए फिर बाहरी शक्तियो की ओर देखने और बाहरी मदद ढूढने लगेगे। मगर यह तो कोरी दिमागी राय है। मैं यूरोप की घटनाओ का ध्यानपूर्वक अवलोकन बिलकुल नही कर रहा हूँ। तुम मौके पर हो और तुम्हे वहाँ के वायुमडल मे वास्तविक सुधार दिखाई दे सकता है, जो मुझे बिलकुल दिखाई नही देता।"

जिन लोगो को देश की राजनीति मे रहनुमाई की भूमिका अदा करनी होती है, उनके लिए लाजिमी है कि वे न सिर्फ राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को भी बखूबी समझे और छोटी-बड़ी घटनाओ का विश्लेषण करके उनका विरोध या समर्थन करे। गांधीजी भी

समझते थे और उन्होने मौके पर न होने की बात तो वैसे ही लिख दी है, असल में उन्हे कॉंग्रेस अर्थात् हिन्दुस्तान का सम्बन्ध साम्राज्य विरोधी लीग से जोड देना नापसंद था। उनकी इस नापसदी अथवा विरोध का कारण क्या था ? कारण भी उन्होने बता दिया है, लेकिन हकीकत को समझने के लिए हमे भी अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को और १९२७ की इस साम्राज्य विरोधी लीग के पीछे काम कर रही शक्तियो को समझना होगा, तभी हम गांधी जी के विरोध को समझ पायेगे।

इसके लिए हमे इतिहास मे दस साल पीछे जाना होगा।

रूस की अक्तूबर १९१७ की महान क्रान्ति मे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे एक मूलभूत परिवर्तन आया था। १९१८ मे क्रान्ति की पहली वर्षगांठ के अवसर पर अपने भाषण मे स्तालिन ने इस मूल-भूत परिवर्तन की व्याख्या यो की थी।

तमाम दुनिया को एक सूत्र अथवा जजीर मे उन्नीसवी सदी के अन्त मे खुद साम्राज्यवाद ने बाँधा था। यह जजीर १९१७ की अक्तूबर क्रान्ति ने तोड दी और साम्राज्यवाद की क्रान्ति विरोधी शक्तियो के विश्व मोर्चे के खिलाफ साम्राज्य विरोधी क्रान्तिकारी शक्तियो का एक विश्व मोर्चा कायम हो गया, जिससे गुलाम देशो की आजादी की सम्भावनाए बहुत बढ गई। ब्रसेल्स के दलित राष्ट्र सम्मेलन द्वारा स्थापित इस साम्राज्य विरोधी लीग के पीछे यही क्रान्तिकारी शक्तियाँ काम कर रही थी।

नेहरू ने राजनैतिक स्थिति का यह विश्लेषण तो नही किया, शायद वह करना भी नही चाहते थे, लेकिन उन्होने 'मेरी कहानी' मे ब्रसेल्स मे पीडितो की सभा का विवरण इन शब्दो मे दिया है :

"पददलित कौमो मे आपस मे तथा इन कौमो मे और मजदूर उग्र दलो मे एक दूसरे के साथ मिलकर सयुक्त रूप से कुछ काम करने का खयाल उन दिनो लोगो मे फैला हुआ था। लोग अधिकाधिक यह महसूस करने जाते थे कि साम्राज्यवाद नाम की चीज के खिलाफ आजादी की लडाई सबके लिए एक-सी है, इसलिए यह मुनासिब मालूम होता है कि इस लडाई की बाबत मिलकर गौर किया जाय और जहाँ हो सके वहाँ मिलकर काम करने की कोशिश भी की जाय। इगलैड, फ्रॉस, इटली वगैर जिन राष्ट्रो के पास उपनिवेश थे वे कुदरतन इस बात के खिलाफ थे कि ऐसी कोई कोशिश की जाय। लेकिन लड़ाई के बाद जर्मनी के पास तो उपनिवेश रहे नही थे, इसलिए जर्मन सरकार दूसरी ताकतो के उपनिवेशो और आधीन देशो मे आदोलन की इस बढती को एक हितैषी की तटस्थता से देखती थी। यह उन कारणो मे से एक था, जिसने बर्लिन को एक केन्द्र बना दिया था। उन लोगो मे सब से ज्यादा मशहूर व क्रियाशील वे चीनी थे जो वहाँ की क्योमिनताग-पार्टी के गर्म दल के थे। यह पार्टी उन दिनो तूफान की तरह जीतती जा रही थी और उसकी अप्रतिरोध

गति के आगे पुराने जमाने के जागीरदारी तत्त्व जमीन मे लुढकते नजर आ रहे थे। चीन के इस नए चमत्कार के सामने साम्राज्यवादी ताकतो ने भी अपनी तानाशाही आदतो और धौंस-डपट को छोड़ दिया था। ऐसा मालूम पडता था कि अब चीन के एक और उसकी आजादी के मसलेके हल हो जाने मे ज्यादा देर नही लगेगी। क्योमिन-तांग खुशी से फूलकर कुप्पा हो गई थी। लेकिन उसके सामने जो मुश्किले आने वाली थी उन्हे भी यह जानती थी। इसलिए वह अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार द्वारा अपनी ताकत बढाना चाहती थी। गालिबन इस पार्टी के बाये दल के लोगो ने ही—जो दूसरे देशो मे कम्यूनिस्टो से मिलते-जुलते लोगो से मिलकर काम करते थे—इस तरह के प्रचार पर जोर दिया था, जिससे वे दूसरे मुल्को मे चीन की राष्ट्रीय परि-स्थिति को और घर पर पार्टी मे अपनी स्थिति को मजबूत कर सके।"

क्योमिनताग चीन मे हमारी कांग्रेस जैसी ही राष्ट्रीय सस्था थी, जिसमे देश की आजादी के लिए लडने वाले हर तरह के तत्त्व शामिल थे। लेकिन डा० सुनयात सेन ने १९१९ के चार मई आन्दोलन के बाद ही इसे साम्राज्य विरोधी क्रान्तिकारी विश्व मोर्चे का अग बना दिया था। वह एक तरफ विदेशी साम्राज्यवादियो से लोहा ले रही थी और दूसरी तरफ सदियो से खून चूसते आ रहे घरेलू जागीरदारी तत्त्वो का सफाया कर रही थी। इसी से मेहनतकश चीनी जनता इतनी बड़ी तादाद मे और इतनी तेजी से हरकत मे आई और क्योमिन-ताग को वे शानदार कामयाबियाँ हासिल हुई, जिनका उल्लेख जवाहरलाल नेहरू ने किया है। लेकिन १९२७ मे दलाल पूंजीवादी वर्ग च्यागकाई शेक की रहनुमाई मे जागीरदारों और साम्राज्यवादियों से जा मिला और क्रान्ति विरोधी बन गया। अब आजादी की पताका को चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने, जो क्योमिनताग ही का एक अग थी ऊँचा उठाया और देश की पीडित, शोषित जनता और प्रगति-

शील तत्त्वो के सहयोग से क्रान्तिकारी सघर्ष को जारी रखा, साथ ही साम्राज्यवाद विरोधी क्रान्तिकारी विश्व मोर्चे से अपने सम्बन्ध को और भी दृढ बनाया, क्योंकि क्रान्ति की सफलता के लिए यह भी निहायत ज़रूरी था। माओत्से-तुग ने अपने "नए जन गणतत्र" निबध मे लिखा है।

"आज की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति मे उपनिवेशो और अर्धोपनिवेशो के 'हीरो' या तो साम्राज्यवादी मोर्चे मे शामिल होकर विश्व क्रान्ति विरोधी शक्तियो का साथ दे या वे साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे मे आ मिले और विश्व क्रान्ति की शक्तियो का अग बन जाये। इन दो मे से उन्हे एक मार्ग चुनना होगा, कोई तीसरा मार्ग नही है।'

यानी स्थिति यह थी कि हर अधीनस्थ राष्ट्र का स्वाधीनता सग्राम अगर वह वाकई स्वाधीनता सग्राम हो, साम्राज्यवाद के विरुद्ध १९१७ से शुरू हुई विश्व क्रान्ति का एक अविच्छेद और अनिवार्य अग था। इससे उसकी शक्ति बढती थी। चीन के क्रान्तिकारियो ने इस तथ्य को समझ लिया था और जवाहरलाल के कथनानुसार ब्रसेल्स के दलित राष्ट्रो के सम्मेलन मे क्योमिनताग पार्टी के गर्म दल सबसे ज्यादा क्रियाशील थे। उनके अलावा ब्रसेल्स मे एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरीका के सभी उपनिवेशो और अर्धोपनिवेशो के लोग शामिल थे। यूरोप मे अपने ही पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध लडने वाले मजदूर नेता थे। कम्युनिस्ट भी काफी सख्या मे थे, पर कम्युनिस्टो की हैसियत से नही, किसी मजदूर सघ या किसी वैसी ही सस्था के प्रतिनिधि बन कर आये थे।

वहाँ जो साम्राज्यवाद विरोधी लीग नाम की स्थायी सस्था कायम की गई, जवाहरलाल भी हिन्दुस्तान की ओर से उसके सदस्य बने। ब्रसेल्स के बाद इस लीग की विभिन्न स्थानो पर कई मीटिंग हुई, जिनमे जवाहरलाल ने भाग लिया और उनके द्वारा जो अनुभव अर्जित किया, उसे यो बयान किया है

"इन सब से मुझे अधीनस्थ और औपनिवेशिक देशो की कुछ समस्याओ को समझने मे बडी मदद मिली। उनकी वजह से पश्चिमी ससार मे मजदूरो के जो भीतरी सघर्ष चल रहे है, उनकी तह तक पहुंचने मे मुझे आसानी हुई। उनकी बाबत मैंने बहुत कुछ पढा था··· लेकिन मेरे उस ज्ञान के पीछे कोई असलियत नही थी क्योकि उनसे मेरा कोई जाती ताल्लुक नही पडा था, लेकिन अब मैं उनके सम्पर्क में आया और कभी-कभी मुझे उन मसलो का भी सामना करना पडा जो इन भीतरी सघर्षो मे प्रकट होते है। दूसरी इटरनेशनल और तीसरी इटरनेशनल नाम की मजदूरो की जो दो दुनिया है, उनमे मेरी हमदर्दी तीसरी से थी। लडाई से लेकर अब तक दूसरी इटरनेशनल ने जो कुछ किया उससे मुझे अरुचि हो गई और हमको तो हिन्दुस्तान मे इस इटरनेशनल के सबसे बडे समर्थक ब्रिटिश-मजदूर दल के तरीको का खूब तजुरबा हो चुका है। इसलिए लाजिमी तौर पर कम्युनिज्म की बाबत मेरा खयाल अच्छा हो गया···कम्युनिज्म से मेरा यह सम्बन्ध उसके सिद्धान्तो की वजह से नही था, क्योंकि कम्युनिज्म की कई सूक्ष्म बातो की बाबत मै ज्यादा नही जानता था। उस वक्त उससे मेरी जान-पहचान सिर्फ उसकी मोटी-मोटी बातों तक ही सीमित थी। ये बाते और वे भारी-भारी परिवर्तन जो रूस मे हो रहे थे मुझे आकर्षित कर रहे थे।" (मेरी कहानी)

जवाहरलाल १९२७ मे अपने पिता के साथ सोवियत रूस की यात्रा पर भी गये थे और उन्होने ये भारी-भारी परिवर्तन अपनी आँखो देखे थे। यही सब अनुभव लेकर वह स्वस्थ मानसिक अवस्था मे देश लौटे और कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन मे अपने गर्म-गर्म प्रस्ताव रखे।

हमने देखा कि गांधीजी को ये प्रस्ताव पसद नही आये। उन्होने न सिर्फ अपना विरोध व्यक्त किया बल्कि जवाहरलाल को सहज मे अपनी पताका फहराने का सुझाव भी दे दिया।

दरअसल उन्होने दलित राष्ट्र सघ के बारे मे जो पत्र लिखा था उसी मे जवाहरलाल को इस मार्ग पर बहुत आगे न बढने की चेतावनी दे दी थी। उन्होने जो यह लिखा था कि हमारे लोगो को अपनी भीतरी शक्ति का विकास करके आजादी हासिल करनी चाहिए, इसमे ज़रा भी सच्चाई नही थी। यह भीतरी शक्ति चीन की तरह एक तरफ विदेशी साम्राज्यवाद और दूसरी तरफ घरेलू जागीरदारी के खिलाफ क्रान्तिकारी सघर्ष द्वारा ही विकसित हो सकती थी। "रघुपति राघव राजा राम" के भजन गाने से तो यह उलटा और कुठित होती थी और गाँधीजी की अच्छी तरह समझी सोची हुई राजनीति का मकसद भी इस शक्ति को उभारना नही कुठित करना था। अतएव साम्राज्यवाद विरोधी लीग मे उनकी दिलचस्पी न होना स्वाभाविक बात थी।

लेकिन साम्राज्यवाद विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का, जिसका नेता उस समय सोवियत रूस था, एक ऐतिहासिक महत्व था। जवाहरलाल नेहरू ने इस महत्व को समझा और उसे काँग्रेस की और विशेषकर अपनी राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय स्थिति मजबूत बनाने के लिए इस्तेमाल किया। लेकिन वह साम्राज्यवाद विरोधी लीग के सदस्य बहुत दिनो न रह सके। १६३१ मे जब उन्होने गाँधी-इर्विन समझौते का समर्थन किया तो लीग ने एक प्रस्ताव पास करके उन्हे निकाल दिया। नेहरू ने खुद लिखा है "मैं यह मजूर करता हूँ कि मैंने उसे नाराज होने का काफी मसाला दिया था, लेकिन फिर भी वह मुझे स्थिति साफ करने का कुछ मौका दे सकती थी।"

(मेरी कहानी)

दो घोड़ों का सवार

२२ सितम्बर १९२८ को कलकत्ता मे अखिल बग छात्र सम्मेलन हुआ। उसमे अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए जवाहरलाल ने नोजवानो से कहा था :

"इस युग का विचार सामाजिक समानता है। आओ हम इस विचार को सुने और दुनिया को बदलने और उसे रहने को बेहतर जगह वनाने के लिए इस विचार के साधन बन जाये।"

देश ने एक बार फिर करवट ली थी, क्रान्तिकारी शक्तियाँ एक बार फिर जोर-शोर से उभर रही थी। मजदूर किसान और नौजवान अपने-अपने ढग से और अपनी संस्थाओ मे संगठित हो रहे थे। इस समय देश की जो परिस्थिति थी, जवाहरलाल ने उसका चित्र यो प्रस्तुत किया है :

"राजनैतिक दृष्टि से १९२८ का साल एक भरा-पूरा साल था। देश भर मे तरह-तरह की हलचलो की भरमार थी। ऐसा मालूम पडता था कि एक नई प्रेरणा, एक नई जिन्दगी जो तरह-तरह के सभी समूहो मे एक-सी मौजूद थी, लोगो को आगे की तरफ बढा रही है। जिन दिनो मैं देश से वाहर था, शायद उन दिनो धीरे-धीरे यह तब्दीली हो रही थी और लौटने पर मुझे यह बहुत बडी तब्दीली मालूम हुई। १९२६ के शुरू मे हिन्दुस्तान पहले जैसा सुप्त और निष्क्रिय वना हुआ था। शायद उस वक्त तक १९२१-२२ की मेहनत की थकान दूर नही हुई थी। १९२८ मे वह तरो-ताजा क्रिया-

शील और नई शक्ति से पूर्ण हो गया है, इस बात का सबूत हर जगह मिलता था। कारखाने के मज़दूरो मे भी और किसानो मे भी, मध्यवर्ग के नौजवानो मे भी और आम तौर पर पढे-लिखे लोगो मे भी।"

"मजदूर सघो की हलचल बहुत ज्यादा बढ गई थी। सात-आठ साल पहले जो आल इडिया ट्रेड यूनियन कॉग्रेस कायम हुई थी वह एक मज़बूत और प्रतिनिधिक जमात थी। न सिर्फ उसकी तादाद और उसके सगठन मे ही काफी तरक्की हुई थी, वल्कि उसके विचार भी ज्यादा लडाकू और ज्यादा गर्म हो गये थे। अकसर हडताले होती थी और मज़दूरो मे वर्ग-चेतना जोर पकड रही थी। कपडे की मिलो और रेलो मे काम करने वाले मजदूर सबसे ज्यादा मज़बूत और सब से ज्यादा सगठित थे। और इनमे भी सबसे ज्यादा मजबूत और सगठित थे बम्बई की गिरनी कामगार-यूनियन और जी० आई० पी० रेलवे यूनियन। मजदूरो के सगठन के बढने के साथ-साथ लाजिमी तौर पर पश्चिम से घरेलू लडाई-झगडो के बीज भी आये। हिन्दुस्तान के मजदूर सघो को कायम होते देर न हुई थी कि वे आपस मे होड करने और दुश्मनी रखने वाले दलो मे बँट गये। कुछ लोग दूसरी इटरनेशनल के हामी थे, कुछ तीसरी इटर-नेशनल के कायल। यानी एक दल का दृष्टिकोण नर्मी की तरफ यानी सुधारवादी था और दूसरा दल वह था जो खुल्लम-खुल्ला क्रान्तिकारी था और आमूल परिवर्तन चाहता था। इन दोनो के बीच मे कई किस्म की रायें थी, जिनमे मात्रा का भेद था और जैसा कि आम जनता के सगठन मे होता है, इसमे मौका-परस्त लोग भी आ घुसे थे।"

(मेरी कहानी)

मतलब यह है कि हमारे राष्ट्रीय आदोलन पर अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ का ज़बर्दस्त प्रभाव पड रहा था और १९२८ मे क्रान्ति की जो लहर उठी उसमें १९२१-२२ की अस्पष्टता और धार्मिकता नही थी। स्थिति बहुत हद तक बदल चुकी थी। देश मुकम्मिल

आजादी की ओर बढ रहा था। मुकम्मिल आजादी का मतलब विदेशी साम्राज्यवाद की गुलामी से मुक्ति प्राप्त करना तो था ही, लेकिन साथ ही सामाजिक व्यवस्था मे आमूल परिवर्तन लाकर हर तरह के धार्मिक दमन और सामाजिक शोषण को समाप्त करके समानता स्थापित करना भी था। इस नए आदोलन का रुझान समाजवाद की ओर था। जवाहरलाल के कलकत्ता वाले भाषण से भी यही स्वर ध्वनित होता है। लेकिन उन्होने लिखा है

"हिन्दुस्तान मे मै समाजवाद के मैदान मे सबसे पहले नही आया। बल्कि सच बात तो यह है कि मैं कुछ पिछडा हुआ रहा। जहाँ बहुत से लोग सितारे की तरह चमकते आगे बढ गये, वहाँ मै तो बहुत-कुछ मुश्किलो के साथ कदम-कदम आगे बढा। विचारधारा की दृष्टि से मजदूरो का ट्रेड यूनियन आदोलन निश्चित रूप से समाजवादी था और ज्यादातर युवक सघो की भी यही बात थी। जब मैं दिसम्बर १९२६ मे यूरोप से लौटा तब एक किस्म का अस्पष्ट और गोल-मोल समाजवाद हिन्दुस्तान की आबो-हवा का एक हिस्सा बन चुका था और व्यक्तिगत समाजवादी तो उससे भी पहले हिन्दुस्तान मे बहुत से थे। ये लोग ज्यादातर सपने देखने वाले थे। लेकिन धीरे-धीरे उनपर मार्क्स के सिद्धान्तो का असर बढता जाता था और उनमे कुछ तो अपने को सौ फीसदी मार्क्सवादी समझते थे। यूरोप और अमरीका की तरह हिन्दुस्तान मे भी, सोवियत यूनियन मे जो कुछ हो रहा था, उससे और खासकर पचवर्षीय योजना से, इस प्रवृत्ति को बहुत बल मिला।"

(मेरी कहानी)

इसी वर्ष साईमन कमीशन यह मालूम करने आया कि हिन्दुस्तानी स्वशासन की दिशा मे कितना आगे बढे है और मटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारो मे स्वशासन की जो दूसरी किश्त दी गई थी तीसरी किश्त मे कितना और अधिक पाने के योग्य बन गये है। देश

की जनता ने इसे अपना अपमान समझा साईमन कमीशन के खिलाफ जबर्दस्त जुलूस निकले, प्रदर्शन हुए, सरकार की ओर से लाठियाँ चली और बहुतो के सिर टूटे। इससे वातावरण और गर्मा गया।

इन परिस्थितियो मे काँग्रेस का वार्षिक अधिवेषन इस वर्ष कलकत्ता मे हुआ। इसके सभापति मोतीलाल नेहरू थे। कारण यह कि इस सम्मेलन मे नेहरू रिपोर्ट को पास होना था। नेहरू रिपोर्ट समझौते का वह विधान था जिसे सर्वदली-सम्मेलन की कमेटी ने तैयार किया था। चूंकि उस कमेटी के अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू थे, इसलिए उसका नाम नेहरू रिपोर्ट पड गया था।

मजे की बात यह है कि गाँधी जी जो चौरा-चौरी की घटना के बाद समाज-सुधार के रचनात्मक कार्य मे जा लगे थे, अब इस अधिवेशन मे राजनैतिक रूप से सक्रिय होकर आगे आये। उन्होने जो प्रस्ताव पेश किया, उसमे कहा गया था कि अगर सरकार ने एक साल के भीतर अर्थात् ३१ दिसम्बर १६२६ तक (गाँधीजी ने मौलिक प्रस्ताव मे १६३० तक दो साल की अवधि रखी थी, जो सशोधन द्वारा एक साल कर दी गई।) नेहरू रिपोर्ट को मजूर न किया तो काँग्रेस फिर असहयोग आन्दोलन शुरू करेगी और इस बार आन्दोलन कर-बदी से शुरू होगा।

इस प्रस्ताव का मतलब एक तो अपने आजादी के ध्येय से पीछे जाना और दूसरे सघर्ष को एक साल के लिए टालना और सरकार को उसके मुकाबले की तैयारी के लिए समय देना था। अतएव गर्म दल वालो ने इसका विरोध किया और काँग्रेस मे उनका प्रभाव इतना बढ गया था कि गाँधीजी के नेता बन कर सामने आने के बावजूद प्रस्ताव थोडे से मतो से गिर गया। लेकिन जवाहरलाल जी ने जो खुद प्रस्ताव के विरोध मे थे, वोटिंग मे एक टेक्नीकल खामी की ओर ध्यान दिलाया। इसके परिणामस्वरूप दोबारा वोटिंग में प्रस्ताव ६७३ के मुकाबले १३५० वोटो से पास हो गया।

जवाहरलाल और सुभाष इस अधिवेशन मे गर्म दल के प्रमुख नेता थे। जवाहरलाल ने अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दो मे व्यक्त की है: "इसमे कोई शक नही कि यह प्रस्ताव हमे आजादी के ध्येय से पीछे खीच लाया था, क्योकि सर्वदल-सम्मेलन की रिपोर्ट ने तो पूरे डोमिनियन स्टेट्स की भी माँग नही की थी।" और तर्क दूसरी ओर भी चलता है "फिर भी यह प्रस्ताव इस अर्थ मे बुद्धिमत्तापूर्ण था कि उसने एक ऐसे वक्त मे काग्रेस मे फूट नही होने दी जबकि कोई भी फूट के लिए तैयार न था और उसने १९३० मे जो लडाई शुरू हुई उसके लिए कांग्रेस को एक साथ रखा। यह बात तो बिलकुल साफ थी कि ब्रिटिश सरकार साल भर के अन्दर सब दलो द्वारा बनाये गये विधान को मजूर नही करेगी। सरकार से लडाई होना लाजिमी थी और उस वक्त देश की जैसी हालत थी उसमे सरकार से किसी किस्म की लडाई उस वक्त तक कारगर नही हो सकती थी, जब तक उसे गांधीजी का नेतृत्व न मिले।"

फिर अपनी आलोचना भी की है:

"मैंने कांग्रेस के खुले जलसे मे इस प्रस्ताव का विरोध किया था यद्यपि यह मुखालिफत मैंने कुछ-कुछ बेमन से की थी, तो भी इस बार भी मुझे प्रधान मत्री चुना गया। कुछ भी हो मैं मत्री-पद पर बना रहा और कांग्रेस के क्षेत्र मे ऐसा मालूम पडता था कि मै वही काम कर रहा हूँ जो प्रसिद्ध 'विकार आफ ब्रे' (सोलहवी सदी का एक प्रसिद्ध अवसरवादी ऐतिहासिक पात्र) करता था। कांग्रेस की गद्दी पर कोई भी सभापति बैठे, मैं हमेशा उस सगठन को सँभालने के लिए उसका मत्री बनाया जाता था।"

(मेरी कहानी)

सुभाष ने अपनी आत्मकथा 'भारतीय सघर्ष' मे लिखा है: 'कलकत्ता कांग्रेस के समझौता-परस्त प्रस्ताव का एक ही प्रयोजन था और वह प्रयोजन था मूल्यवान समय नष्ट करना।"

दल से बाहर किया है, जिनको दल मे रखना कही अच्छा था। मेरा खयाल है कि हम लोग एक खतरनाक जाल मे उलझ गए है, जिससे निकल सकना आसान नही, और मैं समझता हूँ कि हमने दुनिया को यह दिखला दिया है कि अगर्चे हम लोग बाते तो ऊँची करते है, लेकिन सौदेबाजी छोटी-मोटी चीजो के लिए कर रहे है।

मै नही जानता कि ब्रिटिश सरकार अब क्या करेगी। मुमकिन है वह अपनी शर्तो को नही मानेगी मुझे उम्मीद यही है कि वह नही मानेगी। लेकिन मुझे इसमे जरा भी शक नही कि ज्यादातर हस्ताक्षर करने वाले निश्चय ही आपको छोड़कर उन शर्तों मे ब्रिटिश सरकार जो भी रद्दो-बदल सुझावेगी, इसे मजूर कर लेगे। हर हालत मे मुझे यह जान पडता है कि काँग्रेस के भीतर मेरी हालत रोज-बरोज ज्यादा मुश्किल होती जाएगी। मैंने काँग्रेस की सदारत बडे शक-शुबहा के साथ मजूर की थी, लेकिन इस उम्मीद से कि अगले साल एक निश्चित मसले को लेकर लड लेगे। उस मसले पर पहले से ही बादल छा गये है और इस पद को मजूर करने की जो एक मात्र वजह थी, वह अब नही रह गई है। इन 'नेताओ के सम्मेलनो' से मुझे क्या सरोकार ? मैं अपने को अनधिकार चेष्टा करने वाला समझने लगा हूँ और इससे मुझे परेशानी है। मै अपनी बात खुलकर इसलिए नही कह पाता कि सम्मेलन के बिगड़ने का मुझे डर है। मैं अपने को दबाता हूँ और यह दबाना कभी-कभी मेरे लिए भारी पडता है और मैं भभक उठता हू और ऐसी चीज़े भी कह जाता हूँ, जिनको कहने का मेरा कोई मतलब नही होता है।

मैं महसूस करता हू कि मुझे ए. आई सी. सी के पद से इस्तीफा दे देना चाहिए। मैंने पिताजी के पास एक ज़ाब्ते का

खत भेज दिया है। जिसकी नकल साथ में भेज रहा हूँ।

सभापति का सवाल इससे कही ज्यादा मुश्किल है। मैं नही समझता कि इस ऐन मौके पर मैं क्या कर सकता हूँ। मुझे इस बात पर यकीन हो गया है कि मेरा चुनाव गलत था। इस अवसर पर और इस साल के लिए आपको ही चुना जाना चाहिए था। अगर कॉंग्रेस की पॉलिसी वही है, जिसे मालवीय जी की पॉलिसी कह सके तो मैं सभापति नही रह सकता। अब भी अगर आप राजी हो तो बिना ए. आई. सी सी. की बैठक बुलाए एक रास्ता निकल सकता है। ए आई. सी. सी. के मेम्बरो के नाम एक गश्ती चिट्ठी भेजी जा सकती है कि आप सदर बनने के लिए रजामंद है। मैं उनसे माफी माँग लूँगा। यह सिर्फ जाब्ते की कार्यवाही होगी, क्योकि सभी या करीब-करीब सभी मेम्बर आपके फैसले को खुशी से मान लेगे।

एक दूसरा रास्ता यह है कि मैं यह ऐलान कर दूं कि मौजूदा हालतो मे और इस खयाल से कि इस वक्त दूसरा सदर चुनने मे दिक्कत होगी, अभी सदारत न छोड़ूं, लेकिन कॉंग्रेस के फौरन बाद छोड दूं। मैं चेयरमैन के तौर पर काम करूँगा और मेरी कोई परवा किये बिना कॉंग्रेस जैसा चाहे फैसला कर सकती है।

अगर मै अपने जिस्म की और दिमागी तंदुरुस्ती बनाए रखना चाहता हूं तो इन दो मे से एक रास्ता मेरी समझ मे जरूरी है।

जैसा कि मैंने आपको लिखा था, मैं कोई पब्लिक बयान नही निकाल रहा हूं। दूसरे लोग क्या कहते है या, क्या नही, इसकी मुझे ज्यादा फिक्र नही। लेकिन खुद मुझे शान्ति होनी चाहिए।

सप्रेम आपका

जवाहरलाल"

इसके उत्तर में गांधीजी ने जो धीरज भरा पत्र लिखा उससे जवाहरलाल नेहरू का अशान्त मन फिर शान्त हो गया।

जवाहरलाल ने अपने खत मे लिखा है कि कई घोडो की एक साथ सवारी बहुत मुश्किल है। दरअसल वह दो ही घोडो के सवार थे। एक तरफ समाजवाद और क्रान्ति की गर्म-गर्म बाते करते थे, इसी से वह नौजवानो के प्रिय बने थे, इसी से इडिपेडेस फॉर इडिया लीग' के सेक्रेटरी चुने गए थे, जो चाहती थी कि नये आधार पर समाज की पुनर्रचना हो, और ट्रेड यूनियन के सदर तो वह अपने कथनानुसार नर्म दल अर्थात् सुधारवादी दल की ओर से गर्म दल के उम्मीदवार को हराने के लिए ही बनाये गये थे। दूसरी तरफ असल मे वह गांधीजी के नेतृत्व को स्वीकार किए हुए थे, जो क्रान्ति विरोधी था।

उन्हे कॉंग्रेस का अध्यक्ष बनाने की बात काफी दिनो से चल रही थी। जब वह यूरोप मे थे तभी गांधीजी ने अपने २५ मई १९२७ वाले पत्र मे लिखा था, तुम्हारे आगामी कॉंग्रेस के अध्यक्ष चुने जाने की चर्चा है। मेरा इस बारे मे पिताजी (मोतीलाल) से पत्र व्यवहार हो रहा है। पर इसमे काफी अडचने थी। १९२९ की कॉंग्रेस के लिए भी विधिवत गांधीजी को अध्यक्ष चुना गया था। लेकिन इस बात का आखिरी फैसला करने के लिए लखनऊ मे अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी की मीटिंग हुई। उसमे गांधीजी ने अपना नाम वापस लेकर जवाहरलाल का नाम रख दिया और उसे मजूर किये जाने पर जोर दिया और लोगो को मजूर कर लेना पडा। यो छिपे दरवाजे से लाकर अध्यक्ष की गद्दी पर बिठाया जाना जवाहरलाल को पसद नही आया। लिखा है. 'इससे मेरे स्वाभिमान को चोट पहुँची और मुझे करीब-करीब महसूस हुआ कि मै इस पद को लौटा दूं। मगर खुशकिस्मती से मैंने अपने भावो को प्रकट करने से अपने आपको रोक लिया और भारी कलेजा लिये हुए चुपचाप वहाँ से चला आया।" (मेरी कहानी)

दरअसल गांधीजी ने यह फैसला बहुत समझ-सोचकर किया था। कलकत्ता कांग्रेस मे वह गर्म दल वालो का जोश-खरोश देख चुके थे। इस समय देश की जो स्थिति थी उसमे एक ऐसे ही व्यक्ति को अध्यक्ष बनाने की जरूरत थी जो क्रान्तिकारी नौजवानों का, आदर्शों चाहने वाले बुद्धिजीवियो का और समाजवाद मे विश्वास रखने वाले मजदूरों का प्रिय हो और जवाहरलाल ने उनके नेता के रूप में प्रतिष्ठा काफी अर्जित कर ली थी।

नमक सत्याग्रह

३१ दिसम्बर १९२९ को लाहौर कांग्रेस मे मुकम्मिल आजादी का प्रस्ताव पास किया गया और पहली मर्तबा तिरगा झडा फह-राया गया। गांधी जी के एक पत्र से पता चलता है कि अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू खुशी मे भर कर इस झडे के गिर्द नाचे थे।

लेकिन इसी लाहौर अधिवेशन के बारे में सुभाप बोस ने अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दो मे व्यक्त की है '

"मैने वाम पक्ष की ओर से प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस देश में समान्तर सरकार स्थापित करे और इसके लिए मजदूरो, किसानो और नौजवानो को सगठित किया जाये। यह प्रस्ताव रद्द कर दिया गया। परिणाम यह कि चाहे कांग्रेस ने मुकम्मिल आजादी को अपना ध्येय घोषित कर दिया था; पर इस ध्येय तक पहुचने के लिए न कोई योजना स्थिर की गई और न आगामी वर्ष के लिए कोई कार्य क्रम निश्चित किया गया। इससे अधिक हास्यास्पद स्थिति और क्या हो सकती थी ?" (भारतीय सघर्ष)

आदोलन की रूप-रेखा तैयार करने और उसे चलाने की जिम्मे-दारी गांधी जी को सौंप दी गई। बहुत सोच-विचार और बडे इत-जार के बाद गांधी जी ने जो आदोलन शुरू किया, उसका नाम नमक सत्याग्रह पडा क्योकि उन्होने शुरूआत नमक कर का कानून तोडकर

की। इससे पहले २ मार्च १९३० को उन्होने वायसराय के नाम अपने पत्र मे लिखा :

"हिंसक दल की शक्ति और प्रभाव बढता जा रहा है। मेरा उद्देश्य इस असगठित हिंसा के विरुद्ध (अहिंसा की) शक्तियो को हरकत मे लाना है। हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने का अर्थ इन दोनो प्रकार की हिंसक शक्तियो को खुली छूट देना होगा।"

(आज का भारत)

सत्याग्रह के नियमो मे भली भाँति प्रशिक्षित अपने साबरमती आश्रम के ६८ निवासियो की एक टोली को साथ लेकर गाँधी जी ने १३ मार्च को अपना प्रसिद्ध डाँडी मार्च बडे धूम धडक्के से शुरू किया। दुनिया भर के सम्वाददाता, प्रेस फोटोग्राफर और सिनेमा-रील तैयार करने वाले उनके साथ-साथ चले। ६ अप्रेल को वे समुद्र के किनारे पहुँचे, पानी उबाल कर नमक तैयार किया और कोई गिरफ्तारी नही हुई।

दो दिन बाद उन्होने देश भर की काँग्रेस कमेटियो को हिदायत कर दी कि वह नमक का कानून तोडकर सत्याग्रह शुरू कर दे।

बस अब क्या था, लोग तो पहले ही तैयार थे, आदोलन नमक सत्याग्रह तक सीमित नही रह गया। बडे पैमाने पर जुलूस, प्रदर्शन और हडताले शुरू हो गई और बगाल के क्रान्तिकारी नौजवानो ने चटगाँव के फौजी शस्त्रागार पर हमला करके हथियार लूट लिये। सारा देश विदेशी गुलामी की जजीरे तोडने और अन्याय तथा शोषण के विरुद्ध लडने के लिए उठ खड़ा हुआ।

पेशावर मे नेताओ की गिरफ्तारी के विरुद्ध बडा भारी प्रदर्शन हुआ। सरकार ने प्रदर्शनकारियो को आतकित करने के लिए बख्तरबंद कारे भेजी तो उन्होने एक कार को आग लगा दी। इस पर अंधा-धुंध गोली चली और सैकड़ो निहत्ये आदमी मौत के घाट उतार दिये गए। इसी समय गढवाली सिपाहियो ने अपने

निहत्थे भाइयो पर गोली चलाने से इनकार किया। सरकार ने उनके विद्रोही तेवर देखकर तुरत फौज और पुलिस हटा ली। इसके बाद २५ अप्रेल से ४ मई तक पेशावर पर जनता का शासन रहा। सरकार ने हवाई सेना सहित गोरा फौज बुलाई, तब कही पेशावर पर दोबारा कब्जा किया।

अब आदोलन गाँधी जी के नियन्त्रण मे नही रह गया था। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने उन्हे ५ मई को गिरफ्तार कर लिया। इस पर फिर जबर्दस्त प्रदर्शन और बडी-बडी हडताले हुई। शोलापुर के ५० हजार मजदूरो ने एक लाख चालीस हजार आबादी के इस शहर के प्रशासन पर अपना अधिकार जमा लिया और यो शोलापुर एक हफ्ता तक स्वतन्त्र रहा। सरकार ने १२ मई को वहाँ मार्शल लॉ लागू किया।

इन घटनाओ का उल्लेख करते हुए जवाहरलाल ने लिखा है·

"सीमा प्रान्त मे ही वह मशहूर घटना हुई, जिसमे गढवाली सिपाहियो ने निःशस्त्र जनता पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। उन्होने इसलिए इनकार कर दिया कि सच्चे सिपाहियो को निहत्थी भीड पर गोली चलाना नापसद होता है और इसलिए भी कि भीड के लोगो से उन्हे सहानुभूति थी। मगर केवल सहानुभूति ही आम तौर पर सिपाही को अपने अफसर की हुक्म-उदूली जैसी खतरनाक कार्रवाई के लिए प्रेरित नही कर सकती, क्योकि इसका बुरा नतीजा उसे मालूम रहता है। गढवालियो ने यह बात शायद इसलिए की थी कि उन्हे (और दूसरी भी कुछ रेजिमेटो को जिनकी हुक्म-उदूली की खबर फैल नही पाई) यह गलत खयाल हो गया था कि अग्रेजो की हुकूमत तो अब जाने ही वाली है। जब सिपाहियो मे ऐसा खयाल पैदा हो जाता है तभी वे अपनी सहानुभूति और इच्छा के अनुसार कार्य करने की हिम्मत करते है। शायद कुछ दिनो या हफ्तो तक आम हलचल और सविनय-भग से लोगो मे यह खयाल पैदा हो गया

था कि अंग्रेजी हुकूमत के आखिरी दिन आ गये है। और इसका कुछ असर फौज पर भी पडा। मगर जल्दी ही यह भी जाहिर हो गया कि निकट भविष्य मे ऐसा होने की सूरत नही है और फिर फौज मे हुक्म-उदूली नही हुई। फिर इस बात का भी खयाल रखा गया कि सिपाहियो को ऐसी दुविधा मे डाला ही न जाय।"

(मेरी कहानी)

जाहिर है कि फौज बिगड रही थी और उसके और ज्यादा बिगडने की सम्भावना थी, बशर्ते कि देश की क्रान्तिकारी शक्तियो को उभारा जाता, बशर्ते कि सुभाष के सुझावानुसार कॉंग्रेस ने समानान्तर सरकार स्थापित की होती, अपनी अदालते कायम की होती, मजदूरो, किसानो और नौजवानो की सशस्त्र सेना तैयार की होती। लेकिन कौन करता ? सुभाष और दूसरे क्रान्तिकारी विचारों के लोगो को तो लाहौर कॉंग्रेस के फौरन बाद जनवरी मे अथवा उससे पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया था। गाँधी जी की इसमें कोई दिलचस्पी नही थी। उन्होने तो आँदोलन को मजदूरो, किसानो और नौजवानो मे फैलने और क्रान्तिकारी रूप धारण करने से रोकने के लिए ही नमक सत्याग्रह चलाया था।

इसके बावजूद आदोलन फैला और खूब फैला, क्योकि इससे वक्त का तकाजा पूरा होता था और जनता इसके लिए तैयार थी। बम्बई देश का औद्योगिक महानगर क्रान्ति का केन्द्र बना हुआ था। मजदूर क्रान्ति का हिरावल बने हुए थे। वे अपना लाल झडा और कॉंग्रेस का तिरगा झडा साथ-साथ लेकर चलते थे, उन्हे नौजवानो का और समूची जनता का सहयोग प्राप्त था। सरकार पुलिस और फौज के जोर से प्रशासन चला रही थी वरना शहर पर उन्ही का कब्जा था। लगभग सभी जगह यही हालत थी, लोगों ने सरकार को और उसके कानून को मानने से इनकार कर दिया था।

इस आदोलन को कुचलने के लिए सरकार ने अपनी सारी हिंसक शक्ति लगा दी। कॉग्रेस और उसकी तमाम सस्थाओ को अवैध घोषित कर दिया, नए-नए आर्डिनेस जारी करके सारे देश मे मार्शल लॉ की स्थिति पैदा कर दी, लाठी प्रहार और गोली चलाना नित्य की घटनाए बन गई। कॉग्रेस का झडा उठाकर चलने वालो को दस-दस साल की सजायें दी जाती थी। देहात मे किसानो के विद्रोह को कुचलने के लिए बडी तादाद मे पुलिस और फौज तैनात की गई और गाँवो पर सामूहिक जुर्माने किये गए। फिर भी जोश बढता ही रहा। लाठी, गोली के घायलो के लिए अस्थाई हस्पताल खोले गये और कैदियो से जेले भर गई। १९३० के अत मे सरकारी आंकडो के अनुसार साठ हजार और कॉग्रेस इतिहास के अनुसार नब्बे हजार आदमी जेलो मे बद थे।

जवाहरलाल ने इस सबका श्रेय गाँधी जी को देते हुए अपनी आत्मकथा—'मेरी कहानी' मे लिखा है .

"१९३० का वह साल आश्चर्यजनक परिस्थितियो और स्फूर्तिदायक घटनाओ से भरा हुआ था। गाँधी जी के सारे राष्ट्र मे स्फूर्ति और उत्साह भर देने की अद्भुत शक्ति से मुझे सबसे ज्यादा आश्चर्य हुआ। उनकी शक्ति मे एक मोहनी-सी मालूम होती थी और उनके बारे मे जो बात गोखले ने कही थी, वह हमे याद आई—उनमे मिट्टी से सूरमा बना लेने की ताकत है। शान्तिपूर्ण सविनिय भग महान राष्ट्रीय उद्देश्यो को पूर्ण करने के लिए लडाई के शस्त्र और शास्त्र दोनो तरह से, काम मे आ सकता है। यह बात सच मालूम हुई।"

अब इस सचाई का दूसरा पहलू भी देखिए। एच० जी० अलैग्जेंडर नाम के एक अग्रेज प्रोफेसर ने १९३० के अन्त मे गाँधी जी से यरवदा जेल मे भेट की और उसके आधार पर ३ जनवरी १९३१ के 'स्पेक्टेटर' मे "गाँधी जी का वर्तमान दृष्टिकोण" शीर्षक लेख छपवाया। उसमे प्रोफेसर महोदय लिखते है :

"अपनी जेल की तनहाई मे भी वह इस बात से अत्यन्त चिंतित है कि स्थिति यो बिगड रही है। और इसी कारण वह जल्द से जल्द शान्ति और सहयोग की स्थिति पर लौट जाने का स्वागत करेगे बशर्ते कि उसमे ईमानदारी बरती जाये।' उनका प्रभाव अब भी बहुत ज्यादा है, लेकिन इससे भी ज्यादा खतरनाक और अनियंत्रित शक्तियाँ दिन-दिन जोर पकडती जा रही है।"

(आज का भारत)

अब घटनाए यो घटी कि २० जनवरी को ब्रिटिश प्रधान मंत्री रेम्जे मेकनाल्ड ने गोलमेज सम्मेलन मे घोषणा की कि उनकी मजदूर सरकार हिन्दुस्तान को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल मे औपनिवेशिक-पद देने के प्रश्न पर विचार करने को तैयार है। इस बयान के छः दिन बाद अर्थात् २६ जनवरी को गाँधी जी और कॉग्रेस कार्य-कारिणी के सदस्यो को जेल से रिहा कर दिया गया और नई दिल्ली मे लम्बी-चौडी वार्ता शुरू हुई, जिसके फलस्वरूप ४ मार्च १९३१ को गाँधी-इर्विन समझौता बरामद हुआ।

इस समझौते के बारे मे जवाहरलाल ने अपनी पहली प्रतिक्रिया इन शब्दो मे व्यक्त की है :

"क्या इसीलिए हमारे लोगो ने अपनी बहादुरी दिखाई ? क्या हमारी बडी-बडी जोरदार बातो और कामो का खात्मा इसी तरह होना था ? क्या कॉग्रेस का स्वाधीनता प्रस्ताव और २६ जनवरी की प्रतिज्ञा इसीलिए की गई थी ? इस तरह के विचारो मे डूबा हुआ मै मार्च की उस रात भर पडा रहा और अपने दिल मे ऐसी शून्यता महसूस करने लगा कि मानो उसमे से कोई कीमती चीज सदा के लिए निकल गई हो—

तरीका यह दुनिया का देखा सही—
गरजते बहुत वे बरसते नहीं।"

गाँधी-इर्विन समझौते द्वारा आंदोलन स्थगित कर दिया गया,

कांग्रेस ने दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन मे शामिल होना मजूर कर लिया और सरकार ने वे सब कैदी छोड दिये जिन पर हिंसक कारवाई का आरोप नही था। भगतसिंह और उनके दूसरे क्रान्तिकारी साथियो को जिन्होने देश की राष्ट्रीय चेतना को जगाने मे जबर्दस्त भूमिका अदा की थी, फांसी पर लटकने और जेलो मे सडने के लिए छोड दिया गया। क्योकि उनकी पैरवी करना गांधीजी के सत्य और अहिसा के सिद्धान्त के विरुद्ध पडता था। लेकिन उन गढवाली फौजियो ने तो जिन्होने चन्द्रसिंह के नेतृत्व मे अपने नि शस्त्र पठान भाइयो पर गोली चलाने से इन्कार किया था, न सिर्फ निस्वार्थ देशभक्ति का सबूत दिया था, बल्कि गांधीजी के सिद्धान्त को भी ऊँचा उठाया था। उनकी भी पैरवी नही की गई, उन्हे भी जेल मे सड़ने के लिए छोड़ दिया गया। बाद मे जब गांधी गोलमेज़-सम्मेलन मे शामिल होने लदन गये तो वहाँ एक फ्रांसीसी पत्रकार के प्रश्न के उत्तर मे इसका कारण यह बताया —

"एक फौजी जो गोली चलाने के हुक्म को नही मानता वह अपनी वफादारी की कसम को तोडता है और एक मुजिर्माना हुक्म-उदूली का अपराधी बनता है। मैं अफसरो और फौजियो को हुक्म-उदूली के लिए नही उकसा सकता, क्योकि जब सत्ता मेरे हाथ मे आयेगी मैं भी सम्भवत इन्ही अफसरो और इन्ही फौजियो को इस्तेमाल करूँगा। अगर मैं उन्हे हुक्म-उदूली की शिक्षा दूंगा तो मुझे इस बात का डर है कि जब मैं सत्ता मे होऊंगा तब भी वे ऐसा ही करेगे।"

(आज का भारत)

"जवाहरलाल इस आदोलन के दौरान दो बार जेल गए। पहले छ महीने के लिए अप्रैल मे और दोबारा अक्तूबर मे। गांधी-इर्विन समझौते की बातचीत के दौरान वह दिल्ली मे मौजूद थे। इस समझौते के फलस्वरूप उन्हे अपने मन मे जो एक विशाल और विक्षुब्ध शून्यता महसूस हुई, उसे दूसरे दिन गांधीजी के अज्ञात तत्व ने भर

दिया और बहुत हैस-बैस के बाद कराची अधिवेशन के खुले इजलास मे इस समझौते को मजूर कराने का प्रस्ताव उन्ही ने पेश किया। लिखा है :

"अपने भाषण मे, मैंने अपने हृदय के भाव ज्यो-के-त्यो उस विशाल जन-समूह के सामने रख दिये और उनसे पैरवी की कि वे इस प्रस्ताव को हृदय से स्वीकार कर ले। मेरा वह भाषण जो ऐन मौके पर अन्त:-स्फूर्ति से दिया गया था और हृदय की गहराई से निकला था, जिसमे न अलकार था न सुन्दर शब्दावली, शायद मेरे उन कई भाषणो से ज्यादा सफल रहा जिनके लिए पहले से ध्यान देकर तैयारी करने की जरूरत हुई थी।" (मेरी कहानी)

गाँधीजी गोलमेज-सम्मेलन से खाली हाथ लौटे। आदोलन दोबारा भडक उठा। फिर नेताओ की गिरफ्तारियाँ हुई, लोगों ने फिर लाठियाँ और गोलियाँ खाई और क्रूर दमन का वीरता से सामना किया। पर अब सरकार की स्थिति मजबूत हो चुकी थी और उसके झुकने का सवाल ही पैदा नही होता था। अतएव गाँधीजी ने इस बार आदोलन उपवासो द्वारा समाप्त किया और उन्होने अपने भक्तो तथा अनुयायियो की तसल्ली के लिए 'यग इडिया' मे लिखा था कि 'पूर्ण स्वराज्य तो आत्मा का स्वराज्य है जो बिना राजनैतिक सत्ता के भी प्राप्त किया जा सकता है।'

बाप-बेटा

नमक सत्याग्रह के दौरान छः फरवरी १९३१ को मोतीलाल नेहरू की मृत्यु हो गई। उस समय उनकी उम्र सत्तर साल थी। वह अर्से से दमे के मरीज चले आते थे, पर उन्होंने संघर्ष से कभी मुँह नहीं मोड़ा। उन्होंने १८८८ से राजनीति में भाग लेना शुरू किया और कदम-कदम आगे बढे। जो कदम एक बार आगे बढ गया, उसे विश्वास की ठोस धरती पर रखा और कभी भी पीछे नहीं हटाया। लाहौर कांग्रेस के बाद पूर्ण स्वराज्य मुकम्मिल आज़ादी उनके जीवन का ध्येय बन गया था। मरने से पहले उनके अन्तिम शब्द थे :—

"अगर मुझे वाकई मरना है तो मैं स्वतंत्र भारत की गोद मे मरूँ। मुझे अगर आखिरी नींद सोना है तो गुलाम देश में नहीं, आज़ाद देश मे सोऊँ?"

उन्होंने १७ फरवरी १९३० को डॉ० अन्सारी के नाम अपने खत मे लिखा था :

"मैं उम्मीद करता हूँ कि आप यह तो मानेंगे कि आने वाली जद्दो-जहद मे गांधीजी के साथ अपनी किस्मत जोड़ देने का मेरे और अपनों के लिए क्या मतलब है। अगर मेरा यह गहरा यकीन न होता कि ज्यादा-से-ज्यादा कोशिश और कुरबानी का वक्त आ गया है तो मैं इस उम्र मे अपनी जिस्मानी कमज़ोरियो और कुनबे की कई जिम्मेदारियो के साथ वह जोखिम न उठाता, जो उठा रहा हूँ। मैं मुल्क

की आवाज सुन रहा हूँ और उस पर चल रहा हूँ।"

उन्होने वक्त के तकाजे को हमेशा पहचाना और उससे कभी आँख नही चुराई। उन्होने अपने को और दूसरो को कभी धोखा नही दिया। जिस तरह १९२० मे गाँधीजी को लेकर जवाहरलाल के नाम लिखे उनके खत से उस समय की उनकी नई समझ और नए निश्चय का पता चलता है, उसी तरह इस खत से दस साल बाद की उनकी नई समझ और नया निश्चय उजागर होता है। लिखते है.

"अत मे आपने १९२० के हालात का आज के हालात से खुलासे-वार मुकाबला किया है। किसी मुल्क की तवारीख मे दस सालो की दो घटनाएँ हू-ब-हू एक-सी नही हो सकती।"

हालात की तबदीली और समझ की तबदीली के मुताबिक वह नेतृत्व मे भी तबदीली चाहते थे। १९२८ मे जब काँग्रेस की सदारत के लिए उनका नाम आया तो ११ जुलाई को गाँधीजी के नाम अपने खत मे लिखा

"अब वक्त आ गया हे जबकि ज्यादा फुर्ती रखने वाले और मजबूत कार्य-कर्त्ताओ को मुल्क के साहसी कामो को अपने तरीके से चलाने का मौका मिलना चाहिए। मैं मानता हूँ कि इस दर्जे मे और उस दर्जे मे जिसमे कि आप और मै है, फर्क की बाते है, लेकिन कोई वजह नही कि अपने खयालो को हम उन पर लादते रहे। हमारी पीढी तो अब तेजी से खत्म हो रही है। जल्दी या देर से लड़ाई को जवाहर जैसे लोग ही चालू रख सकेगे। जितनी जल्दी शुरू करे उतना ही अच्छा है।"

वैधानिक लडाई लडकर उन्होने जो अनुभव प्राप्त किया था उससे ब्रिटिश सरकार और वहाँ के मजदूर-दल के लोकतन्त्री दावो मे उनका जरा भी विश्वास नही रह गया था और उन्होने अपने आपको आने वाले बडे सघर्ष के लिए पूरी तरह तैयार कर लिया था। इलाहाबाद सर्वदल-सम्मेलन के बाद वायसराय से मुलाकात तय हुई

थी। दूसरे नेताओ के साथ वह भी मिलने गये थे, पर इस भेंट के तुरन्त बाद उन्होंने साफ कह दिया था . "इससे कुछ वने वनायेगा नही। अब तमाम रास्ते लाहौर को जाते हैं।"

कश्मीरियो का रग-रूप जगत्-विख्यात है। पडित मोतीलाल नेहरू भी ऊँचे कद और सुडौल शरीर के सुन्दर व्यक्ति थे। इस पर वुद्धि के तेज और विनोदी जीव थे। अपने रग-रूप और वातचीत के कारण हर महफिल की रौनक होते और एक अग्रेज न्यायाधीश के शब्दो मे मेज के जिस कोने पर भी वैठ जाते वही से प्रधान जान पडते थे।

एक स्वस्थ, निर्भीक और प्रगतिशील दृष्टिकोण शुरू से ही उनके व्यक्तित्व का हिस्सा रहा। वह सिर्फ तन के ही नही मन के भी सुन्दर थे। जीवन मे जो कुछ भी भौंडा और भद्दा है, वह उन्हे एक आँख नही भाया और उससे उन्होंने कभी समझौता नही किया। उनके जीवन मे कोई एक घटना ऐसी नही मिलेगी, जिससे उनकी कथनी और करनी मे फर्क सिद्ध किया जा सके।

एक वार उन्होंने शिमला मे अपने सम्मान मे दी गई पार्टी मे शराव पी। उस पर गाँधीजी ने ऐतराज किया तो मोतीलाल ने १० जुलाई १९२४ को उत्तर मे लिखा

"मेरा धर्म मेरा देश है और मैं इसकी सेवा ईमानदारी और सच्चाई के साथ तन, मन, धन सव हालतो मे अपनी रोशनी के अनुसार करने को तैयार हूँ और इस पर ससार के किसी धार्मिक कठमुल्ला सिद्धान्त का कोई असर नही पड़ेगा।" जहाँ तक शराव पीने का सम्वन्ध है, "मुमकिन है आगे मैं पिऊँ या न पिऊँ। यह मेरा निजी मामला है। पर यदि मैं पिऊँगा तो चाहे ससार मे कुछ भी हो जाये, इसके लिए मुझे इसे चोरी से करने की जरूरत नही पडेगी। मैं चाहूँगा कि लोग मुझे जैसा कि मैं हूँ, उसी पर मेरे सम्वन्ध मे मत वनाये, न कि मैं वैसा वनूं जैसा कि लोग मुझे चाहते हैं।"

उनके व्यवहार मे चापलूसी और विडम्बना लेश-मात्र को नही थी और यह बात अत तक उनके चरित्र का दृढ अग बनी रही। डा० अन्सारी के नाम अपने उक्त पत्र मे लिखा है :

"आपने उन घटनाओ पर एक दृष्टि डाली है, जो पिछले चद सालो मे घटित हुई। आपने जो नतीजे निकाले मुझे उस बारे मे कुछ नही कहना और न इस बारे मे कि मैंने मिस्टर जिन्ना का स्वागत इतने ठडे दिल से क्यो किया। बात यह है कि इस समय मिस्टर जिन्ना ने ऐसी बाते कही, जिनसे मैं बुझ-सा गया और उन्हे खुश करने को मैं अपने अन्दर झूठी बनावटी गर्म जोशी पैदा नही कर सका।"

गुलामी चाहे कैसी भी हो जीवन का अत्यन्त भौंडापन है। मोतीलाल सुन्दरता से प्रेम करने वाले स्वच्छद विचारो के व्यक्ति थे। अच्छा खाने, अच्छा पहनने और आन-बान से रहने मे विश्वास रखते थे। वह गुलामी का भोंडापन कैसे सहन करते? इसलिए पहले उन्होने यूरोप की आधुनिक सभ्यता अपनाकर अपने पुराने समाज की धार्मिक रूढियो को तोडा। १८९९ मे अपनी पहली विदेश यात्रा के बाद उन्होने बिरादरी के आदेश पर 'प्रायश्चित' करने से साफ इनकार कर दिया।

सुन्दरता से प्रेम करने वाले अपने इसी स्वच्छद स्वभाव के कारण वह बहुत दिनो तक राजनीति मे भी नर्मदल के बने रहे। गर्मदल वालो से वह अपने आपको इसलिए सहमत नही कर पाये कि गर्मदल वाले देश-भक्ति की प्रेरणा रूढियो से लेते थे और पीछे की ओर लौट जाने की बात कहते थे। मगर मोतीलाल का विश्वास तो यह था कि जब हम पश्चिम की नई सभ्यता सीखकर समाज और धर्म की मौजूदा बुराइयो से पिंड छुडा लेंगे तो अग्रेज हमें आप ही आप आजाद कर देंगे।

फिर जब यह विश्वास टूटा तो वह निस्सकोच आजादी की

लडाई मे कूद पडे। कहते है कि लडाई और मुहब्बत मे सब जायज है। पर मोतीलाल ने इस सिद्धान्त को गवारा नही किया, उन्होने राजनीति की लडाई मे भी सुन्दरता और स्वच्छदता के स्तर को हमेशा बनाये रखा। सिर्फ अपनी शक्ति बढाने ही के खयाल से न उन्होने कभी घटिया किस्म के लोगो से गठजोड किया और न जनता के अध-विश्वासो और रूढिवाद से समझौता किया। चुनाव के समय साफ बात कहना कठिन है, पर मोतीलाल नेहरू ने १९२६ मे अपने एक चुनाव भाषण मे कहा था: "वेदो ही की बात नही, मैं किसी भी पुस्तक को ईश्वरीय ज्ञान नही समझता। जहाँ तक आचार और नैतिकता के नियमो का सम्बन्ध है, वे सभी धार्मिक ग्रन्थो मे मिलते है। पर मैं यह नही मान सकता कि ईश्वर इसान से बाते करता है।"

गाँधीजी ने अपने लेखो की एक छोटी-सी पुस्तिका "विचार-प्रवाह" के नाम से प्रकाशित करवाई और उसकी भूमिका मोतीलाल से लिखाई। इस भूमिका मे उन्होने लिखा

"मैने अवतारो और महात्माओ की बाबत बहुत कुछ सुन रखा है, पर मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ। मेरा तो मानव सिर्फ मानव मे विश्वास है। इस पुस्तक का जो विचार-प्रवाह है, वह मानव का है और मानव ही के बारे मे है। इसमे मानव स्वभाव के दो गुणो—विश्वास और पुरुषार्थ की व्याख्या की गई है।"

१९२६ मे देश मे बडे पैमाने पर साम्प्रदायिक दगे हुए। खिलाफत कमेटी के बहुत से नेता कांग्रेस छोडकर चले गये। मदनमोहन मालवीय और लाजपतराय ने हिन्दू-जाति के अधिकारो की रक्षा के नाम पर नेशनलिस्ट पार्टी अलग बना ली। तब मोतीलाल नेहरू बहुत परेशान हुए। २ दिसम्बर को जवाहरलाल के नाम अपने खत मे लिखा

"साम्प्रदायिक घृणा और रिश्वत समय का दस्तूर बन गई है। मेरी दिलचस्पी पूरी तरह से हट गई है और अब मैं सजीदगी के

साथ पब्लिक कामो से छुट्टी लेने की सोच रहा हूँ। यही फिक्र है कि वक्त कैसे काटूँगा।" आगे लिखा है, "जहाँ तक मुल्क मे काम का सवाल है, मुझे कोई ऐसा काम दिखाई नही देता, जिसे मैं सफलता की किसी उम्मीद के साथ हाथ लगा सकूँ। हिन्दू-मुस्लिम एका के लिए मेरी नेशनल यूनियन जरूर मौजूद है, पर साम्प्रदायिक तनाव की जो हालत इस समय है, उसमे मेरी आवाज़ नकारखाने मे तूती की आवाज बनकर रह जायगी।"

नेहरू रिपोर्ट मे साम्प्रदायिक समस्या का हल पेश करने की उन्होने जी तोड कोशिश की। जब देखा कि वैधानिक तथा सुधारवादी तरीक़े इसे हल नही कर पायेगे तो उन्हे सीधी राह भी दिखाई दे गई। डा० अन्सारी के नाम अपने १७ फरवरी १९३० के उक्त पत्र मे इस सम्बन्ध मे लिखा था :

"अब मेरा पक्का यकीन है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता नसीहत देकर नही हो सकती। हमे उसे ऐसे ढग से लाना है कि हिन्दू और मुसलमान इस बात को जाने भी नही कि वे एकता के लिए कोशिश कर रहे है। यह सिर्फ इकतसादी बुनियाद पर हो सकता है और हकतलफी करने वाले के खिलाफ आजादी की लडाई लडते हुए अगर एक फिरका जीने के हक के लिए, जो दोनो के लिए एक-सा हो, लड रहा हो, तो यह सोचना नामुमकिन है कि जल्दी या देर मे दूसरा फिरका भी कामयाबी या नाकामयाबी के नतीजो को महसूस नही करेगा और यह सोचना उतना ही नामुमकिन है कि उन नतीजों को महसूस करने पर वह जी-जान से उस जद्दो-जहद मे नही कूद पडेगा। उस बडे दिमाग वाले ने, बहुत ज्यादा खिल्ली उड़ाये जाने और गलतफहमी के बीच भी, नमक के कानूनो को तोडने मे एक ऐसी बुनियाद को ढूंढ निकाला है।"

गलतफहमी से उन्होने यह समझ लिया था कि नमक-सत्याग्रह आजादी की लड़ाई की आर्थिक आधार पर शुरुआत है और वह

बुढापे तथा बीमारी की हालत मे भी उसके लिए बडी-से-बडी कुरबानी देने को तैयार हो गये। गांधी-इर्विन समझौते के समय वह जीवित नही थे, इसलिए अपना यही विश्वास मन मे लिए सुख की नीद सो गये .

छः-सात साल पहले उनकी जन्म-शताब्दी पर मेरी एक छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित हुई थी । उसमे मैने लिखा था ।

"गरुड पक्षियो का राजा है। वह आकाश मे ऊँचा उडता है, बहुत दूर तक देख सकता है, और अपने शिकार अथवा शत्रु पर तेजी से झपटता है। वह स्वच्छद स्वभाव का सुन्दर पक्षी है। ये सारे गुण मोतीलाल मे भी थे। अगर किसी ने उन्हे गरुड से उपमा दी है तो ठीक ही दी है।"

जवाहरलाल ने अपने पिता के बारे मे बहुत कुछ लिखा है। उनकी उदारता, निर्भीकता तथा योग्यता की तारीफ की है। पर उन्होंने पिता के जीवन के विकास-क्रम को स्पष्ट नही किया और कई बार गांधीजी को महत्व देने और अपने को उनसे अधिक क्रान्तिकारी दिखाने के खयाल ही से सत्य को विकृत किया है। उदाहरण के लिए सैयदेन को पिता के बारे मे अपनी एक भेट मे कहा था—"वह गांधीजी सरीखे महापुरुष के सम्पर्क मे आये और साथ ही उस नए आदोलन के उस जबर्दस्त सैलाब के भी, जो गांधीजी के साथ भारत मे आया।"

(नेहरू-स्मृति अक आजकल)

यहाँ "मेरी कहानी" से जवाहरलाल का एक उद्धरण लेना उचित होगा क्योंकि उससे बेटे को बाप से अलग करने वाली विभाजन-रेखा के अलावा कुछ दूसरी बाते भी स्पष्ट होती है

"पिछले साल हिन्दू-महासभा के कुछ नेताओ ने मुझ पर यह आरोप लगाया था कि अपनी सदोष शिक्षा तथा फारसी सस्कृति के असर के कारण मैं हिन्दुओ की भावनाओ से अनभिज्ञ हूँ। मैं किस

सस्कृति से सम्पन्न हूँ या मेरे पास कोई संस्कृति है भी या नही, यह कहना मेरे लिए कुछ मुश्किल है। दुर्भाग्य से फारसी जबान तो मैं जानता भी नही। लेकिन यह सही है कि मेरे पिताजी हिन्दुस्तानी, फारसी सस्कृति के वातावरण में बड़े हुए थे। यह सस्कृति उत्तर भारत को दिल्ली के पुराने दरबार से विरासत मे मिली थी और आज के इन बिगड़े हुए दिनो मे भी दिल्ली और लखनऊ उसके खास केन्द्र है। कश्मीरी ब्राह्मणो मे समय के अनुकूल हो जाने की अद्भुत शक्ति है। हिन्दुस्तान के मैदान मे आने पर जब उन्होने उन दिनो यह देखा कि ऐसी सस्कृति का बोलबाला है, तो उन्होने उसे अख्तियार कर लिया और उनमे उर्दू और फारसी के भारी पडित पैदा हुए। उसके बाद उन्होने उतनी ही तेजी के साथ नई व्यवस्था के अनुसार अपने को बदल लिया। जब अग्रेजी भाषा का जानना और यूरोपियन सस्कृति को ग्रहण करना जरूरी हो गया तब उन्होने उन्हे भी ग्रहण कर लिया। लेकिन अब भी हिन्दुस्तान मे कश्मीरियो मे फारसी के कई नामी विद्वान है। इनमे दो के नाम लिये जा सकते है, सर तेज बहादुर सप्रू और राजा नरेन्द्रनाथ।"

लेकिन मोतीलाल अपने स्वभाव और चरित्र मे सर तेज बहादुर सप्रू और राजा नरेन्द्रनाथ से एकदम भिन्न थे। 'सर' और 'राजा' की उपाधियो ही से जाहिर है कि तेज बहादुर सप्रू और नरेन्द्रनाथ विशुद्ध रूप से राजभक्त अर्थात् माडरेट थे जबकि मोतीलाल नेहरू खुद जवाहरलाल के शब्दो मे "प्रचड भावो, प्रबल विचारो, घोर अभिमान और महती इच्छा-शक्ति से सम्पन्न माडरेटो की जाति से बहुत ही दूर थे।" वह शुरू ही से नटखट, स्वच्छद और दगलबाज थे और फिर वकालत के पेशे मे उन्होने अपने ही बल पर असाधारण सफलता प्राप्त की थी। अपने इन निजी गुणो के कारण वह राज-भक्ति की वशगत परम्परा को झटककर काफी आगे बढ़ गये थे। सफलता ही उनके जीवन का एकमात्र आदर्श बन गई थी और इसी

आदर्श ने उन्हे राजनीति के क्षेत्र मे आजादी के लिए तन, मन, धन से लडने की मजिल तक पहुचाया। पर चूँकि उनके दृष्टिकोण को वर्ग-स्वभाव ने सीमित कर दिया था, इसलिए वह नमक-सत्याग्रह को आजादी की लडाई का आर्थिक आधार समझ बैठे।

असाधारण सफलता प्राप्त करने और ऊँचा उठने की महती इच्छा शक्ति जवाहरलाल को विरासत मे मिली थी। लेकिन जवाहरलाल का पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा जिन परिस्थितियो मे हुई, वे मोती लाल के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा की परिस्थितियो से एकदम भिन्न थी और जवाहरलाल ने अपने बारे मे कि, मैं किस सस्कृति से सम्पन्न हूँ या मेरे पास कोई सस्कृति है भी या नही, यह कहना मेरे लिए मुश्किल है, ठीक ही लिखा हे। कारण यह कि जब उन्होने आँख खोली तो घर का रहन-सहन पश्चिमी साँचे मे ढल चुका था। इसलिए उनकी शिक्षा बचपन ही से अग्रेजी ढग से हुई। फिर १५ से २२ साल तक का नौजवानी का समय, जो सीखने और भावी जीवन की नीव पुख्ता करने का समय होता है, इगलैंड के हैरो, केम्ब्रिज और इन टैम्पिल मे बीता। वहाँ उन्होने न सिर्फ अग्रेजी साहित्य, सवैधानिक इतिहास, कानून और सामाजिक दर्शन की शिक्षा ग्रहण की बल्कि 'कश्मीरी ब्राह्मणो की समय के अनुकूल हो जाने की अद्भुत शक्ति' से अपने को वातावरण के अनुकूल बनाया और पश्चिमी सभ्यता के वे तमाम गुण भली-भाँति आत्मसात् किये, जो पिता के गुणो से सर्वथा भिन्न थे और जिनके कारण उन्हे आगे चलकर देश की राजनीति मे असाधारण सफलता प्राप्त करने और ऊँचा उठने मे अद्भुत सहायता मिली।

इस पतनोन्मुख साम्राज्यवादी पश्चिमी सभ्यता ने जिसने अपने ही पूँजीवादी युग के नैतिक मूल्यो और वैज्ञानिक सत्य को ताक पर रखकर साम्राज्य के विस्तार के लिए हर प्रकार की धोखा-धडी, छल-कपट और धार्मिक पाखड को जायज बना दिया था, जिसने

'इस दुनिया का सच झूठ और झूठ सच है,' घोषित करने वाला नीत्शे जैसा सनकी दार्शनिक और 'कला, कला के लिए' का राग अलापने वाले आस्कर वाइल्ड और वाल्टर पेटर जैसे प्रतिक्रियावादी लेखक पैदा किये थे, कथनी और करनी के अन्तर को एक घृणित दोष के बजाय राजनीतिज्ञो और शासको का बहुत बडा गुण बना दिया था। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ऐसे ही राजनीतिज्ञ और शासक तैयार करती थी। अभिजात वर्ग के हिन्दुस्तानी विद्यार्थी जो विलायत पढने जाते थे, कमो-बेश इसी गुण को धारण करते थे। उदाहरण के लिए अपने केम्ब्रिज के साथियो के बारे मे जवाहरलाल ने लिखा है :

"मजलिस मे और निजी बात-चीत मे हिन्दुस्तान की राजनीति पर चर्चा करते हुए हिन्दुस्तानी विद्यार्थी बडी गर्म तथा उग्र भाषा काम मे लाते थे, यहाँ तक कि बगाल मे जो हिंसाकारी कार्य शुरू होने लगे थे, उनकी भी तारीफ करते थे। लेकिन बाद मे मैने देखा कि यही लोग कुछ तो इडियन सिविल सर्विस के मेम्बर हुए, कुछ हाई कोर्ट के जज हुए, कुछ बडे धीर-गम्भीर बैरिस्टर आदि बन गये। इन आराम-घर के आग-बबूलो मे से बिरलो ने ही पीछे जाकर हिन्दुस्तान के राजनैतिक आंदोलन मे कारगर हिस्सा लिया होगा।"

(मेरी कहानी)

अगर हमे बाप-बेटे के बीच के बुनियादी फर्क को समझना है तो यह नही भूलना चाहिए कि जवाहरलाल भी इसी 'आराम-घर के एक आग-बबूला' थे। उन दिनो इन लोगो के लिए ब्रिटिश सिविल सर्विस का बडा आकर्षण था। पर पिता के स्वच्छद जीवन और असाधारण सफलता का उदाहरण सामने था और पिता से भी आगे बढने की महती इच्छा मन मे थी। इसलिए उन्होने वकालत बल्कि यो कहिए कि राजनीति को "कैरियर" बनाया और हमने देखा कि जवाहरलाल ने शुरू ही से बहुत समझ-सोचकर बाये की गर्म-गर्म बाते करने और दायें चलने की दोहरी नीति अपनाई।

शुरू मे ब्रिटिश लिबरल पार्टी उनका आदर्श थी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद मजदूर दल ने उसका स्थान ग्रहण किया और जॉन लेन्सबरी, रेमजे मेकडानल्ड और जॉन स्ट्रेची आदि दोहरे चरित्र के अनेको नेता पैदा किये।

, जवाहरलाल ने हिन्दुस्तान की कहानी (डिस्कबरी ऑफ इडिया) मे 'वर्ण-व्यवस्था के आरम्भ' पर विचार करते हुए लिखा है: "क्षत्रिय हुए जो हुकूमत करते थे या युद्ध करते थे, ब्राह्मण बने, जो पुरोहिती करते थे, विचारक थे, जिनके हाथ मे नीति की बाग-डोर थी और जिनसे यह उम्मीद की जाती थी कि वे जाति के आदर्शों की रक्षा करेंगे।" ब्राह्मणो का एक और भी काम था, "और कोई भी शख्स, जो लडकर या दूसरी तरह ताकत अपने हाथ मे कर लेता था, वह अगर चाहे, तो क्षत्रियो मे शरीक हो सकता था और पुरोहितो के जरिये अपनी वशावली तैयार कर सकता था, जिसमे उसका ताल्लुक किसी प्राचीन आर्य शूरवीर से दिखा दिया जाता था।"

जवाहरलाल मे अपने पुरोहित कुल के ये दोनो गुण थे, जिन्हे उन्होने अपनी आधुनिक शिक्षा और दोहरी नीति के अनुरूप ढाला। वह निस्सदेह एक विचारक थे उन्होने पिता से भी ऊँची शिक्षा प्राप्त की थी और देश की आजादी के आदर्श से न सिर्फ अपनी इस शिक्षा का सम्बन्व स्थापित किया बल्कि जैसे-जैसे यह आदर्श बदला वह भी अपने आपको मानसिक रूप से बदलते रहे और इस सम्बन्ध को बराबर बनाये रखा। उदाहरण के लिए १९२६-२७ की विदेश यात्रा मे जब उन्होने देखा कि समाजवाद दुनिया की एक जबर्दस्त शक्ति बन चुका है और मार्क्सवादी दर्शन न सिर्फ यूरोप और अमरीका के बुद्धिजीवियो को बल्कि उपनिवेशो की सघर्षरत जनता को भी बहुत ज्यादा प्रभावित कर रहा है तो उन्होने भी स्वदेश लौट कर समाजवाद का नारा बुलद किया और नौजवानो तथा मजदूरों

के आदोलनो मे सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया ।

दूसरे अपनी विचार-शक्ति से जवाहरलाल ने शुरू ही से समझ लिया कि दायी राजनीति के असल नेता गांधी जी है और चट उनका दामन पकड लिया । इसके बाद किसी भी हालत मे, पिता के नाराज हो जाने के बावजूद उनका साथ नही छोडा । न सिर्फ साथ नही छोडा बल्कि उनकी महात्माई की वशावली तैयार की और उसका सम्बन्ध जनता की परम्परागत भावनाओ से जोडा । लिखा है :

"किसी-न-किसी तरह की तपस्या का खयाल हिन्दुस्तानी विचार-धारा का एक अग है और ऐसा खयाल न सिर्फ चोटी के विचारको के यहां है बल्कि साधारण अनपढ जनता मे फैला हुआ है । हजार बरस पहले यह बात रही है, और आज भी यह बात है और अगर गॉधीजी की रहनुमाई मे हिन्दुस्तान को हिला देने वाले जनता के आदोलनो के पीछे जो मनोवृत्ति काम करती है, उसे हम समझना चाहते है तो जरूरी है कि हम इस खयाल को समझ ले ।"

(हिन्दुस्तान की कहानी)

कोई भी नेता जब तक अपने अतीत, परम्परा और जनता की मनोवृत्ति को न समझ ले राजनीति क्या किसी भी दिशा मे सफल नही हो सकता । यहाँ तक कि जो अग्रेज हिन्दुस्तान मे शासक बनकर आते थे उनके लिए भी हिन्दुस्तान का इतिहास और दर्शन पढना जरूरी था । जवाहरलाल ने भी देश के इतिहास का अध्ययन किया और उसे अपने ढग से लिखा और 'आम लोगो के अधविश्वासो की नीव पर अपनी और गाँधीजी की ख्याति के गढ निर्माण किये ।'

१६३६ मे 'जय जवाहरलाल की' नाम का एक लेख 'माडर्न रिव्यू' मे प्रकाशित हुआ था । लेखक का नाम चाणक्य दिया गया था । पर बाद मे जवाहरलाल ने मित्रो को बताया कि चाणक्य के छद्म नाम से यह लेख उन्होने खुद लिखा था । इसमे उन्होने जनता के अधविश्वास से लाभ उठाने की बात को साफ अलफाज़ मे कबूला है ।

लेख यों शुरू होता है :

"राष्ट्रपति जवाहरलाल की जय—प्रतीक्षा-रत जन-समूह के बीच तेजी से गुजरते हुए 'राष्ट्रपति' ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई, हाथ भी ऊपर उठकर अभिवादन की मुद्रा मे जुड गये और पीताभ कठोर चेहरे पर मुस्कराहट खिल उठी। यह अत्यन्त उत्साहपूर्ण व्यक्तिगत मुस्कराहट थी और जिन लोगो ने इसे देखा उन सभी ने तुरन्त ही मुस्कराहट और हर्ष-ध्वनि के रूप मे अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

"मुस्कराहट गुजर गई और चेहरा पुन. गम्भीर, उदास तथा विशाल जन-समूह मे जागृत भावना के प्रति उदासीन हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी मुस्कान तथा मुद्रा यथार्थ नही है, बल्कि उस जन-समूह की सद्भावना प्राप्त करने को चाल भर है, जिनका वह नायक बना हुआ है। क्या सचमुच यही बात है ?

"फिर से देखे। एक विशाल जुलूस है, उसमे हजारो लाखो व्यक्ति उसकी कार को घेरे आनन्दातिरेक से हर्ष-ध्वनि कर रहे है। वह कार की सीट पर अच्छी तरह सतुलन के साथ खडा है, सीधा और लम्बा-सा, देवता की तरह शान्त और उत्तेजित भीड से अप्रभावित है।

"अचानक पुन वही मुस्कान तिर उठती है और अर्थपूर्ण हास्य निखर उठता है, जिससे तनाव टूट जाता है और भीड भी हसने लगती है। वह देव-तुल्य नही, वल्कि साधारण मानव है, जिसे उन हजारो लाखो लोगो की मैत्री तथा निकटता प्राप्त है, जो उसे घेरे हुए है। भीड प्रसन्न हो उठती है और निश्छल मैत्री भाव मे उसे अपने हृदय मे उठा लेती है। लेकिन देखे, मुस्कराहट लुप्त हो चुकी है और चेहरा पूरा गम्भीर और उदास हो गया है।

"क्या यह सब इस सार्वजनिक व्यक्ति की सुविचारित चाल मात्र है या स्वाभाविक प्रतिक्रिया है ? शायद दोनो ही बाते सही हैं

क्योंकि अर्से से चली आ रही आदत भी प्रकृति बन जाती है। सबसे प्रभावशाली मुद्रा वह है, जिससे बनावट कम मालूम देती है और जवाहरलाल ने तो पाउडर एव रग-रोगन के बिना ही अभिनय करना भली-भाँति सीख रखा है। अपनी जानी-बूझी लापरवाही और अल्हडता का प्रदर्शन करते हुए वह सार्वजनिक मच पर पूर्ण कलात्मकता के साथ अभिनय करता है। यह उसे और देश को किस ओर ले जा रही है? इस दिखावटी प्रयोजन-हीनता के पीछे उसका उद्देश्य क्या है, कौन-सी अकाक्षाएँ हैं, कौन-सी इच्छा-शक्ति और क्या-क्या अतृप्त कामनाएँ है?

"ये प्रश्न हर सूरत मे रोचक लगेगे, क्योकि जवाहरलाल एक ऐसा व्यक्ति है, जो रुचि और ध्यान को स्वत आकृष्ट करता है। लेकिन उनका हमारे लिए विशेष महत्व है क्योकि वह भारत के वर्तमान और सम्भवत. भविष्य से भी बँधा हुआ है और उसमे भारत को भारी लाभ या क्षति पहुँचाने की क्षमता है। अत. हमे इन प्रश्नो का उत्तर खोजना ही होगा।

"करीब दो वर्षो से वह कांग्रेस का अध्यक्ष बना हुआ है और कुछ लोगो का खयाल है कि वह कांग्रेस कार्य समिति मे सिर्फ एक शिथिर अनुयायी है, जिस पर दूसरो का नियत्रण रहता है लेकिन फिर भी वह जनता मे और जनता के सभी वर्गो मे लगातार अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा एव प्रभाव बढाता ही चला जा रहा है।

"वह किसानों से लेकर मजदूर तक जमीदार से लेकर पूंजीपति तक, व्यापारी से लेकर कगाल तक, ब्राह्मण से लेकर अछूत तक, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई और यहूदी तक—जो भारतीय जीवन के विविध अंग हैं, पहुँचता है। इन सभी से वह भिन्न-भिन्न भाषा बोलता है क्योंकि वे उनको अपने साथ लाने की चेष्टा करता रहता है।"

पर न सिर्फ भिन्न-भिन्न भाषा बोलने से, वह पठानो से पठानो

का, नेपालियो मे नेपालियो का और आदिवासियो मे आदिवासियो का—भिन्न-भिन्न भेस भी भर लेते थे। इसके बावजूद वह तस्लीम करते हैं—"उनमे मैं अपने को भुला नही देता था। मैं अपने को उनसे अलग ही समझता रहा और उन्हे यह एहसास कचोटता था—"जब उन्हे असलियत मालूम होगी, तब क्या होगा ?"

यह एहसास उन्हे अकसर परेशान करता था। जब वह लोगो पर "पिछडे हुए, पन्द्रहवी सदी" के कहकर बरसते थे दर असल अपने पर भी बरसते थे। क्योकि उन्हे मालूम था कि चाहे मैं बाते क्रान्ति और समाजवाद की करता हूँ, पर अमल को चर्खे से बाँध रखा है।

इसी एहसास के कारण वह कई बार अपने ही से नही अपने आध्यात्मिक गुरु गाँधीजी से भी चिढ जाते थे। ३ जुलाई १९३९ को वल्लभ भाई पटेल द्वारा उनके नाम लिखे पत्र का यह अश देखिए :

"उस दिन तुम गुस्से मे आ गये और 'हरिजन' मे प्रकाशित उनकी मुलाकात के मामले पर बहुत आवेश मे बातचीत की। उस बात पर तुमको इतना ज्यादा नाराज देखकर हम सबको बडा दुःख हुआ और हमने अनुभव किया कि तुमने बापू के साथ बहुत अन्याय किया। मुझे यह भी लगा कि इस तरह की दो-एक घटनाएँ उन्हे सार्वजनिक जीवन से अलग हट जाने का निर्णय लेने को बाध्य कर देगी। वह ७१ वर्ष के है और उनकी बहुत-सी ताकत खत्म हो चुकी है। जब तुम्हारी भावनाओ को चोट पहुँचती है तो उन्हे भी बडा दुःख होता है। मैं नही सोचता कि वह जितना तुम को चाहते हैं, उतना और किसी को चाहते हो और जब वह देखते हैं कि उनके किसी कार्य से तुमको दुःख पहुँचा है तो वह बडे सोच मे पड़ जाते हैं और दुःखी हो उठते हैं। उस शाम के बाद से वह पूरी तरह छुट्टी पाने की सोचने लगे हैं।...

मैं उन्हे यह समझाने की कोशिश कर रहा हूँ कि वह जल्दी मे कोई निश्चय न करें! परन्तु तुम उन्हे जानते हो और वह क्या

करेंगे, इसका मुझे कोई पता नहीं है ।

तुमको यह बात बता देना मुझे बहुत जरूरी मालूम हुआ इसी लिए लिख रहा हूँ यदि तुम उचित समझो तो उन्हे लिख सकते हो कि तुम से पूरी तरह सलाह मशविरा किए बगैर कोई निर्णय न करे ।"

३ जुलाई १६२६ को सुभाष के नाम अपने एक पत्र मे लिखा था :

"मै एक असन्तोषजनक मानव-प्राणी हूँ, जिसको अपने आपसे और ससार से असतोष है और जिस छोटी-सी दुनिया मे वह रहता है, वह भी उसे बहुत पसद नही करती ।"

यह अपने से और दुनिया से विक्षुब्ध सनकी नीत्शे का स्वर है।

नए जाल

नमक सत्याग्रह चाहे १९२१-२२ के सविनिय भग आन्दोलन की तरह पराजय मे समाप्त हुआ, पर इससे हमारे विचार और चिंतन मे एक गुणात्मक परिवर्तन आया। १९२७-२८ मे जो समाजवादी विचार बनने शुरू हुए थे और जो मज़दूरो, किसानो और नौजवानो को बडे पैमाने पर आदोलित करने लगे थे, वे सघर्ष के इन सालो मे और अधिक स्पष्ट और प्रौढ हुए और जनसाधारण की चेतना मे रस बस कर भौतिक शक्ति बनते जा रहे थे।

जवाहरलाल ने अपनी आत्मकथा अर्थात् 'मेरी कहानी' इन्ही दिनो जेल मे लिखी और अपने को समय के अनुसार ढालकर और धीरे-धीरे विकसित हो रही, क्रान्तिकारी विचारधारा को अपने ही ढग से प्रभावित करने की दृष्टि से लिखी। उन्होने बदलती हुई परिस्थिति को इस प्रकार चित्रित किया है :

"जैसे-जैसे हमारी लडाई धीमी पडने लगी और उसकी रफ्तार हल्की हो गई, वैसे-वैसे उसमे जोश और उत्साह की कमी आती गई—हाँ, बीच-बीच मे लम्बे अर्से के बाद कुछ उत्तेजना हो जाया करती थी। मेरे खयालात दूसरे मुल्को की तरफ ज्यादा जाने लगे और जेल मे जितना भी हो सका, मैं विश्व-व्यापी मदी से ग्रस्त दुनिया की हालत का निरीक्षण और अध्ययन करने लगा। इस विषय की जितनी भी किताबें मुझे मिली, उन्हे मैं पढता गया और मैं जितना

पढता जाता था उतना ही उसकी तरफ आकर्षित होता जाता था। मुझे दिखाई दिया कि हिन्दुस्तान अपनी खास समस्याओ और सघर्षों को लेकर भी उस जबर्दस्त विश्व-नाटक का, राजनैतिक और आर्थिक शक्तियो की उस लडाई का जो आज सब राष्ट्रो मे परस्पर हो रही है, सिर्फ एक हिस्सा ही है। उस लडाई मे मेरी अपनी सहानुभूति कम्युनिज्म (साम्यवाद) की तरफ ही ज्यादा ज्यादा होती गई।

"समाजवाद और कम्युनिज्म की तरफ मेरा बहुत समय से आकर्षण था और रूस मुझे बहुत पसद आता था। रूस की बहुत-सी बाते मुझे नापसद है।" तर्क यहाँ भी दोनो ओर चलता है। रूस की निरकुशता और दमन की बात कहने के बाद लिखा है, "मगर पूँजीवादी दुनिया मे भी तो बल-प्रयोग और दमन कम नही है। और मुझे ज्यादा-से-ज्यादा महसूस होने लगा कि हमारे सग्रहशील समाज का और हमारी सम्पत्ति का तो आधार और बुनियाद ही बल-प्रयोग है। बल-प्रयोग के बिना वह ज्यादा दिन टिक नही सकता जब तक भूखो मरने का डर सब जगह अधिकाश जनता को, थोडे लोगो की इच्छा के अधीन होने के लिए हमेशा मजबूर कर रहा है, जिसके फलस्वरूप उन थोडे लोगो का ही धन-मान बढता है, तब तक राजनैतिक स्वतत्रता होने का भी वास्तव मे कुछ अर्थ नही।"

फिर पूँजीवादी और समाजवादी व्यवस्थाओ का विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण करने के बाद वह पाठक को इस निष्कर्ष पर पहुँचाते है: "हिन्दुस्तान मे भूमि और कल-कारखाने दोनो से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नो का और देश की हर बडी समस्या का हल सिर्फ किसी क्रान्तिकारी योजना से ही हो सकता है।"

अब यहाँ पहुँचकर क्रान्तिकारी योजना प्रस्तुत करने के बजाय क्रान्तिकारी योजना का विचार ही निरर्थक साहस मे अपनी शक्ति बरबाद करना जान पड़ता है और तर्क उलटी ओर घूम जाता है: "—क्या कांग्रेस अपनी मौजूदा स्थिति को रखते हुए कभी भी

वास्तव मे मौलिक सामाजिक हल को अपना सकेगी ? अगर उसके सामने ऐसा सवाल रख दिया जाय, तो उसका नतीजा यही होगा कि उसके दो या ज्यादा टुकडे हो जायेगे, या कम-से-कम बहुत लोग उससे अलग हो जायेगे। ऐसा हो जाना भी अवाछनीय या बुरा न होगा, अगर समस्याएँ ज्यादा साफ हो जाएँ और कांग्रेस मे एक मजबूत सगठित दल, चाहे वह बहुमत मे हो या अल्पमत मे हो, एक मौलिक समाजवादी कार्यक्रम को लेकर खडा हो जाये।

"लेकिन इस समय तो कांग्रेस का अर्थ है गाँधीजी। वह क्या करना चाहेगे। विचारधारा की दृष्टि से कभी-कभी वह आश्चर्य-जनक रूप से पिछडे हुए रहे है, लेकिन फिर भी व्यवहार मे वह हिन्दुस्तान मे इस वक्त के सबसे बडे क्रान्तिकारी रहे है। वह एक अनोखे व्यक्ति है और उन्हे मामूली पैमाने से नापना या उन पर तर्क शास्त्र के मामूली नियम लगाना भी मुमकिन नही है। लेकिन चूँकि वह हृदय मे क्रान्तिकारी है और हिन्दुस्तान की राजनैतिक स्वतत्रता की प्रतिज्ञा किये हुए है, इसलिए जब तक वह स्वतत्रता मिल नही जाती, तब तक वह इस पर अटल रहकर ही अपना काम करेगे और इसी तरह कार्य करते हुए वह जनता की प्रचण्ड कार्य-शक्ति को जगा देगे और मुझे काफी उम्मीद है, वह खुद भी सामाजिक ध्येय की तरफ एक-एक कदम आगे बढते चलेगे।" (मेरी कहानी)

गाँधी जी व्यवहार मे कितने बड़े क्रान्तिकारी हैं और जनता की प्रचण्ड कार्य-शक्ति को कहाँ तक जगाना चाहते है वह चौरा-चौरी की घटना के बाद आन्दोलन बद करने से और गाँधी-इर्विन समझोते से भलीभाँति सिद्ध हो चुका था। लेकिन वह चूँकि गाँधी जी है इसलिए उन्हे मामूली पैमानो और तर्कशास्त्र के मामूली नियमो से मापना मुमकिन नही। उनमे तो कोई अज्ञात तत्त्व है, जिसके लिए वह खुद भी जवाबदेह नही है।

संघर्ष जितना तीव्र हो और जितना लम्बा चले, जनता की प्रचंड कार्य-शक्ति उतना ही जागृत और विकसित होती है और संघर्ष की अग्नि-दीक्षा मे तपकर राष्ट्र का क्रान्तिकारी चरित्र निखरता-सँवरता है। इसीलिए गाँधी जी संघर्ष के उग्ररूप धारण करने और उसके लम्बा खिचने से घबराते रहे। इस बार भी जब उनके गोलमेज़-सम्मेलन से लौटने के बाद सरकार ने अपनी ओर से जनता की क्रान्तिकारी शक्तियो को कुचलने के लिए हिंसक प्रहार किया और उसके फलस्वरूप आदोलन अपने-आप दोबारा चला तो उस पर गाँधी जी का कोई नियत्रण नही था। जनता ने इसे बिना किसी नेतृत्व के चलाया और ब्रिटिश साम्राज्य की क्रूरता, बर्बरता और अधे दमन का बड़े जोरो से मुकाबला किया। गाँधीजी को यह मुकाबला भी गवारा नही था। पहले उन्होने आत्मशुद्धि का उपवास रख कर तीन हफ्ते के लिए इसे मुल्तवी किया, बाद मे यह अवधि छः हफ्ते तक बढा दी गई और फिर सामूहिक के बजाय व्यक्तिगत ढग से शुरू किया गया। वायसराय से बात करना चाही, लेकिन वायसराय लार्ड इर्विन ने भेट की प्रार्थना तक ठुकरा दी। अतएव आन्दोलन १९३३ के बाद १९३४ मे भी बराबर चलता रहा। देश की वीर जनता ने साम्राज्यवादी दमन के सामने आत्मसमर्पण करने से साफ इन्कार कर दिया था।

जवाहरलाल ३० अगस्त १९३३ को रिहा हो गये थे, लेकिन कोई साढ़े पाँच महीने बाहर रहकर फरवरी १९३४ मे फिर जेल गये थे और आन्दोलन बराबर चल रहा था कि अप्रैल मे जब वह अलीपुर जेल मे थे, अकस्मात अखबार मे गाँधीजी का एक बयान पढ़ा जिसके द्वारा आन्दोलन बद कर दिया गया था। लिखा था :

"इस वक्तव्य की प्रेरणा सत्याग्रह आश्रम के साथियो से हुई एक आपसी बातचीत का परिणाम है···इसका मुख्य कारण वह आँखे खोल देने वाली खबर थी जो मुझे एक बहुत पुराने और मूल्यवान साथी के सम्बध मे मिली थी। वह जेल का काम पूरा

करने को राजी न थे और उसके बजाय किताबे पढना पसन्द करते थे। यह सब कुछ सत्याग्रह के नियमो के सर्वथा विरुद्ध था। इस बात से इस मित्र की जिसे मैं बहुत अधिक प्यार करता था, दुर्बलताओ की अपेक्षा मुझे अपनी दुर्बलताओ का अधिक बोध हुआ। उन मित्र ने कहा कि आप मेरी दुर्बलता को जानते है, लेकिन मैं अधा था। नेता मे अधापन एक अक्षम्य अपराध है। मैंने फौरन यह भाँप लिया कि कम-से-कम इस समय के लिए तो मैं अकेला ही सक्रिय सत्याग्रही रहूँगा।"

नेता का अधापन और अक्षम्य अपराध दर असल यह था कि वह जनता के अदम्य साहस और जीवट को समझने मे असमर्थ रहा और यह नही देख पाया कि उसके तमाम विरोधी प्रयत्नो के बावजूद सघर्ष इतना लम्बा खिच जायगा। यह साहस और जीवट और सघर्ष का लम्बा खिचना तो उन निहित स्वार्थों के लिए खतरा था, जिनकी रक्षा के लिए वह कॉंग्रेस के नेता बने थे।

गाँधीजी ने अपने इस वक्तव्य मे कॉंग्रेसजनो को जो रचनात्मक कार्यक्रम सुझाया ज़रा वह भी देखिए

"उन्हे आत्मत्याग और स्वेच्छापूर्वक ग्रहण की गई दरिद्रता की कला और सुन्दरता को समझना होगा, उन्हे राष्ट्रीय निर्माण के कार्य मे लग जाना चाहिए, उन्हे स्वय हाथ से कात-बुनकर खद्दर का प्रचार करना चाहिए, उन्हे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे एक दूसरे के साथ निर्दोप सम्पर्क स्थापित करके लोगो के हृदयो मे साम्प्रदायिक एकता का बीज बोना चाहिए। स्वय अपने उदाहरण द्वारा अस्पृश्यता का प्रत्येक रूप मे निवारण करना चाहिए। और नशेबाजो के साथ सम्पर्क स्थापित करके और अपने आचरण को पवित्र रखकर मादक चीजो के त्याग का प्रसार करना चाहिए। ये सेवाएँ है जिनके द्वारा गरीबो की तरह निर्वाह हो सकता है। जो लोग गरीबी मे न रह सकते हो, उन्हे किसी छोटे राष्ट्रीय धधे मे पड जाना चाहिए,

जससे वेतन मिल जाय।"

जवाहरलाल को यह सब कुछ बहुत भयंकर और हर तरह अनितिमय" लगा, उनके 'आदर्शों' को जबर्दस्त धक्का लगा और अत्यन्त तीव्र वेदना के साथ महसूस किया कि एक बहुत बड़ा अन्तर' उन्हे गाँधीजी से अलग कर रहा है और भक्ति के वे सूत्र जिन्होने इतने वर्षों से उनसे बाँध रखा था, टूट गये है।" इसी अत्यत तीव्र 'वेदना मे जवाहरलाल विषय से बहक जाते है और दरिद्रता को जड़ मूल से बरबाद करने से लेकर यूरोपियन समाजवादी बर्नार्ड शॉ के 'शिला पर' नाटक की भूमिका और फ्रॉयड के ऑडीपस कांप्लेक्स तक की चर्चा कुछ इस ढग से करते है कि असाधारण बुद्धि का व्यक्ति भ करा जाय। शायद असाधारण बुद्धि को, खुद तर्क को चकरादेना इस चर्चा का प्रयोजन रहा होगा क्योकि इस चर्चा का अत व्यक्ति स्वर यो होता है, "खुशकिस्मती से मै बड़ा खुश मिजाज हूँ अ लोलुपता के हमलो से बडी जल्दी सँभल जाता हूँ। इसलिए मैं अ है। को भूलने लगा। इसके बाद जेल मे कमला से मेरी मुलाकात हु उससे मुझे और भी खुशी हुई और मेरी अकेलेपन की भावना हो गई। मैंने महसूस किया कि कुछ भी क्यो न हो हम एक-द के जीवन-साथी तो है ही।" (मेरी कहा

कोई चार महीने बाद कमला की बीमारी के कारण जव लाल को जेल से ग्यारह दिन की छुट्टी मिली। तब उन्होंने गाँ के नाम एक लम्बा खत लिखा। उसमे कोई खास बात नहीं उनके खत के उत्तर मे १७ अगस्त को गाँधीजी ने जो पत्र उसके ये शब्द उल्लेखनीय है।

"मै तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि तुमने मुझसे अपना खोया नही। मै वही हूँ जैसा तुम मुझे १९१७ म और उस से जानते हो।" और जिन प्रस्तावो से "तुम्हे पीडा हुई है' लिए और उनकी सारी कल्पना के लिए पूरी जिम्मेदारी मेरी

और "मेरा विचार है कि मुझे समय की आवश्यकता को पहचान लेने की अटकल आती है।"

यहाँ गाँधीजी ने अज्ञात तत्व की बात नही कही। "समय की आवश्यकता" को पहचानने की सीधी-सच्ची बात कही है और इससे जवाहरलाल की तसल्ली हो गई जैसे पहले भी हो जाया करती थी।

लेकिन गांधाजी की इस समझौतेबाजी और आत्म-समर्पण की नीति से बहुत से लोगो के भ्रम टूटे थे, विशेष रूप से उन नौजवानो के जो बडे जोश और उत्साह के साथ तन-मन से इस आन्दोलन मे कद पडे थे। गाँधीवाद और अहिंसा से उनका विश्वास उठ गया था। नौजवानो के चिन्तन मे जो परिवर्तन आया उसे हमारे जन वादी लेखक प्रेमचन्द ने जो पहले खुद भी गाँधीवादी थे, अपने "भाडे के टट्टू" कहानी मे यो चित्रित किया है

"रमेश जेल से छूटकर पक्का क्रान्तिकारी बन गया था, था, की अँधेरी कोठरी मे दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद वह के उपकार और सुधार के मनसूबे बाँधा करता था। सोचता मनुष्य क्यो पाप करता है ? इसीलिए कि ससार मे इतनी विषमता है। कोई तो विशाल भवनो मे रहता है और किसी को पेड की छाँह भी मयस्सर नही। कोई रेशम और रत्नो मे मँढा हुआ है किसी को फटा वस्त्र भी नही। ऐसे न्याय-विहीन ससार मे यदि चोरी, हत्या और अधर्म है। तो यह किसका दोष है ? वह एक ऐसी समिति खोलने का स्वप्न देखा करता, जिसका काम इस ससार से विषमता मिटा देना हो। ससार सबके लिए है और इसमे सुख भोगने का सबको समान अधिकार है। न डाका, डाका है, न चोरी, चोरी है ! धनी अगर अपना धन खुशी से नही बाँट देता तो उसका इच्छा के विरुद्ध बाँट लेने मे क्या पाप ? धनी उसे पाप कहता है तो कहे। उसका बनाया हुआ कानून अगर दड देना चाहता है तो दे। हमारी अदालत भी अलग होगी। उसके सामने वे सभी मनुष्य अपराधी

होगे, जिनके पास जरूरत से ज्यादा सुख-भोग की सामग्री है।…जेल से निकलते ही, उसने इस सामाजिक क्रान्ति की घोषणा कर दी। गुप्त सभाएँ बनने लगी, शस्त्र जमा किये जाने लगे।"

प्रेमचद को, जो इससे पहले पक्के गाँधी-भक्त थे, अब कांग्रेस लीडरो की नीति की तह मे समझौतावाजी साफ नजर आने लगी थी और उन्हे यह सदेह होने लगा था कि इन लोगो के द्वारा जो स्वराज्य आएगा, उसमे भी लूट-खसूट इसी प्रकार जारी रहेगी। उनकी "आहुति" कहानी की नायिका रूपमणि इस बुर्जुआ राजनीति का विरोध करते हुए कहती है

"अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढा-लिखा समाज यो ही स्वार्थांध बना रहे, तो मैं कहूँगी कि ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा है। अंग्रेजी महाजनो की धन-लोलुपता और शिक्षितो का स्वहित ही आज हमे पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयो को दूर करने के लिए आज हम प्राणो को हथेली पर लिये हुए हैं, उन्ही बुराइयो को क्या प्रजा इसलिए सिर चढायेगी कि वे विदेशी नही स्वदेशी है। कम-से-कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नही कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जाये।"

यह भविष्यवाणी थी, जो सघर्ष-जनित नई चेतना की देन थी। इसीलिए गांधीजी सघर्ष के लम्बा खिचने से घबराते थे, इसीलिए कोई-न-कोई बहाना लेकर उसे तुरन्त बन्द कर देते थे और इसीलिए उन्हे स्वराज्य की व्याख्या, पूर्ण स्वराज्य—मुकम्मिल आजादी कर देना असह्य था क्योकि वह मनुष्य के चिंतन को अस्पष्ट और सीमित रखना चाहते थे, जान-बूझकर आगे की बात सोचने की मनाही करते थे। लोग समाजवाद के बारे मे सोचे यह भी उन्हे गवारा नही था। ३० जुलाई १९३६ को जवाहरलाल के नाम अपने पत्र मे लिखते हैं।

"मै यहाँ समाजवाद की चर्चा नही करूँगा। ज्यो ही मैं अपनी

टिप्पणी को दोबारा देख लेना खत्म कर दूंगा, तुम्हारे पास उसका मसविदा पहुँच जायगा और बाद मे अखबारो को भेजा जायगा। मेरी कठिनाई दूर भविष्य के बारे मे नही है। मैं तो सदा वर्तमान पर ही पूरा ध्यान लगा सकता हूँ और उसी की मुझे कभी-कभी चिन्ता होती है। अगर वर्तमान को सँभाल लिया जाय तो भविष्य अपने आप सँभल जायगा। लेकिन मुझे आगे की बात नही सोचनी चाहिए।"

लेकिन वह आगे की बात भी सोचते थे और खूब सोचते थे। यह देख कर कि समाजवादी ग्रुप तादाद और प्रभाव मे बढ रहा है, वह सितम्बर १९३४ मे कांग्रेस से 'अलग' हो गये और योजनाबद्ध तरीके से नेतृत्व की बागडोर जवाहरलाल को सौंप दी क्योकि नई परिस्थिति को जवाहरलाल ही संभाल सकते थे।

जवाहरलाल ने "मेरी कहानी" और "विश्व इतिहास की झलक" लिखकर जनता मे यह प्रभाव पैदा किया था कि वह पक्के समाजवादी हैं और उनका दृष्टिकोण गांधीजी के दृष्टिकोण से बहुत भिन्न है। इसके अलावा जब वह १९३३ मे रिहा होकर पांच-साढे पांच महीने जेल से बाहर रहे (हालांकि सघर्ष के दिनो मे नेताओ का जेल से बाहर रहना ताज्जुब की बात है) उन्होने अपने भाषणो द्वारा और अखबारो में लेख तथा व्यक्तव्य छपवाकर समाजवादी विचारो का खूब प्रचार किया था। इन्ही दिनो गांधीजी ने 'मद्रास मेल' मे अपना एक इटरव्यू प्रकाशित कराया, जिसमे जवाहरलाल के कार्य-कलाप पर कुछ खेद व्यक्त करते हुए उनके सुधर जाने की दृढ आशा प्रकट की थी। इसी इटरव्यू मे उन्होने जमीदारियो या ताल्लुकेदारियो को राष्ट्रीय व्यवस्था का बहुत ज़रूरी अग बताकर निहित स्वार्थो की वकालत की थी। इस पर टिप्पणी करते हुए जवाहरलाल ने लिखा है, "भविष्य मे मैं उनके साथ कहाँ तक सहयोग कर सकूँगा" अर्थात् इस तरह के भ्रम पैदा करके जवाहरलाल ने अपने को नई चेतना का नेता बनाया और इस बात को गांधीजी ही नही उनके साथी

दूसरे कांग्रेसी नेता भी भली-भाँति समझते थे ।

इस बार जवाहरलाल ४ सितम्बर १९३५ को जेल से रिहा हुए और तुरत हवाई जहाज द्वारा जर्मनी चले गये क्योंकि वहाँ ब्रेडेनवाइलर के स्वास्थ्य-गृह मे कमला की हालत नाजुक हो गई थी । वहाँ से वह पत्नी को स्वीजरलैंड ले आये, स्वास्थ्य मे पहले कुछ सुधार हुआ लेकिन आखिर वही २८ फरवरी १९३६ को कमला का देहान्त हो गया ।

इस दौरान जवाहरलाल ने कॉंग्रेस नेताओ से अपना सम्पर्क बराबर बनाये रखा । १९ दिसम्बर १९३५ को राजेन्द्रप्रसाद ने उन्हे अपने पत्र मे लिखा था

"आसार ऐसे नजर आ रहे है कि अगली कॉंग्रेस के अध्यक्ष आप ही चुने जायेगे । मुझे मालूम है कि आपके और वल्लभभाई, जमनालालजी तथा मुझ जैसे आदमियो के दृष्टिकोण मे कुछ अन्तर है । अन्तर बुनियादी ढँग का है । मै यह समझता हूँ कि यह अन्तर वर्षो से रहा है और फिर भी हम लोग साथ-साथ काम कर सके है । अब जब कि बापू एक प्रकार से अलग हो गये है और पूछने पर ही अपनी सलाह देते है यह सभव है कि यह अतर कुछ और भी उभर आये । परन्तु मेरा विश्वास है कि जब तक हमारे कार्यक्रम और काम के तरीके मे क्रान्तिकारी परिवर्तन नही होता तब तक यह सभव बना रहेगा कि हम सब मिलकर साथ-साथ काम करते रहे ।" फिर वर्तमान स्थिति और कठिनाइयो का जिक्र करने के बाद लिखा है "सघर्षो मे हमे ऐसी परिस्थितियो का सामना [illegible] और हमे चाहे कितना ही रोष और झुँझलाहट हो, [illegible] पीनी पडती है और अनुकूल समय आने [illegible] पड़ता है । ऐसे सकटो मे से एक मे

की और विषमता मिटाने की बात बडे जोर से कही, वर्तमान स्थिति की खुलकर आलोचना की और कांग्रेस की कमजोरियाँ गिनवाते हुए स्वीकार किया कि "हम बहुत हद तक जनता के साथ सम्पर्क खो बैठे है।"

यह एक हकीकत थी और आदोलन के साथ गांधीजी की आंख-मिचौनी का प्रमाण। इस भाषण से जवाहरलाल की लोकप्रियता बढी।

१९३५ के नए विधान के अनुसार जो चुनाव लडे जाने वाले थे लखनऊ अधिवेशन मे कांग्रेस ने उनमे भाग लेने का निर्णय किया और चुनाव-घोपणा मे कहा गया कि "इस विधान के साथ किसी प्रकार का सहयोग करना देश के स्वाधीनता-सग्राम के साथ गद्दारी है और ब्रिटिश साम्राज्य के शिकजे को दृढ बनाना और भारतीय जनता के शोषण को, जो साम्राज्यवाद की गुलामी मे पहले ही घोर दरिद्रता का जीवन बिता रही है और बढाना है।"

जवाहरलाल के अध्यक्ष बनने और ये सब बातें कहने के बाव-जूद जो कार्यसमिति सगठित की गई, उसके बारे मे रफी अहमद किदवाई की राय देखिए। उन्होने २० अप्रैल को जवाहरलाल के नाम यह खत लिखा

"प्रिय जवाहरलाल जी,

पिछले कुछ दिन मैंने बडी तकलीफ मे काटे। जाहिरा तौर पर आप ही सिर्फ हमारी एक उम्मीद थे, लेकिन क्या आप ख्वाबी साबित होने जा रहे हैं? आप गांधीवाद के असर का और उसकी मिली-जुली मुखालिफत का कहाँ तक मुकाबला कर सकेगे, इसमे कुछ लोगो के अपने-अपने शक है।

"आपको वर्किंग कमेटी को फिर से बनाने का मौका दिया गया था। आपने टडन, नरीमन, पट्टाभि, सार्दूल सिह को छोड दिया। आपने गोविंद दास और शरत बोस के मुकाबले मे भोला भाई और

राजगोपालाचारी को शामिल किया है। इन लोगो से आपको ताकत मिलती। इन्होने छल कर के आपको बीच के तबके के लोगो से अलहदा कर दिया है। हम ए० आई० सी० सी० और डेलिगेट दोनो मे कमजोर पड गये है। जो वर्किंग कमेटी आपने बनाई है, वह पिछली के मुकाबले ज्यादा दकियानूसी होगी।

"हो सकता है कि मेरा नजरिया बहुत तग हो। उसूली बहसो के मुकाबले असलियत पर मेरा ज्यादा भरोसा रहता है। हालात का मुझ पर जो असर हुआ, उसे बताने के लिए मै बेचैन था।

—रफी"

रफीअहमद किदवाई को क्या मालूम कि छल जवाहरलाल के साथ नही जनता के साथ किया जा रहा है और उसमे खुद जवाहरलाल नेहरू भी शामिल है। शिकारी पुराने थे, सिर्फ जाल नए थे।

त्रिपुरी

१९३०-३४ के लम्बे और कड़े सघर्ष के फलस्वरूप हमारे चितन मे जो गुणात्मक परिवर्तन आया था, उसका सारतत्त्व यह था कि आम जनता तथा बुद्धिजीवी आजादी का मतलब यह लेने लगे थे कि हमे न सिर्फ साम्राज्यवाद की दासता से मुक्ति प्राप्त करनी है बल्कि पैसे और धर्म की गुलामी से भी छुटकारा पाना है, वर्तमान सामाजिक व्यवस्था मे मूल परिवर्तन करके ऊँच-नीच और जातिवाद के सदियो पुराने रोग को समाप्त करना है। सोच की इस तब्दीली को सक्षेप मे वर्ग-चेतना की सज्ञा देना उपयुक्त होगा।

वर्ग-चेतना स्पष्ट नही हो पाई थी कि आदोलन बद कर दिया गया। फिर भी काँग्रेस अब पुरानी काँग्रेस नही रह गई थी। उसमे गर्म दल और नर्म दल की जो दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ थी, उन्होने अब इस वर्ग-चेतना के आधार पर बाम-पक्ष और दक्षिण-पक्ष का रूप धारण कर लिया था। इन दोनो पक्षो का आपसी सघर्ष हमारे राष्ट्रीय आँदोलन का भीतरी सघर्ष था और वह अनिवार्य था क्योकि सघर्ष प्रगति का अटल नियम है।

इस भीतरी सघर्ष मे इन दोनो पक्षो की हार-जीत ही से हमारी आजादी की लडाई का और देश के भविष्य का निर्णय होना था।

हमारे राष्ट्रीय सघर्ष मे दक्षिण पक्ष जिन वर्गो का प्रतिनिधि था वे अपनी सामाजिक स्थिति और ऐतिहासिक चरित्र के कारण मेहनतकश अवाम के क्रान्तिकारी कर्म से सत्रस्त थे और रूस की

समाजवादी क्रान्ति के बाद यह सग्राम और बढ गया था। कॉग्रेस हाई कमान गाँधीजी के नेतृत्व मे इन्ही वर्गों का प्रतिनिधि था।

दक्षिण-पक्ष के दर्शन और नीतियो को काफी देखा-समझा जा चुका है। यहाँ हम सक्षेप मे बाम-पक्ष का और दक्षिण-पक्ष के साथ उसके सघर्ष के परिणाम का अध्ययन करेगे ताकि हम जवाहरलाल की ऐतिहासिक भूमिका और देश की राजनीति को भली प्रकार समझ सके।

मुख्य रूप से कम्युनिस्ट पार्टी और कॉग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बाम-पक्ष का प्रतिनिधित्व करती थी, जो मार्क्सवाद और समाज-वाद को अपनी राजनीति का आधार मानती थी। इसके अलावा कॉग्रेस के अन्दर बाम-पक्षी राष्ट्रीयवादी तत्त्व बहुत बडी सख्या मे थे, जिनका गाँधीवाद मे विश्वास नही था और जो देश की आजादी के लिए सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग अपनाने को तैयार थे।

कम्युनिस्ट पार्टी १९२१ मे बनी थी। उसने उसी वर्ष कॉग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन मे पर्चे बॉटे थे, जिनमे यह माँग की गई थी कि कॉग्रेस ट्रेड यूनियनो और किसान सभाओ की माँगो को अपने कार्यक्रम मे शामिल करे ताकि मेहनतकश जनता को आजादी की लडाई के लिए हरकत मे लाया जा सके। उभरते हुए कम्युनिस्ट तत्त्वो को कुचलने के लिए ब्रिटिश सरकार ने १९२४ मे कानपुर षड्यंत्र केस चलाया और कम्युनिस्ट नेताओ को लम्बी-लम्बी सजाएँ दी। इसके बावजूद उनकी शक्ति बढती रही। जनता मे अपने काम को फैलाने के लिए उन्होने १९२७ मे किसान-मजदूर पार्टी भी सगठित की। १९२९ तक उनका असर किसानो मे और विशेषकर मजदूर आदोलन मे बहुत बढ गया था। इसी कारण सरकार ने १९२९ मे उन्हे बडे पैमाने पर गिरफ्तार किया और मेरठ साजिश केस चलाया, लेकिन सरकार के इस दमन से उनका असर कम होने के बजाये बढता ही चला गया। यहाँ तक कि १९३४ मे आंदोलन

वापस लिये जाने पर जब सरकार ने कॉंग्रेस पर से रोक हटाई तो कम्युनिस्ट पार्टी पर रोक लगा दी। इसके बाद कम्युनिस्ट पार्टी आठ साल अर्थात् १९४२ तक गैर कानूनी बनी रही।

जवाहरलाल ने इस समय की स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लिखा है 'कम्युनिज्म के और समाजवाद के धुँधले-से विचार पढे-लिखे लोगो मे और समझदार सरकारी अफसरो तक मे फैल चुके है। कांग्रेस के नौजवान स्त्री और पुरुष जो पहले लोक-तत्र पर ब्राइस और मॉरले, कीथ और मैजिनी के विचार पढा करते थे, अब अगर उन्हे किताबें मिल जाती है तो कम्युनिज्म और रूस पर लिखा साहित्य पढते है। मेरठ-षड्यन्त्र-केस ने लोगो का ध्यान इन नए विचारो की तरफ फेरने मे बडी मदद दी और ससारव्यापी सकटकाल ने इस तरफ ध्यान देने की मजबूरी पेश कर दी। हर जगह प्रचलित सस्थाओ के प्रति शका, जिज्ञासा और चुनौती की नई भावना दिखाई देती थी।· ·"

और फिर

"हिन्दुस्तान के और बाहर के कट्टर कम्युनिस्ट पिछले कई बरसो से गाँधीजी और काँग्रेस पर भयकर हमले करते रहे है और उन्होने काँग्रेस नेताओ पर हर तरह की दुर्भावनाओ के आरोप लगाये है। काँग्रेस की विचारधारा पर उनकी बहुत-सी सैद्धान्तिक समालोचना योग्यतापूर्ण और स्पष्ट थी और बाद की घटनाओ से वह किसी अश तक सही भी साबित हुई।···"

आलोचना क्या थी, इसका भी अपने ढग से उल्लेख किया है :

"कम्युनिस्टो की राय के मुताबिक, काँग्रेस के नेताओ का मकसद रहा है, सरकार पर जनता का दबाव डालना और हिन्दुस्तान के पूँजीवादियो और जमीदारो के हित के लिए कुछ औद्योगिक और व्यापारिक सुविधाएँ पा लेना। उनका मत है कि काँग्रेस का काम है—"किसानो, निम्न-मध्य वर्ग और कारखानो के मजदूर-वर्ग के

आर्थिक और राजनैतिक असन्तोष को उभार कर बम्बई, अहमदाबाद और कलकत्ताके मिल-मालिको और लखपतियो को लाभ पहुँचाना।" यह खयाल किया जाता है कि हिन्दुस्तानी पूँजीपति टट्टी की ओट मे कांग्रेस कार्य-समिति को हुक्म देते है कि पहले तो वह सार्वजनिक आँदोलन चलावे और जब वह बहुत व्यापक और भयकर हो जाये, तब उसे स्थगित कर दे, या किसी छोटी-मोटी बात पर बद कर दे। और कांग्रेस के नेता सचमुच अग्रेजो का चला जाना पसद नही करते, क्योकि भूखी जनता का शोषण करने के लिए, आवश्यक नियत्रण करने को उनकी जरूरत है और मध्यम वर्ग अपने मे यह काम करने की ताकत नही मानता।" (मेरी कहानी)

अब यह देखिए कि कांग्रस और गाँधीजी के बारे मे अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आदोलन की राय क्या थी और स्वाधीनता-सग्राम के बारे मे उसने भारतीय कम्युनिस्टो को क्या सलाह दी थी।

तीसरी इटर नेशनल की छठी कांग्रेस १९२८ मे हुई। इसमे उपनिवेशो और अर्धोपनिवेशो के साम्राज्यवाद विरोधी आदोलनो का जायजा लेने के बाद दस्तावेज पास की गई थी, उसमे हिन्दुस्तान का विशेषरूप से उल्लेख करते हुए कहा गया था :

"कम्युनिस्टो को चाहिए कि हिन्दुस्तानी राष्ट्रीय कांग्रेस के राष्ट्रीय सुधारवाद को पूरी शक्ति के साथ बेनक़ाब करे और स्वराज्य पार्टी और गांधीजी के अनुयायियो के नारो का कडा विरोध करे और पूरी तीव्रता से यह नारा बुलद करें कि साम्राज्यवादियो को देश से निकाला जाय और मुकम्मिल आजादी हासिल की जाये।"

और कम्युनिस्टो को दो प्रकार के काम सुझाये थे :

"हिन्दुस्तानी कम्युनिस्टो का बुनियादी काम यह है कि देश की आजादी के लिए साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़े और सामतवाद के सारे अवशेषो को मिटाने के लिए सघर्ष करें। कृषि-क्रान्ति पूरी की

जाय और पचायती लोकतत्र स्थापित किया जाये, जिसमे सत्ता मजदूरो और किसानो के हाथ मे आय अर्थात इन दो वर्गो का अधिनायकत्व स्थापित किया जाय। यह काम सफलतापूर्वक तभी हो पाएगा, जब एक सशक्त कम्युनिस्ट पार्टी बनेगी जो मजदूरो, किसानो और तमाम मेहनतकश अवाम का नेतृत्व अपने हाथ मे लेगी और जो साम्राज्यवाद और सामतवाद के खिलाफ लडाई मे इन अवाम का नेतत्व करेगी।"

हिन्दुस्तानी कम्युनिस्टो ने तीसरी इटरनेशनल की इस सलाह पर चलते हुए गाँधीजी और काँग्रेस की सुधारवादी नीतियो की बडी आलोचना की और इसी कारण नमक सत्याग्रह मे भाग नही लिया। लेकिन यह तो इस सलाह का सिर्फ नकारात्मक पहलू था जबकि इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण धनात्मक पहलू यह था कि वे साम्राज्यवाद और सामतवाद के विरुद्ध मेहनतकश जनता के सशस्त्र सघर्ष चलाते और उनकी रहनुमाई करते। कम्युनिस्टो ने इस दिशा मे कुछ नही किया, हालाँकि १९३०-३४ के आन्दोलन ने इसके लिए एक अच्छा अवसर जुटा दिया था। जहाँ मेरठ-षड्यत्र केस के कारण जनता मे कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव बहुत बढ गया था, वहाँ दूसरी तरफ राष्ट्रीय आदोलन के साथ बार-बार की गद्दारी से मध्यमवर्ग के नौजवानो और बुद्धिजीवियो के गाँधीजी और काँग्रेस के बारे मे भ्रम दूर हुए थे। विश्वव्यापी मदी के कारण मेहनतकश जनता को सकट का सामना था, शहरो मे मजदूरो की बडी-बडी हडताले हो रही थी और किसानो मे अपने-आप लगान-बद आदोलन चल चुका था। जनता के इन सघर्षों पर काँग्रेस का और गाँधीजी का कोई नियत्रण नही रह गया था।

फिर कम्युनिस्ट पार्टी ने इतिहास का विश्लेषण करके मार्क्सवादी विचारधारा का सम्बन्ध भारतीय परम्परा से नही जोडा और वस्तुस्थिति का विश्लेषण करके यह नही बताया कि हम क्रान्ति की किस

मजिल मे है और हमे उसके लिए राष्ट्रीय जीवन के किन तत्वों का सहयोग प्राप्त करना है। सिर्फ गांधीजी और कांग्रेस की सुधारवादी नीतियो की अमूर्त आलोचना करके और समाजवाद का नारा हवा मे उछालकर तो बात नही बन सकती थी।

इसके बावजूद १९३४ के बाद देश मे अगर कम्युनिस्ट पार्टी का असर बढ़ा तो इसके भीतरी और बाहरी दो कारण थे।

भीतरी कारण ये थे कि सरकार के दमन और उसे अवैध घोषित करने से पार्टी की प्रतिष्ठा बढी। दूसरे, आतकवाद का युग अब समाप्त हो चुका था। बगाल की अनुशीलन और युगान्त्र के क्रान्तिकारी, भगतसिंह और आजाद के साथी और पजाब मे गदर पार्टी के बाबा जेलो से बडी तादाद मे मार्क्सवादी बनकर निकले और कम्युनिस्ट पार्टी मे भर्ती हो गये। उनका आम जनता मे बडा असर था। तीसरे ऐसे सच्चे कम्युनिस्टो की संख्या भी काफी थी, जो किसान-मजदूर आन्दोलन मे जी-जान से लगे हुए थे और हर तरह के दमन का मुकाबला बहादुरी से करते थे।

बाहरी कारण यह था कि रूस की अद्भुत सफलताओ और साम्राज्यवाद के विश्वव्यापी आर्थिक सकट के कारण कम्युनिज्म का प्रभाव दिन-दिन बढ रहा था। मेहनतकश जनता को तो इस ओर आकर्षित होना ही था, दुनिया भर के लेखक, विचारक और बुद्धिजीवी इससे बडी संख्या मे प्रभावित हो रहे थे। जर्मनी, इटली और जापान मे फासिस्ट शक्तियो के सिर उठाने मे भी कम्युनिस्ट विचारधारा को बल मिला था। सोवियत रूस की रहनुमाई मे साम्राज्यवाद विरोधी क्रान्तिकारी शक्तियो के विश्व मोर्चे की शक्ति और लोकप्रियता बढ रही थी। इससे भी कम्युनिस्ट पार्टी का असर बढा।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी १९३४ मे संगठित हुई। इसका सदस्य बनने के लिए साथ ही कांग्रेस का सदस्य बनना भी एक लाजिमी शर्त थी। इसका मतलब यह हुआ कि यह पार्टी कांग्रेस ही का एक

अग थी। इसका घोषित उद्देश्य तो वर्तमान व्यवस्था मे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना और समाजवाद कायम करना था; पर उसके दोहरे चरित्र के कारण मजदूर आन्दोलन की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती थी और उस पर कांग्रेस नेतृत्व का नियत्रण और अनुशासन कायम होता था। इससे कांग्रेस ही की तरह खुद इस पार्टी मे शुरू ही से बाम-पक्षी और दक्षिण-पक्षी दो ग्रुप बन गये थे। बाम-पक्षी ग्रुप कम्युनिस्ट पार्टी और मजदूर वर्ग की शक्तियो के साथ सहयोग का समर्थक था जबकि दक्षिण-पक्षी ग्रुप कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति घोर शत्रुता रखता था और मजदूर वर्ग के स्वतन्त्र सघर्षो के विरुद्ध था।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दक्षिण-पक्ष के बडे नेता श्री जयप्रकाश नारायण थे और उस समय वह कामरेड जयप्रकाश के नाम से मशहूर थे और गांधीजी ने उन्हे हिन्दुस्तान के 'लेनिन' की सज्ञा दी थी।

सरकारी दमन के बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी गैर कानूनी हालत मे भी सक्रिय रही और उसके सदस्य दूसरे जन-सगठनो और विशेषकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के जरिये काम करते रहे। लेकिन जयप्रकाश नारायण ने पार्टी के महासचिव की हैसियत से एक विज्ञप्ति निकाली कि कम्युनिस्टो और कम्युनिस्ट हमदर्दो को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से निकाल दिया जाय क्योकि वे गाँधीजी के अहिंसा के सिद्धान्त को नही मानते और वे बहुत ही गैर-जिम्मेदार लोग है। इससे खुद कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के लडाकू सदस्य अवैध कम्युनिस्ट पार्टी मे जा मिले।

यह था १९३४ के बाद उभरते हुए बाम-पक्ष का चित्र उसकी न विचारधारा स्पष्ट थी, न वह देश की वस्तुगत स्थिति से भली भाँति अवगत था और न आपस की एकता थी। इस पर उसे कांग्रेस के चालाक और अनुभवी बुर्जुआ नेतृत्व का मुकाबला करना था, जो न सिर्फ अपने आप मे मजबूत और सगठित था बल्कि विरोधीपक्ष मे भ्रम फैलाने और फूट डालने मे भी समर्थ था।

काँग्रेस का अगला अधिवेशन दिसम्बर १९३६ मे फैजपुर मे हुआ और जवाहरलाल ही को दूसरी बार भी अध्यक्ष बनाया गया। इस समय काँग्रेस के सामने मुख्य काम था अगामी वर्ष के चुनाव अभियान को सफल बनाना।

यह चुनाव इडिया ऐक्ट १९३५ के अनुसार लडा जा रहा था, जिसमे सिर्फ १२ प्रतिशत लोगो को वोट का अधिकार दिया गया था। लेकिन कॉग्रेस का उद्देश्य सिर्फ चुनाव लडना ही नही था बल्कि जनता से सम्पर्क स्थापित करके उसमे फिर से अपना असर कायम करना भी था। इसके लिए जवाहरलाल ने अनथक काम किया। दिल-दिमाग और जिस्म की सारी शक्तियाँ इसमे लगा दी। उन्होने तिब्बत की सीमा से लेकर बलूचिस्तान की सीमा तक हजारो मील का सफर किया और करोडो इन्सानो के सामने भाषण किया और ये भाषण अखबारों मे छपकर इससे भी कही अधिक लोगो तक पहुँचे। उन्होने चुनाव को विशेष महत्त्व नही दिया, महत्त्व दिया जनता से सम्पर्क बढाने को। खुद लिखा है :

"महत्त्व था हमारे मकसद का, उस सगठन का, जिसने इस मकसद को अपनाया था और उस कौम का, जिसकी आजादी का हमने बीडा उठाया था। मैं इस आजादी की व्याख्या करता और बताता कि मुल्क के करोडो लोगो पर इसका क्या असर होगा। हम गोरे रग के मालिको की जगह पर गेहुआ रग के मालिको को लाकर नही बिठाना चाहते थे। हम जनता की सच्ची हुकूमत चाहते थे, ऐसी जो जनता द्वारा और जनता के हक मे हो और जिससे हमारी गरीबी और मुसीबतें दूर हो जाएँ।"

यों उन्होने अपने भाषणो द्वारा नई चेतना का तकाज़ा पूरा किया इससे जनता मे कांग्रेस का और उनका निजी असर भी क़ायम हुआ और चुनाव मे भी भारी सफलता हुई। इसके परिणामस्वरूप जुलाई १९३७ मे ग्यारह सूबो मे से सात मे खालिस काँग्रेसी और

दो मे मिले-जुले मन्त्रिमडल बने । सिर्फ बगाल और पजाब ही दो सूबे ऐसे रह गये, जिनमे कांग्रेस मन्त्रिमडल नही बन पाये ।

पद-ग्रहण करने का फार्मूला गांधीजी ने तैयार किया था, जो कांग्रेस महासमिति के मद्रास अधिवेशन मे पास हुआ । वाम-पक्ष ने एक सशोधन द्वारा पद-ग्रहण का विरोध किया उनका कहना था कि मन्त्रिमडल बनाना साम्राज्यवाद के साथ सहयोग है, ये मन्त्रिमडल सरकार की दमन-मशीनरी का अग बन जायेगे और उन्ही के काम को जन-सघर्ष का बदल समझ लिया जायगा । उनका सशोधन १३५ के मुकाबले ७२ वोट से गिर गया ।

कांग्रेस मन्त्रिमडल दो साल अर्थात् १९३९ के विश्व युद्ध शुरू होने तक बने रहे जहाँ-जहाँ यह मन्त्रिमडल बने वहाँ तमाम राजनैतिक कैदी छोड दिये गये, प्रेस को अधिक स्वतन्त्रता मिली और कुछ सस्थाओ पर से रोक भी हटा ली गई । लेकिन असल समस्या तो मजदूरो किसानो की थी । इन दो सालो मे उनके आन्दोलनो ने बडा जोर पकडा । उनके सघर्षो मे कांग्रेस मन्त्रिमडलो ने जिन पर दक्षिण-पक्ष का प्रभाव था, मिल-मालिको और जमीदारो ही का साथ दिया ।

कांग्रेस ताजीराते-हिन्द की दफा १४४ (चार से अधिक आदमी इकट्ठे होने पर रोक) और १२४ (षड्यत्रकारी प्रचार पर रोक) का हमेशा से विरोध करती आई थी, क्योकि इनसे नागरिक अधिकारो का दमन होता है । अब कांग्रेस मन्त्रिमडलो ने इनका खुला इस्तेमाल शुरू किया । यहाँ तक कि "हिंसा का प्रचार" करने वालो को जेल मे डालना और उनके खिलाफ पुलिस को इस्तेमाल करना भी "अहिंसा" के लचकदार सिद्धान्त का अग मान लिया गया ।

सचमुच कांग्रेसी मन्त्रिमडल मजदूरो और किसानो के सघर्षो और वाम-पक्षी शक्तियो को कुचलने के लिए सरकार की दमनकारी मशीनरी का अग बन गये । उदाहरण के लिए जब बम्बई की ट्रेड

यूनियन कॉंग्रेस ने हडताल और ट्रेड यूनियन बन। अधिकार को सीमित कर देने वाले घृणित औद्योगिक विवाद अधिनियम (डिसपुट बिल) के विरोध मे बहुत बड़ी हड़ताल की तो पुलिस ने गोली चलाई, जिसमे बहुत-से मजदूर घायल हुए और एक की मृत्यु हुई।

इन कारणो से कॉंग्रेस मत्रिमडलो के विरुद्ध जनता का रोष बढ रहा था और दमन की इन नीतियो के लिए कॉंग्रेस हाई कमान को जिम्मेदार ठहराया जाता था, जिस पर दक्षिण-पथियो का कब्जा था।

१९३५ के एक्ट द्वारा ब्रिटिश पार्लमेंट ने जो विधान पेश किया था, कॉंग्रेस ने उसे नामजूर करते हुए कहा था कि हमे सिर्फ वही विधान मजूर होगा जिसे देश की जनता के बालिग मत द्वारा चुनी गई विधान परिषद (कांस्टीटुएट अम्सेबली) तैयार करेगी। सुभाष के नेतृत्व मे बाम-पक्ष यह मॉग करता आ रहा था कि विधान-परिषद प्राप्त करने के लिए जन-सघर्ष शुरू किया जाय, पर कॉंग्रेस हाई-कमान इसे टालता आया था।

अब विधान की समस्या पर १९३८ के दौरान कॉंग्रेस नेताओ ने ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियो के साथ व्यक्तिगत रूप से कई बार बातचीत की और यह अफवाह बड़े जोरो से फैली कि आपस मे कोई समझौता होने वाला है। इस पर बाम-पक्ष वाले चौंके और उन्होने कहना शुरू किया कि चाहे बाते बड़ी-बड़ी बघारी जाती है दरअसल हाईकमान आत्म-समर्पण करने जा रहा है।

जवाहरलाल की स्थिति बडी मुश्किल थी। वह सार्वजनिक भाषणो और वक्तव्यो मे वाम-पक्ष की बात कहते थे और कभी-कभी दबी जबान मे हाईकमान की नुक्ताचीनी भी कर देते थे। इससे उनके साथी नाराज होते थे। एक बार तो कार्यसमिति बनाने के दो-तीन महीने बाद ही बात यहॉं तक बढ गई थी कि राजेद्रप्रसाद जयरामदास दौलतराम, वल्लभभाई पटेल, सी० राजगोपालाचारी,

दिया। अंत में वाम-पक्ष पराजित हुआ और कांग्रेस का नेतृत्व गांधी जी को सौंप दिया गया।

सुभाष ने २७ मार्च १९३९ को जवाहरलाल के नाम एक लम्बा मार्मिक पत्र लिखा था, जो पुस्तक के २८ पृष्ठ पर फैला हुआ है। भारतीय राजनीति के हर एक विद्यार्थी को यह पत्र अवश्य पढ़ लेना चाहिए. हम उसकी यहां सिर्फ चंद पंक्तियां उद्धृत करते हैं।

"शायद तुम्हें याद होगा कि जब हम शान्तिनिकेतन में मिले थे तो मैंने सुझाया था कि अगर हमारी कोशिश के बावजूद हम कार्य-समिति के सदस्यों का सहयोग हासिल न कर सके तो हमको कांग्रेस को चलाने की जिम्मेदारी से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। उस समय तुम मुझसे सहमत हुए थे। बाद में, पता नहीं किन कारणों से, तुम मानो बड़ी बहादुरी से दूसरे पक्ष में जा मिले। बेशक, तुम्हें ऐसा करने का प्रत्येक हक़ हासिल था, किन्तु फिर तुम्हारा समाजवाद या वामवाद कहां गया?"

कथनी और करनी के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए यह बहुत बड़ा सवाल है। इस पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं।

१५ अगस्त

आखिर देश का विभाजन हुआ। १४ अगस्त १९४७ को मुहम्मदअली जिन्ना पाकिस्तान के पहले गवर्नर जनरल और १५ अगस्त को जवाहरलाल नेहरू हिन्दुस्तान के पहले प्रधान मत्री बने।
गाँधीजी की सुधारवादी नीतियो और सौदेबाजी का यह अनिवार्य परिणाम था। जन-सघर्षो को बार-बार टालने के बाद काँग्रेस नेताओं के पास देश की समस्या का और कोई हल नही रह गया था। उन्हे यह कड़वा घूँट अपनी इच्छा के विरुद्ध पीना पडा।

इस कडुवे घूँट को—इस समझौते को, बडे धूम-धडक्के से आजादी की संज्ञा दी गई। लेकिन आजादी जो मिली उसे हमने पिछले बीस-बाईस वर्ष मे अच्छी तरह देख-परख लिया है। उम्मीदे जो बधाई गई थी, उन पर ओस पड गई और जनता ने जो सपने सँजोये थे, वे धूल मे मिल गये।

१४ और १५ अगस्त की दरम्यानी रात को १२ बजे से कुछ क्षण पहले जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय समद मे घोपणा की थी :

"बहुत बरस हुए हमने भाग्य से जो वक्त मकर्रर किया था, वह अब आ गया है, जब हम अपनी प्रतिज्ञा को यदि पूरी तरह नही तो भी बहुत हद तक पूरा करेगे।"

और इस प्रतिज्ञा को यो दोहराया था :

"जब आधी रात का घटा बजेगा और दुनिया सोती होगी,

तव भारत स्वतंत्र होकर नई जिन्दगी हासिल करेगा । इतिहास मे ऐसा क्षण कभी-कभी ही आता है जब हम प्राचीनता से नवीनता की तरफ क़दम उठाते हैं। जब एक ज़माना खत्म होकर लम्बे अर्से से दबाई गई राष्ट्र की आत्मा मुखरित होती हैं । ऐसे गम्भीर मौके पर हम भारत, भारत की जनता और उनसे भी बढकर मानवता की सेवा के लिए सब कुछ न्यौछावर करने की प्रतिज्ञा करते है । यह भविष्य आराम और विश्राम का नही वरन् अनेक बार ली गई प्रतिज्ञाओ और आज ली जाने वाली प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए लगातार कोशिश करने का है । भारत की सेवा का मतलब करोडो पीड़ितो की सेवा का है। इसका मतलब है गरीबी, अशिक्षा और अवसर की असामानता का खात्मा । हमारी पीढी के सबसे बडे आदमी की आकाक्षा थी कि हर आँख का आँसू पोछ दिया जाय । शायद यह हमारी ताकत के बाहर हो, लेकिन जब तक आँसू और वेदना रहेगी हमारा काम पूरा नही होगा । जिस भारतीय जनता के हम नुमाइदे हैं, उससे हम अपील करते हैं कि वह हमे विश्वास और भरोसे के साथ इस महान् कार्य मे सहयोग दे । यह वक्त ओछी और नुकसान-देह आलोचना का नही है और न दूसरो की बुराई और नुकताचीनी का । हमे स्वतत्र भारत की ऐसी आलीशान इमारत बनाना है, जिसमे भारत के हर बच्चे के रहने की जगह हो ।"

कैसे सुन्दर लफ्ज़ है । पढते जाइये और बोलने वाले को जी भरकर दाद देते जाइये । जवाहरलाल नेहरू और सभी गांधीवादी इसी अल्फाज़ो से बहलाते-बहकाते और भारतीय जनता की ही नही समूची मानवता की सेवा की डीग हांकते आये हैं । लेकिन इस बीस-बाईस साल के अर्से मे हम देख चुके हैं कि आंसू पुछे नही वल्कि लोगो की आँखें आज आंसुओ से ज्यादा तर हैं और वेदना कम होने के बजाय और बढी है, यहाँ तक कि बर्दाश्त से बाहर हो गई है ।

ऐसा क्यो हुआ ?

इस सवाल का सही जवाब पाने के लिए 'प्राचीनता से नवीनता' की तरफ उठाये गये इस कदम को—१५ अगस्त के समझौते को समझना होगा, जिसका नाम आजादी रखकर हमे धोखा दिया गया। समझना इसलिए जरूरी है कि हम कही आइन्दा भी सुन्दर लफ्जो द्वारा ठगे न जाये।

२६ जुलाई १९२० को कम्युनिस्ट इटरनेशनल की दूसरी कॉंग्रेस मे राष्ट्रीय और औपनिवेशिक मामलो के कमीशन की रिपोर्ट मे लेनिन ने कहा था·

"... हमे कम्युनिस्ट होने के नाते, उपनिवेशो मे बूर्जुआ स्वतत्रता आन्दोलनो का तभी समर्थन करना चाहिए और हम तभी समर्थन करेगे भी, जब वे वास्तव मे क्रान्तिकारी हो और उनके प्रतिनिधि क्रान्तिकारी भावना से कृषको और शोषित जनता को प्रशिक्षित करने के हमारे कामो मे बाधा न डाले। यदि यह परिस्थिति नही पाई जाती तो इन देशो के कम्युनिस्टो को सुधारवादी बुर्जुआ के विरुद्ध सघर्प करना चाहिए, जिसके अतर्गत दूसरी इटरनेशनल के नायक भी आते है। औपनिवेशिक देशो मे सुधारवादी पार्टियाँ पहले ही से मौजूद है। कभी-कभी तो उनके प्रतिनिधि अपने को सामाजिक जनवादी और समाजवादी भी कहते है।"

उपनिवेशो मे बुर्जुआ सुधारवादी आन्दोलन साम्राज्यवाद खुद चला देता है ताकि शोषित, पीडित जनता को क्रान्ति के पथ पर चलने से रोका जा सके और सुधारवादी आन्दोलन के जरिए अपने ही ढग के बुर्जुआ नेता तैयार किये जाये।

हमारे देश मे भी ब्रिटिश साम्राज्यवादियो ने इसी नीति को अपनाया। हमने देखा कि नेशनल कॉंग्रेस खुद अग्रेजो ने सगठित की थी। बीस साल तक वह नौकरियो के "भारतीयकरण" के प्रस्ताव पास करती रही। इसके बाद जब उसने क्रान्तिकारी रूप धारण करना शुरू किया और अग्रेजो ने देखा कि अब बुर्जुआ वर्ग भी सिर्फ प्रस्ताव

पास करके सतुष्ट नही रह सकता तो उसने १९०९ मे सुधारो के नाम पर पहला टुकडा फेका। माडरेटो का एक बडा गिरोह बडी तेजी से इस टुकडे की तरफ लपक गया। सर आगाखाँ के नेतृत्व मे मुस्लिम लीग का एक प्रतिनिधिमडल वायसराय से मिला और कहा कि इस टुकडे मे हमारा भाग मुकर्रर कर दिया जाय वरना यह सारे-का-सारा हिंदू खा जाएँगे। हमारे हाथ कुछ नही लगेगा।

अग्रेजो ने मुसलमानो को पृथक् प्रतिनिधित्व का अधिकार दे दिया और राष्ट्रीय आन्दोलन मे साम्प्रदायिक फूट की नीव डाल दी।

युद्ध के बाद १९१९ मे देश की राजनीति मे जब फिर क्रान्तिकारी उभार आया तो अग्रेजो ने फिर दूसरा टुकडा सुधारो के नाम पर फेंका। बहुत-से बुर्जुआ कॉग्रेसी नेता फिर इसकी ओर लपके। खुद गांधीजी ने, उन्हे अँग्रेज की नेकनीयती का सबूत मानकर, कांग्रेस को उन्हे सफल बनाने का मशविरा दिया था।

मुसलमानो ने अपना हिस्सा पहले ही, अलग बँटवा लिया था, अब पजाब मे सिखो ने माँग की कि इस टुकडे मे हमे भी हमारा हिस्सा अलग बाँटकर दे दिया जाय क्योकि हिन्दु और मुसलमान दोनो बडे भाइयो से हमारी पट्टी नही बैठती। अग्रेजो ने सिखो का हिस्सा भी अलग कर दिया। हमारी राष्ट्रीयता बराबर खडित होती रही।

१९३०-३४ के लम्बे सघर्ष के बाद अग्रेज ने तीसरा बडा टुकडा फेका। इसके लिए कॉंग्रेस ने रद्द और कबूल की दोहरी नीति अपनाई और धीरे-धीरे मन्त्रिमण्डल बनाकर कुर्सियो पर जा बैठी। इन मन्त्रिमण्डलो के कारनामो की हम एक झलक देख चुके है। लेकिन साम्राज्यवादी औपनिवेशिक ढाँचे मे पद ग्रहण करने का एक दूसरा पहलू भी है। जवाहरलाल के अपने शब्दो मे, "फिरकावार सवाल पर उसका बहुत बुरा असर पडा और उसकी वजह से बहुत-से मुसलमानो मे शिकायत और अलहदगी का सवाल पैदा हुआ। इससे बहुत-से प्रतिक्रियावादी तत्त्वो ने फायदा उठाया और उन्होने

कुछ खास गिरोहो मे अपनी स्थिति मजबूत कर ली ।"

(हिन्दुस्तान की कहानी)

मुस्लिम लीग कुछेक सालो ही मे इतना जोर पकड गई कि उसने १९४० मे बाकायदा प्रस्ताव पास करके पाकिस्तान की माँग पेश कर दी । भौगोलिक, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से यह माँग एकदम अव्यावहारिक और हास्यास्पद जान पड़ती थी । गाँधीजी ने कहा था कि अगर पाकिस्तान बना तो वह मेरी लाश पर बनेगा । सत्यवादी हरिश्चद्र के अवतार गाँधीजी ने तो यह भी कहा था कि अगर ३१ दिसम्बर १९२१ तक स्वराज्य न मिला तो आप मुझे जीवित नही पायेगे ? लेकिन कहने-भर से क्या होता है ? आखिर पाकिस्तान बना और गाँधीजी के आशीर्वाद से कॉग्रेस ने उसे स्वीकार किया ।

दरअसल यह आजादी नही १९३५ के ऐक्ट के बाद यह सुधारो की चौथी और आखिरी किश्त थी, जो १९४६ के क्रातिकारी उभार के दवाब तथा युद्ध मे अपनी कमर टूट जाने के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद को देनी पडी और जान की जगह गोविंद को गद्दी पर विठा दिया गया ।

हम अगर जान की जगह गोविंद को गद्दी पर बिठाने की प्रक्रिया को भी देख ले तो स्थिति स्पष्ट हो जायेगी ।

इण्डियन सैंट्रल लैजिस्लेटिव असेम्बली मे यूरोपियन ग्रुप के नेता पी० जी० ग्रिफिथ्स ने २४ जून १९४७ को अपने भाषण मे कहा था : "बहुत से लोगो का मत है कि ब्रिटिश कैबिनेट मिशन के आने से पहले हिन्दुस्तान क्रान्ति के कगार पर खडा था । कैबिनेट मिशन ने अगर इस खतरे का अन्त नही किया तो इसे टाल अवश्य दिया है ।"

१९४६ का क्रान्तिकारी उभार न सिर्फ ब्रिटिश साम्राज्यवादियो के लिए वल्कि हमारे अपने देश के इजारेदार पूजीपतियो और

सामतवादी तत्त्वो के लिए भी, जबर्दस्त खतरा था और उसे टालने मे कॉंग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओ ने जनता की आँखो मे धूल झौक और ब्रिटिश सरकार को पूरा सहयोग दिया।

अब इसी बात के दूसरे पहलू यानी युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार की अपनी स्थिति क्या थी, उसे भी देखिए। ५ मार्च १९४७ को स्टेफर्ड क्रिप्स ने ब्रिटिश पार्लियामैण्ट मे कहा था कि ब्रिटिश सरकार के समक्ष दो ही विकल्प है (१) सेना की शक्ति मे बहुत अधिक वृद्धि करके हिन्दुस्तान मे अपना प्रत्यक्ष शासन बनाये रखे अथवा (२) १९४७ के निर्णय के अनुसार राजनीतिक सत्ता हस्तातरित कर दे। फिर उसने स्वीकार किया कि ब्रिटिश सरकार सेना के बल से प्रत्यक्ष शासन "बनाये रखने मे समर्थ" नही है। अतएव उसने देश का बँटवारा करके दोनो तरफ बडे पूँजीपतियो और सामतवादी तत्त्वो के हाथ मे राजनीतिक सत्ता सौप दी अर्थात जान की जगह गोविन्द को गद्दी पर बिठा दिया। प्रशासन का स्वरूप वही रहा, ये दोनो शोषक वर्ग जन-क्रान्ति को खून मे डुबोने और साम्राज्यवाद के हितो की रक्षा करने के लिए उसके छोटे हिस्सेदार बन गये।

यह वर्ष गाँधी जन्म-शताब्दी का है, जिसकी तैयारी पिछले साल ही शुरू हो गई थी। इस सिलसिले मे डा० राधाकृष्णन् ने "महात्मा-गाँधी—१०० वर्ष" नाम की एक पुस्तक सम्पादित की है, पुस्तक मे एक लेख ब्रिटिश प्रधान मत्री हेरल्ड विलसन का भी है। उसने लिखा है :

"महात्मा गाधी द्वारा अहिसा पर जोर देने के कारण दोनो पक्ष की सहमति से भारत को आजादी मिली। न किसी मे विजय की भावना थी और न पराजय की। ब्रिटेन भी इस निर्णय से सतुष्ट था और राष्ट्रमण्डल मे एक नए बडे सदस्य का स्वागत करने को उत्सुक था। यह सब भारत के राष्ट्रपिता के कारण हुआ, जिसने २० वर्ष पहले पहली बार हमारे देश की यात्रा की थी और हमे भली प्रकार

समझा था। भारत ब्रिटेन मैत्री की जो सुदृढ नीव उन्होने डाली है, उसके लिए हम अपने देश मे उनके आभारी और ऋणी है।"

ब्रिटिश पत्रकार तथा लेखक एडवर्ड टामसन से जवाहरलाल नेहरू का घनिष्ठ सबध रहा है। उन्होने २ जनवरी १९३७ को "न्यूज क्रानिकल मे नेहरू से अपनी एक भेट प्रकाशित की थी, जो १८३५ के इडिया ऐक्ट के बारे मे थी। लेख यो शुरू होता है :

"नेहरू के चरित्र के मेरे अध्ययन से मुझे लगा कि उनकी रुचि मुख्य रूप से हिन्दुस्तान को "साम्राज्य" से स्वतत्र कराने मे नही है।

"अगर उन्हे यह विश्वास हो जाय कि साम्राज्य वास्तव मे बराबरी के राष्ट्रो का एक परिवार है, जिसके अलग-अलग सदस्यो को अपने विचारो को रखने का पूरा अवसर हो, तो वह इस बात पर राज़ी हो जाएँगे कि हिन्दुस्तान इन राज्यो मे से एक रहे।"

(कुछ पुरानी चिट्ठियाँ)

जिस तरह ससदीय प्रणाली की तीसरी किश्त के रूप मे ब्रिटिश पार्लमेंट ने १९३५ का इडिया ऐक्ट पास किया और उसमे अपने स्थापित स्वार्थों को सुरक्षित रखा था उसी तरह ब्रिटिश पार्लमेंट की १९४७ की फरवरी घोषणा से बदनाम 'माउट बेटन समझौते' का जन्म हुआ जिसके द्वारा भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के परिवार का, राष्ट्र मडल का एक सदस्य बना दिया गया। इस घोषणा मे यह चेतावनी दी गई थी कि भारतीय विधान-परिषद् द्वारा जो विधान तैयार किया जायगा ब्रिटेन को वह तभी स्वीकार होगा जब वह कैबिनेट मिशन योजना मे दर्ज "प्रस्तावो के अनुसार बनाया जायेगा"।

अतएव इस हिदायत पर अमल किया गया और २६ जनवरी १९५० को विधान परिषद् द्वारा हमे जो विधान दिया गया वह ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा पास किये गए १९३५ के इडिया ऐक्ट ही का वृहद् रूप है। राष्ट्रपति द्वारा देश के "गणतंत्र" घोषित किये जाने के बाद भी 'आजाद' हिन्दुस्तान ब्रिटिश ताज का वफादार है और हम जैसे

१९४७ से पहले ब्रिटिश इम्पीरियल मैजिस्टी की रैयत थे, वैसे ही अब भी रैयत है।

इस विधान द्वारा जो 'स्वतत्र' गणतत्र राज्य अस्तित्व मे आया है वह देश मे लगी ब्रिटिश या कोई भी विदेशी पूंजी ज़ब्त कहने मे असमर्थ है। सविधान के बुनियादी अधिकारो मे एक धारा है, जो उचित मुआवज़ा दिये बिना इस ज़ब्ती की मनाही करती है। यह धारा और बहुत-सी धाराओ की तरह १९३५ के इडिया ऐक्ट से ली गई है ।

प्रधान मत्री जवाहरलाल नेहरू ने १७ फरवरी १९४८ को अर्थात् सविधान बनने से दो साल पहले ही घोषणा की थी, "आर्थिक ढांचे मे कोई अकस्मात परिवर्तन नही होगा। जहाँ तक सभव हो सकेगा वर्तमान उद्योगो का राष्ट्रीयकरण नही होगा" अप्रैल मे रियूटर ने अपने विश्वस्त-सूत्र से समाचार दिया, "भारत सरकार की औद्योगिक तथा आर्थिक नीति ने वर्तमान उद्योगो के बडे पैमाने के राष्ट्रीयकरण को आइन्दा दस साल के लिए रद्द कर दिया है।" पाँच दिन बाद जो नीति प्रकाशित हुई, उसने इस समाचार का समर्थन किया।

दस साल क्या बीस-बाईस साल हो गये आज तक कोई ऐसा कदम नही उठाया गया और न आगे उठाये जाने की सम्भावना है।

१८४७ मे कम्युनिस्ट लीग की दूसरी बैठक मे मार्क्स ने राज्य के बारे मे अपना थीसस पेश करते हुए कहा था, "राज्य न तो वर्ग-समाज को नियत्रित करता है और न उसकी विशिष्टताओ को निर्धारित करता है बल्कि यह वर्ग-समाज है जो राज्य को नियत्रित और उसकी विशिष्टताओ को निर्धारित करता है। इसलिए राजनीति और राजनीतिक विकास के इतिहास की समीक्षा आर्थिक विकास के प्रकाश मे होनी चाहिए न कि इसके विपरीत।"

१९४७ के इस समझौते से हमारे समाज के वर्ग सबधो मे या आर्थिक ढांचे मे कोई बुनियादी परिवर्तन नही आया इसलिए राज्य का स्वरूप भी वही रहा जो इससे पहले था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा

सगठित घृणित औपनिवेशिक दमनकारी सरकारी मशीनरी भी ज्यो-की-त्यो बनी रही। इसकी जो विशिष्टताएँ है उन पर जवाहरलाल ने "मेरी कहानी" के "ब्रिटिश शासन का कच्चा चिट्ठा" परिच्छेद मे यो प्रकाश डाला है :

"हिन्दुस्तान मे अग्रेजो ने अपने शासन का आधार पुलिस-राज्य की कल्पना पर रखा है। शासन का काम तो सिर्फ सरकार की रक्षा करना था और बाकी सब काम दूसरो पर थे। उसके सार्वजनिक राजस्व का सबध फौजी खर्च, पुलिस, शासन-व्यवस्था और कर्जे के ब्याज से था। नागरिको की आर्थिक जरूरतो पर कोई ध्यान नही दिया जाता था और वे ब्रिटिश हितो पर कुर्बान कर दी जाती थी।" और "उसकी कर-प्रणाली अत्यन्त प्रगति-विरोधी थी, जिसके द्वारा अधिक आमदनी वालो की बनिस्बत कम आमदनी वालो से अनुपात मे अधिक कर वसूल किया जाता था और रक्षा और शासन के कामो पर उसका इतना अधिक खर्च था कि यह करीब-करीब सारी आमदनी को चट कर जाता था।"

यह निरकुश शासन स्थायी सेनाओ और इन्तजामी महकमो पर निर्भर था। सिविल सर्विस जो इन सेनाओ और महकमो का विशेष अग थी, उसके बारे मे जवाहरलाल ने लिखा है.

"सिविल सर्विस की एक खास शोहरत थी, जिसे खुद उसने फैला रखा था, यानी यह कि वह बहुत कार्य-कुशल है। लेकिन यह बात साफ हो गई कि उस सँकरे दायरे के अलावा, जिसके लिए वह अभ्यस्त थी, वह बेबस और निकम्मी थी। लोकतत्री ढग से काम करने की उसको शिक्षा नही मिली थी और उसको जनता का सहयोग और उसकी सद्-भावनाएँ नही मिल सकती थी और साथ ही उसे जनता से डर भी था और नफरत भी थी। सामाजिक प्रगति की तीव्रगामी बड़ी योजनाओ का उसको कोई अन्दाज़ नही था और वह अपनी कल्पनाहीनता और अपने साहबी ढग से उनमे सिर्फ अड़चन ही डाल सकती थी।"

(हिन्दुस्तान की कहानी)

जवाहरलाल ने यह सब उस अनुभव के आधार पर लिखा है जो १९३७ मे काग्रेस मन्त्रिमडल बन जाने से हासिल हुआ था। लेकिन सवाल यह है कि क्या १५ अगस्त १९४७ के बाद शासन-प्रणाली मे कोई अन्तर आया ? क्या अब भी रामराज्य के नाम पर पुलिस-राज्य स्थापित नही है ? क्या अब भी सिविल सर्विस उसकी धुरी नही है ? क्या उसे अग्रेजो के चले जाने मात्र ही से लोकतत्री ढग की शिक्षा मिल गई ? क्या इस सिविल सर्विस के रहते समाजवाद के निर्माण की बात करना निरा ढोग नही है ? क्या सार्वजनिक औद्योगिक क्षेत्र का, पचवर्षीय योजनाओ का और डैमो आदि के निर्माण का सारा इन्तजाम इसी सिविल सर्विस के हाथ मे नही है ? उसके रहते नौकरशाही, भ्रष्टाचार और असफलता की शिकायत क्यो ?

यह थी शासन-प्रणाली और सिविल सर्विस जो काग्रेसी शासको को ब्रिटिश साम्राज्य से विरासत मे मिली। अब खुद काग्रेसी नेताओ और मत्रियो के आचरण पर भी एक दृष्टि डाल लीजिए।

१९२४ मे स्वराज्य पार्टी ने चुनाव जीते तो मोतीलाल नेहरू के कडे अनुशासन और गरजने-चिल्लाने के बावजूद बहुत-से काग्रेसियो ने पदो के लालच मे दल-बदलकर ब्रिटिश सरकार मे सहयोग किया था।

१९३७ मे कागेस ने प्रान्तो मे मन्त्रिमडल बनाये तो बडे जोर-शोर से प्रचार किया गया कि जनता पर प्रशासन का बोझ कम करने के लिए काग्रेस मत्री आदर्श उदाहरण बनेगे और वे सिर्फ पाँच सौ रुपये मासिक वेतन मे गुजारा करेगे। इस सबध मे एडवर्ड टामसन ने २ जनवरी १९३८ को जवाहरलाल के नाम अपने खत मे लिखा था

"मुझे यह पढकर बेहद खुशी हुई थी और उत्साह मिला था कि काग्रेसी मत्री सिर्फ पाँच सौ रुपया मासिक वेतन ले रहे है और—यद्यपि जीवन मे अनेक भ्रम होते है, मुझे यह सुनकर बडा दु ख पहुँचा कि मत्रियो का यह त्याग अधिकतर मिथ्या है, क्योकि बाकी का वेतन वे "भत्तो" के रूप मे ले लेते है। अगर यह सच है तो काग्रेस को इसमे

इतना बड़ा नुकसान पहुँचेगा, जितना कि किसी भी सरकार की कार्र-वाई से नही पहुँच सकता।..."

इन मन्त्रिमडलो का जो सामूहिक वर्ग चरित्र था उसके बारे मे पहले लिखा जा चुका है। २५ नवम्बर १९३७ को गोविंद वल्लभ पन्त के नाम लिखे जवाहरलाल नेहरू के खत की ये पंक्तियाँ भी देखिए :

"मैं आज आसाम के लिए रवाना हो रहा हूँ और दिसम्बर के मध्य से पहले लौटने की सम्भावना नही है। जाने से पहले आपको लिखना और बताना चाहता हूँ कि जहाँ तक कांग्रेस मन्त्रिमडलो का सम्बन्ध है, सारे हिन्दुस्तान मे घटनाएँ जिस ढग से हो रही है, उससे मुझे बडी तकलीफ हुई है।...यदि मै पारिभाषिक भाषा मे कहूँ तो कांग्रेस मन्त्रिमडलो की वृत्ति क्रान्ति विरोधी हो रही है। अलबत्ता यह जान-बूझकर नही किया जा रहा है, लेकिन जब चुनाव करना पडता है तो झुकाव इस तरफ को है। इसके अलावा आम रवैया जड है। हम जड नही बन सकते, क्योकि इसका मतलब यह हो जाता है कि हम केवल पिछली सरकारो की परम्परा को छोटे-मोटे फर्क के साथ निभा रहे हैं।..."

बात सोच नही सकते ।

जवाहरलाल १५ अगस्त १९४७ से २७ मई १९६४ मे अपनी मृत्यु तक देश के प्रधान मत्री रहे। उनकी तानाशाही की शिकायतें तो बहुत सुनने मे आई, पर उनकी ईमानदारी पर कभी किसी ने शक नही किया। वह वाकई बडे ईमानदार थे, लेकिन हमे यह नही भूलना कि वे किस वर्ग के प्रति ईमानदार थे। अगर गाँधीवाद के अथवा अँधी श्रद्धा के सूक्ष्म दबाव ने दिमाग को कुठित नही कर दिया है तो सोचिए कि आजादी के नाम पर औपनिवेशिक शासन-प्रणाली को स्वीकार करना कहाँ की ईमानदारी थी ?

भ्रष्टाचार और जन-विरोध के बहुत-से सूक्ष्म रूप होते हैं, जो छोटी-छोटी घटनाओ का विश्लेषण कर लेने से सहज मे समझे जा सकते है। जवाहरलाल कांग्रेस को और गाँधीजी को क्रान्तिकारी सिद्ध करने के लिए हमेशा माडरेटो पर बरसा करते थे। एक बार उनकी सरकार परस्ती की निन्दा करते हुए लिखा था :

"श्री शास्त्री (श्री निवास शास्त्री) राजदूत बन गये और सर तेज बहादुर सप्रू ने १९२३ मे लदन मे होने वाली इम्पीरियल कॉन्फ्रेन्स मे बडे गर्व के साथ कहा था कि मैं अभिमान के साथ कह सकता हूँ कि वह मेरा ही देश है, जो साम्राज्य को साम्राज्य बनाये हुए है।"

(मेरी कहानी)

प्रधानमत्री बनने पर जवाहरलाल नेहरू ने इन्ही सर तेजबहादुर सप्रू के स्मारक के तौर पर नई दिल्ली मे सप्रू हाऊस का निर्माण किया। क्यो किया ? अगर इसे उदारता समझा जाये तो यह उदारता उस व्यक्ति के प्रति थी जिसने देश के शत्रु साम्राज्य की सेवा के लिए जीवन अर्पित किया। क्या इससे यह सिद्ध नही हो जाता कि जवाहरलाल नेहरू किस हैसियत मे प्रधानमत्री थे ?

जवाहरलाल का कमाल यह था कि उन्होंने अपनी इस हैसियत को जनता की दृष्टि से छिपाये रखा। वह उसे बडी-बडी बातो और सुन्दर

शब्दो से बहलाते-बहकाते रहे और समाजवादी समाज के निर्माण और पचवर्षीय योजनाओ द्वारा समृद्धि लाने के सब्ज बाग दिखाते रहे। धर्म निरपेक्षता और तटस्थता के नारे तले राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावाद की सेवा करते और जनादोलनो को खून मे डुबोते रहे और इसके बावजूद देशभक्त और समाजवादी बने रहे।

धोखा देने की अपनी इस कला के कारण ही, जिसे नेहरू कैम्ब्रिज से सीखकर आये थे, उन्हे गांधी का लाड प्राप्त था और उन सब राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी तत्त्वों का लाड प्राप्त था, गांधी अपने सत्य और अहिसा द्वारा जिनके स्थापित स्वार्थों की रक्षा करते थे। यह लाड इतना अधिक था कि नेहरू अपने को बुढापे मे भी जवान महसूस करते रहे और इस लाड के पीछे जो राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय सगठित प्रचार था उसने उन्हे समूचे राष्ट्र के लिए उसी तरह "चाचा नेहरू" बना दिया जिस तरह गांधी को "राष्ट्र पिता" बनाया था।

कुछ लोगो को यह शिकायत रही कि इस अधिक लाड ने नेहरू को बिगाड दिया है, उन्हे स्वभाव ही से चिढचिढा बना दिया है और उनसे तानाशाह बनने की प्रवृत्ति पैदा कर दी है। यह शिकायत दुरुस्त है; पर इसमे लाड के अलावा नीत्शे के दर्शन का भी दखल था। गांधी की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी की हैसियत से अतिमानव का पद विरासत मे मिला। प्रधानमत्री के पद के साथ-साथ वह अब अतिमानव के पद पर भी आसीन हुए और मरते दम तक आसीन रहे। अपनी इस दोहरी हैसियत मे वह कांग्रेस के सर्वे-सर्वा थे, अति शक्ति-

अतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद के साथ-साथ अतर्राष्ट्रीय सशोधनवाद का भी लाड-प्यार प्राप्त हो गया। इससे यह कद और बढा और नेहरू मे अह की प्रवृत्ति और बलिष्ठ हुई।

आखिर यह 'अह' हिमालय से जा टकराया और चूर-चूर हो गया।

चीन के साथ युद्ध मे उन्हे जो आघात पहुचा, वह जान लेवा साबित हुआ।

जिस राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सगठित प्रचार ने जवाहरलाल नेहरू को 'चाचा नेहरू' बनाया, उसी सगठित प्रचार ने जनता मे यह भ्रान्ति फैलाई कि कम्युनिस्ट चीन ने मित्र-द्रोह किया और "हिन्दी-चीनी भाई-भाई का नारा" बुलन्द करने वाले जवाहरलाल नेहरू की पीठ मे छुरा घोपा। पर हकीकत यह है कि जवाहरलाल नेहरू ने प्रधानमत्री की अपनी जिस हैसियत को जनता पर अन्त समय तक जाहिर नही होने दिया, चीन के साथ युद्ध उनकी इसी हैसियत से पैदा हुआ।

याद होगा १९३६ मे जवाहरलाल नेहरू को काग्रेस का अध्यक्ष बनाकर यह काम सौपा गया था कि वह राजेन्द्रप्रसाद, वल्लभभाई पटेल, राजगोपालाचारी, आदि प्रतिक्रियावाद के प्रतिनिधि गाँधी-वादियो की समाजवादियो के हमलो से रक्षा करे। उसी तरह उन्हे प्रधानमंत्री की हैसियत से अब यह काम सौपा गया कि वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावाद की जिसके नेता अमरीकी साम्राज्य-वाद और रूसी सशोधनवाद हैं, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति-कारी शक्तियो से जिनका नेता इस समय कम्यूनिस्ट चीन है, रक्षा करे। यह काम जवाहरलाल और उनकी सहायक शक्तियो के बूते से बाहर था। अतएव चीन के साथ युद्ध मे जो पराजय हुई उससे जवाहरलाल नेहरू को व्यक्तिगत रूप से जो आघात पहुँचा, वह बाद मे पक्षाघात बन गया और इसी से २७ मई १९६४ को इस दोहरे चरित्र की लम्बी कहानी का दुखद अन्त हुआ।

मौत के बाद

भ्रम पालना और भूलो को दोहराना मौत है। भूलो को सुधारना और ताजादम होकर आगे बढना जिन्दगी है।

प्रधानमत्री, उप प्रधानमत्री और सारे-का-सारा शासक वर्ग बड़े ज़ोर-शोर से यह बात कहता और सार्वजनिक रूप से प्रतिज्ञा धारण करता है कि हमे जवाहरलाल के पद-चिह्नो पर, उनकी नीतियो पर चलते हुए देश को महान् बनाना है।

इसका एकमात्र उद्देश्य यह है कि अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए जनता को भ्रम मे रखा जाये। वरना आज देश के सामने जिन विकट समस्याओ का अम्बार लगा हुआ है वे हमे जवाहरलाल नेहरू से विरासत मे मिली हैं। वे उन्ही की नीतियो का नतीजा है। दरअसल ये नीतियाँ भी उनकी अपनी नही बल्कि उन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय शोषक वर्ग की नीतियाँ हैं जिनके स्थापित स्वार्थों की रक्षा के लिए उन्हे प्रधानमंत्री और 'महान' नेता बनाया गया था।

इन नीतियो के कारण हमारा यह प्राचीन देश बौना, भिखारी और मोहताज बना हुआ है। हर तरफ डर, भय और निराशा छाई हुई है। पचास करोड़ जनता के इस विशाल देश का दुनिया मे ज़रा भी आदर-सम्मान नही है। अंग्रेज साम्राज्यवादियो के पूंजीगत हित तो सुरक्षित रहे ही, अमरीका, संशोधनवादी रूस, पश्चिम जर्मनी और जापान आदि के लिए भी दरवाज़े खुल गये हैं कि वे बिड़ले, टाटो के

साथ सांझे मे रुपया लगाये, कांग्रेस की गेहुएँ रग की सरकार उनकी पूंजी और मुनाफो की रक्षा करेगी। इसी का नाम नवोपनिवेशवाद है जो साम्राज्य की दासता का आधुनिकतम रूप है। दासता के इस रूप मे शोषक वर्गो की देसी सरकार न सिर्फ विदेशी पूंजी और मुनाफे की रक्षा करती है बल्कि इस पूंजी और मुनाफे को बढाने के आदेश को भी उसी तरह मानती है जिस तरह कर्ज से दबा हुआ बेचारा दरिद्र किसान अपनी खून-पसीने से उगाई हुई जिस के दर के बारे मे साहूकार के आदेश को मानता है। इसी आदेश से हमारे रुपये का अवमूल्यन हुआ, जिससे विदेशी पूंजी और मुनाफा छू मत्र से बढ गया और इधर महँगाई देखते-ही-देखते आकाश को छूने लगी।

इन नीतियो से मुट्ठी भर करोडपति चाहे अरबपति बन गये, पर इनसे आम जनता की तो गरीबी ही बढी है और उसकी हालत बद-से-बदतर होती चली जा रही है। वह यह कैसे बर्दाश्त कर लेगी कि देश अब भी इन्ही नीतियो पर चले।

दूसरे नेहरू के पद-चिह्नो पर चलने की बात यो भी मिथ्या तथा भ्रम फैलाने वाली है कि हमारे राष्ट्रीय आदोलन के इतिहास मे नेहरू के अपने कोई पद-चिह्न ही नही हैं। उन्होने बातें चाहे कुछ बनाई, "काम-शरीरो" के सपने देखे और आकाश मे दूर-दूर तक उडते रहे, पर जब धरती पर चलने का सवाल आया तो हमेशा गांधी के पीछे चले। १६१७ मे उन्होने गांधी का दामन थामा और अन्त तक थामे रहे। प्रधानमत्री बनने के बाद चाहे उन्होने खुद हिंसा का प्रयोग बडी उदारता से किया; पर देश और दुनिया को सभी छोटी बडी आर्थिक तथा राजनैतिक समस्याओ को शान्तिपूर्ण ढग से सुलझाने की सीख देते रहे। इसी से मृत्यु के बाद गांधी के साथ राजघाट के पहलू मे उनके लिए शान्ति-घाट का निर्माण किया गया है।

गांधी राम-राज्य की, ट्रस्टीशिप की और हृदय-परिवर्तन की

जो बात करते थे, हमने देखा कि जवाहरलाल खुद उसके कायल नही थे। जब वह इसे मानते थे या यो कहिए कि जब वह अपने वर्ग-स्वभाव से विवश होकर इसके आगे आत्मसमर्पण करते थे तो उन्हे तर्कशास्त्र के सारे नियमो को ताक पर रखकर गांधी मे अज्ञात-तत्त्व की सृष्टि करनी पड़ती थी। इससे बडा भ्रम और क्या हो सकता है ?

सत्य, अहिंसा और हृदय-परिवर्तन का गांधीवादी दर्शन निहित स्वार्थों तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा का दर्शन है। इस बात को और उसकी अव्यावहारिकता को भी खुद जवाहरलाल ने स्वीकार किया है। "मेरी कहानी" के हृदय-परिवर्तन या बल-प्रयोग परिच्छेद मे वह लिखते है :

भी मानते हैं कि सिर्फ बुद्धि के जागृत होने से समाज मे न्याय स्थापित नही हो जाता, उसके लिए हमेशा शक्ति के मुकाबले शक्ति के साथ सघर्ष करना पड़ता है। लेकिन जिन लोगो का विवेक विशेषाधिकार प्राप्त वर्गो के स्वार्थ का दास होता है वे न सिर्फ यह कि शक्ति के मुकाबले शक्ति के सघर्ष से खुद दूर रहते है, बल्कि किसी-न-किसी मिथ्या दर्शन का सहारा लेकर पीडित और शोषित जनता को भी उससे भटकाते और दूर रखते हैं। हम देख चुके हैं कि गांधीवाद भी ऐसा ही क्रान्ति विरोधी मिथ्या-दर्शन है। जवाहरलाल ने और देश के अनेको चितको, विचारको और बुद्धिजीवियो ने इसे अपनाया तो इसका एक कारण यह था कि बहुतो के वर्ग-हित विशेषाधिकार-प्राप्त वर्गो के हितो से जुडे हुए थे। दूसरे यह शिक्षा-प्रणाली ही दूषित है। पहले यह विदेशी सरकार के लिए दासवृत्ति के स्वर्थाध शिक्षित जुटाती थी, जो मेहनतकश जनता के दमन और शोषण के लिए सहज मे सरकार की हिसक मशीनरी का अग बन जाते थे और अब दलाल पूंजीपतियो और सामतो की देशी सरकार के लिए जुटाती है और इसीलिए इस शिक्षा-प्रणाली को बदला नहीं जा रहा। जब समाज मे आर्थिक सम्बध बदले है तब शासन-प्रणाली बदलती है और तभी शिक्षा-प्रणाली को बदलना सम्भव होता है, पहले बदलने का सवाल ही पैदा नही होता। शिक्षा-प्रणाली का काम ही वर्ग, समाज और शासन की सेवा करना है।

दोहरा चरित्र इस शिक्षा-प्रणाली की विशेष देन है। हमे अपने राष्ट्रीय जीवन मे जो आदर्शहीनता, विडम्बना और भ्रष्टाचार का असाध्य रोग दिखाई पडता है और जिसे हम लाचारी और बेबसी मे सामान्य स्थिति मान बैठें है, वह इसी के डढ सौ वर्ष के कुप्रभाव का परिणाम है। क्रान्ति ही इस रोग का एक-मात्र इलाज थी। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व भी इस स्वार्थांध शिक्षित समुदाय के हाथ मे था और उसके द्वारा सत्याग्रह का क्रान्तिविरोधी मार्ग

अपनाया जाना स्वाभाविक ही था। परिणाम यह निकला कि रोग कम होने के बजाय बढता रहा और भयकर रूप धारण कर गया।

हमारे देश मे जो बडे-बडे कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट नेता है, वे भी प्राय इसी शिक्षा-प्रणाली मे ढले हुए चट्टे बट्टे है। वे भी चलते दाये और बात बाये की करते है। जवाहरलाल ने चूंकि एक कुशल-नट के अभिनय और गर्मा-गर्म लफ्फाजी द्वारा इनके सामूहिक दोहरे चरित्र को कलात्मक रूप प्रदान कर दिया है, इसलिए इन लोगो का जवाहरलाल से तादात्मय स्थापित हो जाना और उन्हे अपना चरित्र-नायक मान लेना स्वभाविक ही था। जवाहरलाल की मृत्यु पर बडे ईमानदार और मार्क्सवाद के पडित समझे जानेवाले 'कम्युनिस्ट" नेता एम० एस० नम्बूतिरिप्पाद का एक लेख "जिनसे मुझे समाजवाद का पहला पाठ मिला" प्रकाशित हुआ था उसमे वह लिखते है·

"मेरी बौद्धिक उन्नति के निर्णायक समय मे उसको रूप देने वाले नेता के रूप मे पूर्ण आदर और श्रद्धा से ही आज भी मैं उनको देखता हूं"। और "इस अर्थ मे हमारा ही एक भाग नष्ट हुआ, ऐसा प्रतीत होता है।" ("आजकल", नेहरू-स्मृति अक)

ससदवाद ने इन लोगो के लिए स्वार्थ-सिद्धि का एक और क्षेत्र खोल दिया है। इनमे से बहुतो ने राजनीति ही को अपना "कैरियर" बना रखा है। लोक सभा, राज्यसभा और विधानसभाओ के सदस्य बनकर समाज मे यक-बयक आदर-सम्मान बढ जाता है; वेतन, भत्ते और जाने क्या-क्या सुविधाए प्राप्त हो जाती है गो इनका निजी स्वार्थ विशेषाधिकार-प्राप्त वर्गो के स्वार्थ से जुड जाता है और ये मताधिकार ही को देश के दुख-दर्द, गरीबी और मुसीबतो का एक-मात्र हल बताते घूमते है। १९६७ के आम चुनाव ने तो जिसके बाद सयुक्त सरकारे बनने लगी हैं, इन सब के स्वार्थ को भली भाँति नगा कर दिया है। सशोधनवादी तथा नव-संशोधनवादी कम्युनिस्ट तक बड़ी बेशर्मी से 'लोकतत्र' की रक्षा का नारा लगाते और जनता को भ्रम

मे डाल कर संघर्ष मे शक्ति के मुकाबले शक्ति के प्रयोग से दूर ले जाते है।

जनता ने अपने लम्बे अनुभव से खूब समझ लिया है कि इनका विवेक अपने स्वार्थ का दास है। और धीरे-धीरे इन सबपे जनता का विश्वास उठता चला जा रहा है और वह शक्ति के मुकाबले शक्ति के प्रयोग की राह अपना रही है।

हमे सिर्फ गोरी नौकरशाही को ही नही हटाना था, राज्य के इस दमनकारी ढाँचे को भी बदलना था और इस सामाजिक व्यवस्था को बदलना था, जिसका आधार जाँति-पाँति है, जिसमे हर मेहनतकश अछूत है, जिसके रहते धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता की बात करना बेमानी है, देश के उज्ज्वल भविष्य के ख्वाब देखना बेमानी है और इसके रहते सत्य और अहिसा की बात करना निरी विडम्बना है। इसने तो मिथ्याचरण तथा क्रूरता को धार्मिक पवित्रता का रूप दे रखा है। इसे ध्वस करने के लिए हमारे राष्ट्रीय आदोलन को डायनामेट बनना चाहिए था, मगर बना भी तो बना शान्तिपूर्ण सत्याग्रह। परिणाम यह निकला कि हिंसा को अपने भीतर पोषित करने वाली यह सदियो पुरानी वर्ण-व्यवस्था ज्यो-की-त्यो बनी रही। हमने पढ़ा कि पिछले वर्ष आध्र के एक जमीदारो ने एक अछूत लडके को पेड से बाँध कर जिदा जला दिया और इस वर्ष मई के महीने राजस्थान के उदयपुर जिले मे एक तालाब के निर्माण अवसर पर ठेकेदार ने एक १२ वर्षीय मजदूर बालक की बलि चढाई। हमने यह भी पढा कि भूख से सताई एक माँ बच्चे को गोद मे लेकर कुएँ मे कूद पडी। ··

२५ दिसम्बर १९६८ को खबर आई कि तामिलनाड के थजावुर जिला के किला वेनियानी गाँव मे जमीदार के हथियारबद आदमियो ने खेत मजदूरो पर हमला किया, उनकी झोपडियो को आग लगा दी। इन मे एक झोपडी ऐसी थी, जिसमे बीस औरते १९ बच्चे और तीन बूढे इस हमले से फैले भय के कारण जमा हो गये थे। जमीदार के

गुडो ने झोंपड़ी पर पेट्रोल छिड़ककर दरवाजा बाहर से बद कर दिया और आग लगा दी। बयालीस के वयालीस आदमी जल मरे !

क्या १५ अगस्त १९४७ को प्राचीनता से इसी नवीनता की ओर कदम उठाया गया था ? इन खेत मजदूरों का जिन पर हमला किया गया, गुनाह सिर्फ यह था कि वे काटी जाने वाली फसल के हर ४८ लिटर के पीछे ५½ लिटर के बजाये छह लिटर धान माँगते थे। क्या आज के हालात मे उनकी यह माँग नाजायज है ? क्या इस प्रतिक्रान्तिकारी ग्रह-युद्ध का मुकाबला क्रान्तिकारी ग्रह-युद्ध ही से सम्भव नही है ?

अगले दिन मै योही इत्तफाक से "ग्रामोद्योग पत्रिका" देख रहा था। उसमे एक लेख था—"क्रान्ति के तीन प्रकाश स्तम्भ—मार्क्स, गाँधी और विनोबा।" साथ ही मार्क्स, गाँधी और विनोबा का एक ऐसा चित्र बना हुआ था जैसा कोई पद्रह साल पहले मास्को से छप कर आनेवाली कम्युनिजम की किताबो पर मार्क्स, एग्लज, लेनिन स्तालिन का बनाहोता था।

मै लेख का शीर्षक पढकर और यह चित्र देखकर मन-ही-मन मुस्कराता रहा।

सोचिए इससे बडा झूठ और क्या हो सकता है कि मार्क्स के साथ गाँधी और विनोवा का नान जोडा जाय। इससे अगर कोई बात सिद्ध होनी है तो यही कि गांधीवाद को बनाये रखने के लिए अब बुद्धवाद और टाल्स्टायवाद की बैसाखियाँ काम नही दे रही। उसे नया आधार चाहिए।

लेनिन के कथनानुसार रूस मे टाल्स्टायवाद १९०५ की असफल क्रान्ति के वाद समाप्त हो गया था क्योकि हारी हुई फौजों की तरह हारी हुई जनता भी अधिक सीखती है। हमारी जनता ने भी नमक-सत्याग्रह की पराजय से सीखा और गांधीवाद द्वारा लाई गई इस आजादी को देख-परख कर सीखा। आखिर वह कव तक भ्रम पाले रहेगी और कव तक बेकार का बोझ सिर पर उठाये चलेगी ?

मार्क्सवाद और गांधीवाद मे क्या सम्बंध ? गाँधीजी राम-राज्य की—पीछे लौटने की बात कहते है और दिमाग को कुठित करने वाली वर्तमान से आगे न सोचने की बात कहते है। इसके विपरीत मार्क्स ने शोषित पीडित जनता के लिए सदियो आगे का क्रान्तिकारी कार्यक्रम निर्धारित किया और बताया कि पूंजीवादी व्यावस्था का स्थान अनिवार्य रूप से समाजवादी व्यवस्था लेगी। मार्क्स की यह भविष्यवाणी हमारी आँखो के सामने सही सिद्ध होती जा रही है।

बुद्ध, टालस्टाय और गाँधी ने अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लडने के लिए भी बल-प्रयोग को पाप बताया। इसके विपरीत मार्क्स ने कहा कि जब पुराने समाज के गर्भ मे क्रान्ति पक चुकी हो तो बल-प्रयाग दाई का काम करता है और यही क्रान्ति का ऐतिहासिक राजपथ है। १९२८ मे जब मार्क्सवादी विचार हमारे देश मे जड पकड रहे थे तो जवाहरलाल नेहरू ने १२ दिसम्बर को बम्बई प्रेसिडेसी के युवक सम्मेलन मे कहा था :

"यदि तुममे से कोई यह विश्वास करता है कि हम सत्ताधारियो से अधिकार मीठे तर्को और बहसो से ले सकते हैं, तो मै यही कह सकता हूँ कि तुमने न तो इतिहास अच्छी तरह से पढा है और न ही भारत की हाल की घटनाओ पर अधिक ध्यान दिया है हमारे सामने जो समस्या है, वह है ताकत को लडकर जीतने की। हम अपनी कौंसिलो और असम्बलियो मे देखते हैं कि वहाँ तर्क और बहस की बाहरी तडक-भडक होती है और उस पर भी सरकारी प्रवक्ताओ का बहुधा अपमानजनक और असह्य अकुश होता है, वहाँ पर होने वाले बढिया भाषण, चाहे वे सख्त-से-सख्त शब्दो से भरपूर हो, सत्ता की कुर्सी पर कोई प्रभाव नही डालते। किन्तु आप खेतो मे और बाजारो मे जाये तो आप देखेंगे कि जहाँ-जहाँ जनता और सरकार की इच्छाओ मे टक्कर है, वहाँ लोग कितने भी शान्त क्यो न हो, सरकार जनता को बहस और दलीलो से नही समझाती बल्कि बदूक के कुदो, पुलिस

के डडों, गोलियो और कभी-कभी फौजी कानून से दबाते हैं। ऐसा परिस्थिति मे बुनियादी तथ्य बदूक और डडा होते है। सर्द लोहे और सूखी लकड़ी (हृदयहीनता) के सामने आपके तर्क और मीठी बहस कैसे काम करे ? अगर तुम (हृदयहीनो से) जीतना चाहते हो तो तुम्हे दूसरे तरीके इस्तेमाल करने पडेगे, मुकाबले मे आने वाले बदूकों के कुदो और डडो से भी बडे और शक्तिशाली तरीके अपनाने पड़ेगे।"

लेकिन हम देख चुके है कि न कभी कांग्रेसी नेताओ ने यह तरीके इस्तेमाल किये और न डागेपथी और नम्बूतिरिप्पाद पथी वनस्पति कम्युनिस्ट ने इस्तेमाल किये। महज अल्फाजो से जनता को बहलाते-बहकाते और भ्रम पैदा करते रहे। परिणाम यह है कि आज भी हमारा देश वही है जहाँ १८५७ मे था, जब हमारे पुरखो ने विदेशी साम्राज्य को पहली बार चुनौती दी थी और आजादी हासिल करने की कोशिश मे लोहे-से-लोहा टकराया था। उसके बाद १८५८ मे अग्रेजो ने जो राजसत्ता कायम की उसे कांग्रेस या कम्युनिस्टो ने कभी कोई गम्भीर चुनौती नही दी।

कहने का तात्पर्य यह है कि हमने अभी तक बुर्जुआ क्रान्ति को भी पूरा नही किया। यह क्रान्ति सशस्त्र वर्ग-सघर्ष द्वारा ही सम्भव है, कृषिक्रान्ति इसकी पहली शर्त है और इसकी प्रमुख शक्ति किसान है, जिन्हे मजदूर वर्ग के नेतृत्व मे यह सघर्ष लडना है। यह क्रान्ति देहात से शुरू होकर शहरो की ओर बढेगी। इस क्रान्ति का निशाना हैं (१) सामन्तवादी तत्व जिन्हे ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपना सहयोगी बनाकर कायम रखा। (२) बड़े पूंजीपति जो साम्राज्यवाद के दलाल या पत्तीदार बन गए है और (३) अमरीकी साम्राज्यवाद और रूसी सशोधनवाद जो हमारे देश को नवोपनिवेश बनाये रखना चाहते है।

इस क्रान्ति के पूरा हो जाने के बाद ही हम समाजवाद की ओर बढ़ पायेगे अन्यथा नही। हमारी क्रान्ति की यह पहली और दूसरी मजिल है।

खुशी की बात है कि भ्रम टूट रहे हैं, जनता ने अपने मित्रो को समझना शुरू कर दिया है और वह सघर्ष मे शक्ति का मुकावला शक्ति से करने के मार्ग पर चल पड़ी है, लेकिन यह सघर्ष सहज नही है। हमे आज़ादी की पहली मज़िल तक पहुंचने ही मे वर्षों लगेंगे और बहुत-सी कुर्वानियाँ देनी होगी। यह तभी सम्भव है जब हम भूत और भविष्य मे दूर तक झाँककर देखें और एक स्वस्थ दृष्टिकोण लेकर चले। कठिन सघर्ष मे सफलता के लिए लम्वी योजना और दृढ़ निश्चय आवश्यक है। 'पचतत्र' की एक कथा है, जिसमे वदला लेने की भावना से समुद्र को सुखाने की बात आती है तो नर पक्षी मादा पक्षी से कहता है:

"प्रिय! उत्साह ही लक्ष्मी की जड़ है। मेरी चोच लोहे जैसी है और रात-दिन काफी बडे हैं फिर समुद्र कैसे नही सूखेगा ?"

राष्ट्रो के जीवन मे दस, वीस, पचास साल वल्कि सदियाँ भी क्षणो की तरह वीत जाती हैं। पेड़ अपने लिए नही आने वाली पीढियो के लिए रोपे जाते हैं।

● ● ●

परिशिष्ट--१

दार्शनिक विचार

एक बार अमरीका के एक प्रकाशक ने अपने एक सग्रह के लिए जवाहरलाल से उनके जीवन-दर्शन पर एक लेख मॉगा था। "हिन्दुस्तान की कहानी" मे इस बात की चर्चा करते हुए उन्होने लिखा है : "यह खयाल मुझे अच्छा लगा, लेकिन मुझे पशोपेश हुआ और जितना ही मैंने इस बारे मे गौर किया, मेरा पशोपेश बढता गया आखिरकार मैने यह मजमून नही लिखा।"

सवाल यह पैदा होता है कि जो खयाल अच्छा लगा, उसे आखिर मे टाल क्यो दिया ? इस पशोपेश का, असमजसका, जो सोचने पर बढता ही चला गया, कारण क्या था ?

अब जब हमने जवाहरलाल के जीवन का अध्ययन कर लिया है और उनके वर्ग-स्वभाव को समझ लिया है तो इस कारण को, उनके मानसिक असमजस को समझ लेना कुछ भी कठिन नही है।

जवाहरलाल का बौद्धिक रुझान विज्ञान तथा भौतिकवाद की ओर था। वह जीवन की समस्याओ पर दूर तक सोचते और अपने चिंतन मे तर्क को बहुत गहरा और ऊँचा ले जाते थे। मनन-शक्ति को बढाने और अपने ज्ञान को आधुनिकतम बनाये रखने मे वह आध्यात्मिक सुख तथा गर्व महसूस करते थे। इसीलिए उन्होने मार्क्सवाद का अध्ययन किया और उसका उन पर जो प्रभाव पड़ा, उसे यो व्यक्त किया है :

"मार्क्स और लेनिन की रचनाओ के अध्ययन का मुझ पर गहरा असर पडा और इसने इतिहास और मौजूदा जमाने के मामलो को एक नई रोशनी मे देखने मे बडी मदद पहुँचाई। इतिहास और समाज के विकास के लम्बे सिलसिले मे एक मतलब और आपस का रिश्ता जान पडा और भविष्य का धुँधलापन कुछ दूर हो गया।"

(हिन्दुस्तान की कहानी)

मगर उन्होने अपने कर्म को चर्खे से बाँध रखा था, जिसका आधार अहिंसा, सत्याग्रह और हृदय-परिवर्तन का गाँधीवादी दर्शन था। अब विचार और कर्म मे एक अनिवार्य सम्बध है। किसी भी व्यक्ति के लिए दोनो को अलग-अलग रखना सम्भव नही है। अतएव जवाहरलाल को अनेक बार गाँधीजी मे अज्ञात के दर्शन होते थे और तर्क को ताक पर रखकर आधिभौतिकवाद से अपने भौतिकवाद की पट्टी बिठाते थे। इसी से निश्चित, अनिश्चित मे स्पष्टता, अस्पष्टता मे परिवर्तित हो जाती थी और गाँधीवाद मार्क्सवाद मे अर्थात् आदर्शवाद भौतिकवाद मे गड्ड-मड्ड हो जाता था।

अमरीकी प्रकाशक ने अपने सग्रह के लिए जो लेख माँगा था, उसमे एक निश्चित बात कहना आवश्यक थी। लेकिन जवाहरलाल जिनके विचार और कर्म मे कथनी और करनी मे अतर था, निश्चित बात कैसे कहते। इसी अनिश्चितता से पशोपेश पैदा हुआ, जो इस बारे मे गौर करने से ज्यादा बढता गया और उन्हे एक अच्छा लगने वाला खयाल भी टालना पडा।

लेकिन अपनी पुस्तक "हिन्दुस्तान की कहानी" मे जवाहरलाल ने अमरीकी प्रकाशक को टाल देने के बावजूद "जिंदगी के फलसफा" पर विस्तार से विचार किया है। पर जो कुछ लिखा है वह अत्यन्त अस्पष्ट और अनिश्चित है। लगता है कि लेखक किसी बात को रद्द या कबूल करने से जान-बूझ कर कतरा रहा है और गोलमोल बात कहकर पाठक को या अपने आप को बहलाना चाहता है। उदाहरण के

लिए आत्मा और पुनर्जन्म के बारे मे नेहरू के विचार देखिए। लिखा है :

"असल मे मेरी दिलचस्पी इस दुनिया मे है, किसी दूसरी दुनिया या आनेवाली जिंदगी मे नही। आत्मा जैसी कोई चीज है भी या नहीं, मैं नही जानता। और अगरचे ये सवाल महत्त्व के है, फिर भी इनकी मुझे कुछ भी चिंता नही। जिस वातावरण में मैं बचपन से पला हूँ, उसमे आत्मा और भविष्य की जिन्दगी, कार्य-कारण का कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म, ये मान ली गई चीजे है। मुझपर इनका असर पड़ा है, इसलिए एक मानी मे इन सिद्धान्तो की तरफ मेरे भाव अनुकूलता के है। शरीर के भौतिक विनाश के बाद हो सकता है कि आत्मा बनी रहती है, यह बात तर्कपूर्ण जान पडती है, अगरचे हम मूल कारण पर ध्यान दे, तो यह सिद्धान्त जाहिरा तौर पर कठिनाइयाँ भी पैदा करता है। यह मान लिया जाय कि आत्मा है, तो पुनर्जन्म के सिद्धान्त मे भी कुछ दलील जान पडती है।"

लेकिन कुछ "दलील" मान लेने से भी उनके अपने भीतर का द्वंद्व शान्त नही होता। इसलिए तर्क जारी रहता है और एक अनिश्चित दिशा मे भटक जाता है :

"लेकिन इन सिद्धान्तो और मानी हुई बातो मे मेरा यकीन कोई मजहबी तौर पर नही है। ये तो एक अनजाने प्रदेश के बारे मे दिमागी अटकल की बाते है। जो मेरी जिंदगी पर असर नहीं डालती और आगे चलकर ये सच्ची साबित होती है या रद्द कर दी जाती है, मेरे लिए यकसाँ है।"

मुमकिन है कि इन अध्यात्मिक व्यापारो मे कुछ सच्चाई का अश हो । मै इससे इन्कार नही करता ।"

मतलब यह कि वह तर्क को ताक पर रखकर यहाँ भी कर्म के साथ विचार की पट्टी बिठा लेते है

"यह बात मुझे बहुत ही पसद आती है कि जिंदगी की ओर हमारे रुख का किसी-न-किसी तरह का नैतिक या इखलाकी आधार होना चाहिए। हाँ, दलील से इसका समर्थन करना मेरे लिए मुश्किल होगा । गाँधीजी सही साधनो पर जो जोर देते है, उनकी तरफ मेरा खिचाव रहा है और मेरा खयाल है कि हमारे सार्वजनिक जीवन के लिए गाँधीजी की यह सबस बडी देन है ।"

गाँधीजी की इस बडी देन को कबूल कर लेने का नतीजा यह निकलता है कि मार्क्स और लेनिन की रचनाओ के अध्ययन से जो रोशनी मिली थी, वह बुझ जाती है और भविष्य का धुँधलापन फिर गहरा हो जाता है । लिखा है

"मार्क्सवाद के दार्शनिक दृष्टिकोण मे बहुत कुछ ऐसा है, जिसे मै बगैर दिक्कत के मान सकता हूँ--उसमे बताई गई जड और चेतन की एकता या अद्वैत को, जड की गतिशीलता को, विकास-क्रम से या सहसा उपस्थित होने वाले निरतर परिवर्तन के द्वद्व को, और क्रिया-प्रतिक्रया, कारण और उत्पत्ति, विरोध और समन्वय के जरिये होने वाले द्वद्व को । फिर भी इससे मेरा पूरी तरह इत्मीनान न हुआ । न इस ने उन सब बातो का हल पेश किया, जो मेरे दिमाग मे थी और मेरे दिमाग मे, एक अस्पष्ट आदर्शवादी रास्ता, मानो अनजान मे, दिखाई पडने लगा । यह रास्ता कुछ वेदान्त के मार्ग जैसा था । जड और चेतन के भेद ही का यह मसला न था, बल्कि कुछ ऐसी चीज थी, जो दिमाग से परे थी । फिर एक नैतिक पृष्ठभूमि का भी सवाल था । मैंने यह भी समझा कि इखलाक यानी नीति का रास्ता एक बदलता हुआ रास्ता है और यह विकास पाते हुए दिमाग और तरक्की

करती हुई सभ्यता पर निर्भर करता है। यह युग की मानसिक अवस्था का नतीजा है। लेकिन इसमे कुछ और बाते भी थी, यानी कुछ बुनियादी-प्रेरणाएँ, जो दोनो के मुक़ाबले मे ज्यादा पायदार थी। मै कम्युनिस्टो और औरो के व्यवहार मे, उनके कामो और इन बुनियादी प्रेरणाओ या सिद्धान्तो के बीच जो अलगाव देखता था, उसे पसन्द नही करता था। इसलिए मेरे दिमाग मे कुछ ऐसा गड्ड-मड्ड हो गया कि मै उसे बुद्धि द्वारा स्पष्ट या हल नही कर पाता था।" इसलिए "एक आम प्रवृत्ति यह थी कि इन बुनियादी सवालो पर जो अपनी पहुँच के बाहर के जान पडते है, सोचा-विचारा न जाय, बल्कि जिदगी के उन प्रश्नो पर ध्यान दिया जाय, जो हमारे सामने आते है और उनके बारे मे क्या और किस तरह करना चाहिए यह सोचा जाय। आखिर असलियत जो भी हो, और उसे पूरी तौर पर या कुछ अशो मे हम हासिल कर सके या नही, यह बात तय है कि मनुष्य के ज्ञान को, चाहे वह आत्मगत ही क्यो न हो, बढाने की और इन्सानी रहन-सहन और सामाजिक सगठन के सुधारने और उसे आगे बढाने की बड़ी सम्भावना फिर भी रह जाती है।"

जीवन-दर्शन जिस चीज का नाम है, उसका काम ही बुनियादी सवालो का हल पेश करना है। दर्शन की, भौतिकवादी और आदर्शवादी-दोनो पद्धतियाँ अपने-अपने ढग से बुनियादी सवालो का हल पेश करती आई है। अपने आदिम युग मे मनुष्य स्वभावतः भौतिकवादी था। व्यक्तिगत सम्पत्ति के प्रादुर्भाव ने आदर्शवादी दर्शन को जन्म दिया, क्योकि आत्मा, परमात्मा और भाग्य की सृष्टि के बिना शोषको द्वारा दूसरो के श्रम के शोषण का औचित्य सिद्ध करना सम्भव नही था। और इतिहास शाक्षी है कि आदर्शवादी विचारको ने शोषण की हर अवस्था को—चाहे सामती हो चाहे पूजीवादी, स्थाई, निरपेक्ष और पवित्र बताकर यथा स्थिति बनाये रखने का भरसक प्रयत्न किया है और परिवर्तन के भय से भविष्य मे झाँकने से इनकार

किया है। अतएव जब जवाहरलाल नेहरू बुनियादी सवालो को पहुँच से बाहर बताकर जिंदगी के सामने आने वाले प्रश्नो पर ही ध्यान देने की बात कहते हैं, तो उनमे इसी परिवर्तन के भय से भविष्य मे झाँकने की, हकीकत से आँख मिलाने की जुर्रत नही रहती और वह अपने वैज्ञानिक चितन को तिलाँजलि देकर गांधीवाद से समझौता कर लेते है। गांधीजी भी तो यही कहते थे कि "मै सिर्फ वर्तमान की बात सोचता हूँ, भविष्य की चिंता नही करता।" हालाकि उन्हे गाँधीजी द्वारा दरिद्रता का गौरव बखान करना और यह कहना कि नारायण खासकर गरीबो का नारायण है, गरीब उसके प्यारे है" पसंद नही था और वह गाँधीजी से इस बारे मे भी सहमत नही थे कि समाज मे गरीब और अमीर तो हमेशा ही बने रहेगे। लिखा है

"जब कभी मुझे इस बारे मे गाँधीजी से बहस करने का मौका मिला तभी वह इस बात पर जोर देते थे कि अमीर लोगो को अपनी दौलत जनता की धरोहर की तरह समझनी चाहिए। यह दृष्टिकोण काफी पुराना है, हिन्दुस्तान मे, मध्यकालीन यूरोप मे भी, अक्सर पाया जाता है। किन्तु मैं तो इस बात को बिलकुल नही समझ सका हूँ कि कोई भी शख्स ऐसा हो जाने की कैसे उम्मीद कर सकता है, या यह कैसे कल्पना कर लेता है कि इसी से समाज की समस्या हल की जायगी।" (मेरी कहानी)

गाँधीजी पुनरुत्थानवादी थे और उनका आदर्शवाद मध्यकालीन सामन्ती दर्शन था। इसके विपरीत जवाहरलाल के वैज्ञानिक चिंतन ने, मार्क्स और लेनिन की रचनाओ के अध्ययन ने, उनके मस्तिष्क मे जगत का एक ऐसा पार्थिव चरित्र बना दिया था जो निरन्तर विकासशील और परिवर्तनशील था। इससे उनकी जो समझ बनी थी वह भविष्य मे झाँकने, आगे बढने और समस्याओ के हल के लिए नए सत्यो की खोज लगाने की कांक्षा भी उत्पन्न करती थी। लिखा है "हम बाह्य भौतिक यथार्थ के निरीक्षण द्वारा कोशिश कर सकते है

ग्रौर प्रयोग तथा ग्रभ्यास, परीक्षणो तथा गलतियो द्वारा ग्रधिकाधिक ज्ञान ग्रौर सत्य की ग्रोर मार्ग टटोलते हुए बढ सकते है।"

(हिन्दुस्तान की कहानी)

इसी चिंतन के ग्राधार पर यह भी लिखा है कि दुनिया को समझने ग्रौर मुख्य समस्याग्रो के समाधान के लिए "चीजो को निकट से देखने की, वास्तविक तथ्यो ग्रौर वैज्ञानिक ग्राधार पर सावधानी पूर्वक निकाले गये निष्कर्षो की ग्रावश्यकता है।"

(भारत की विदेश नीति भाषणो का सग्रह।"

लेकिन ट्रेजिडी यह है कि हिन्दुस्तान का सामन्तवाद ग्रौर पूजीवाद जुडवे भाई है ग्रौर सामाजिक क्रान्ति के भय से दोनो ही व्यवहारिक रूप से साथ-साथ रहने पर मजबूर है। राष्ट्रीय ग्राँदोलन मे गाँधीजी का नेतृत्व इसी मजबूरी का नतीजा था। जवाहरलाल के चिंतन मे यह जो ग्रतर्विरोध है, जबर्दस्त ग्रसगति है, वह भी इसी का नतीजा है। दार्शनिक भाषा मे इसे व्यवहार के ग्रागे विचार का ग्रात्मसमर्पण कहना उपयुक्त होगा। ऐसा होना कोई ग्रचरज की बात नही है, क्योकि जिदगी मे प्रधानता विचार को नही व्यवहार को प्राप्त है।

गाँधीवाद कॉग्रेस का ग्रधिकारिक दर्शन है, जो उसने १९२१ मे गाँधीजी के नेता बनने पर ग्रपनाया ग्रौर उनकी मृत्यु के बाद भी ग्रब तक ग्रपनाये हुए है। जवाहरलाल नेहरू ने चौदह-पन्द्रह साल तक प्रधान मत्री रहने के बाद 'ब्लिटज' के सम्पादक करजिया को एक साक्षात्कार मे कहा था : "जो नीति दर्शन हम लागू करने की कोशिश कर रहे हैं, वे हमे गाँधीजी द्वारा बताई गई नीतियाँ ग्रौर दर्शन है"

(द माईड ग्रॉफ मिस्टर नेहरू)

लेकिन यह स्वीकार करते हुए कि विज्ञान जीवन मे क्रान्ति ला देता है ग्रौर समाज की प्रगति के लिए नई सम्भावनाग्रो के द्वार खोल देता है, जवाहरलाल ने यह भी लिखा था : 'हमे जीवन का

सामना ऐसे रुझान और दृष्टिकोण के साथ करना चाहिए, जिसकी व्यापक परिधि मे अतीत तथा वर्तमान अपनी समस्त ऊँचाइयो और गहराइयो के साथ मौजूद रहता है और तभी हम सौम्य भाव से भविष्य देख सकेगे।"

समाज के विकास मे निर्णायक शक्ति है, मनुष्य का श्रम—उसकी उत्पादक-शक्ति। जैसे-जैसे इतिहास-क्रम मे उत्पादक शक्तियाँ विकसित हुई है, भौतिकवादी दर्शन भी स्वत विकसित हुआ है। इस विकास को रोकना शासक और शोषक वर्ग के वस मे नही था, वल्कि इसके प्रभाव से उनके अपने आदर्शवाद की सीमाएँ फैलती रही। हेगल आदर्शवादी इसलिए था कि वह समाज के विकास और प्रगति का मूलाधार विचार को मानता था। लेकिन उसने औद्योगिक क्रान्ति और महान वैज्ञानिक आविष्कारो के दवाव से द्वन्द्ववाद का निरूपण करके आदर्शवाद को उसकी अन्तिम सीमा तक पहुँचा दिया। मार्क्स ने हेगल के दर्शन को जो सिर के वल खडा था, पाँव पर खडा किया और अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद द्वारा दर्शन और विज्ञान मे सामजस्य स्थापित किया। पर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद शोषक वर्ग का नही, सर्वहारा का क्रातिकारी दर्शन है, गरीव और अमीर के भेद को हमेशा हमेशा के लिए मिटा देने का दर्शन हैं। गांधीवाद से जो यथास्थिति वनाये रखने का क्रान्ति विरोधी मध्यकालीन दर्शन है, इसका कुछ भी मेल नही।

परम्परागत वेदान्त-दर्शन को मानने वालो ने भी, जिनके नजदीक जगत माया और चरम सत्य—ब्रह्म का एक असुन्दर रूप है, उत्पादन द्वारा जुटाई गई वस्तुओ को कभी लेने से इनकार नही किया, वल्कि श्रम का शोषण करके अपने लिए सुख-सुविधा के अपार साधन जुटाये। यो उनके विचार और व्यवहार मे—कथनी और करनी मे हमेशा अन्तर रहा, जिससे जाने-अनजाने धार्मिक पाखण्ड, विडम्वना और मिथ्याचरण का पोषण हुआ। जवाहरलाल ने लिखा है .

"जब ससार को माया प्रथवा भ्रम कहा गया तब भी पूर्ण सत्य के रूप मे नही, बल्कि जिस चीज को चरम सत्य समझा जाता था, उसकी तुलना मे एक सापेक्षित सत्य के रूप मे और विश्व को उसके वास्तविक रूप मे ही स्वीकार किया गया।"

(हिन्दुस्तान की कहानी)

गाँधीवाद जिस सत्य पर बहुत अधिक वल देता है, वह वस्तुपरक सापेक्षिक सत्य नही जो क्षण-क्षण बदल रहा है और जिसे मानव-श्रम की नई-नई उपलब्धियाँ और आविष्कार अधिकाधिक पूर्ण और समृद्ध बनाते चले जा रहे है, बल्कि एक अपरिवर्तनशील चरम सत्य है, जिसका चिन्तन वेदान्तियो और सभी आदर्शवादियो द्वारा 'ब्रह्म' के रूप मे किया जाता है। इस चरम सत्य अर्थात् ब्रह्म का एक अश ससार के प्रत्येक प्राणी मे विद्यमान है। तप, त्याग, व्रत और आत्म-शुद्धि द्वारा इस अश को बढाया जा सकता है और कष्ट सहकर, मार खाकर, इस अश को कष्ट देने और मारने वाले मे भी जगाया-बढाया जा सकता है। गाँधीवाद का यही सार-तत्त्व है जो भीतरी परिवर्तन द्वारा पाप, लोभ और क्रोध के असत्य तत्त्व को धीरे-धीरे कम और अन्त मे बिलकुल खत्म करके न सिर्फ व्यक्ति को बल्कि समूचे मानव समाज को ब्रह्मरूप बनाना अपना आदर्श घोपित करता है।

मगर मनुष्य का सदियो का ऐतिहासिक अनुभव इस आदर्श को बहुत पहले झुठला चुका है। हमारे देश के योगियो और गोरख-पथियो ने इस ब्रह्म को पाने की लालसा मे पार्थिव-जगत को छोड़ा, जगल-जगल घूमे, घोर तपस्याएँ की और जाने क्या-क्या हठ क्रियाएँ साधी। इन सबका परिणाम यह निकला कि जब-जब उन्हे भूख ने सताया तव-तब पार्थिव-जगत की ओर लौटे और गृहस्थियो के द्वार पर 'अलख निरजन" की सदा लगाते हुए स्वीकार किया कि हमारा सब परिश्रम व्यर्थ है "ब्रह्म को देखा-पाया नही जा सकता।" गाँधी-

वादी कांग्रेसजनो की तो बात ही जाने दीजिए, उनकी सारी दौड-धूप, स्वाधीनता-सग्राम के दिनो मे और उसके बाद, कुर्सियो, पदो, वेतन-भत्तो, बगलो और कारो के लिए रही है। १६२१ से आज तक के लगभग पचास वर्ष मे गाँधीवाद का जो व्यावहारिक रूप विकसित हुआ है, उसमे हम चरम सत्य का—ब्रह्म का अश सिर्फ यही देखते है कि या तो कुछ पुराने झूठो का नाम सत्य रख दिया गया है या फिर सत्य के नाम पर कुछ नए झूठो की सृष्टि की गई है, जिन्हे हम अपने राष्ट्रीय जीवन मे दिन-दिन बढ रहे भ्रष्टाचार, बिडम्बना और आदर्शहीनता के रूप मे भोग रहे है।

एक मध्यकालीन अव्यावहारिक दर्शन को अपना लेने का परिणाम इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता था। जवाहरलाल यह सब समझते थे और अगस्त १६४२ के आदोलन के सिलसिले मे जब वह अहमदनगर किला मे नजरबन्द थे तभी लिख दिया था .

"जैसे हम पहले थे, उसके मुकाबले मे हम कोई ज्यादा सच्चे नही बन गये, लेकिन अटल सत्य के प्रतीक गाँधीजी बराबर हमारे सामने थे, जो हमको ऊपर खीचने थे और सत्य पर डटे रहने का हमे वास्ता दिलाते थे। सत्य क्या है ?" अब यहाँ अतर्विरोध सिर उठाता है और दिमाग मे कुछ ऐसा गड्ड-मड्ड हो जाता है कि एक स्पष्ट परिभाषा न देकर जवाहरलाल अपनी विवशता घोषित करते हैं, "पक्के तौर पर मै यह नही जानता और शायद हमारे सत्य सापेक्षिक और पूरे-के-पूरे हमारी पहुँच के परे हैं। अलग-अलग आदमी सत्य को अलग-अलग तरह से लेते है और हर आदमी पर अपनी-अपनी पृष्ठ-भूमि, शिक्षा और प्रवृत्तियो का बडा असर होता है।"

जवाहरलाल पर उनकी पृष्ठभूमि, शिक्षा और प्रवृतियो के असर को हम विस्तार मे देख चुके हैं। उनके परिवार का सामन्तवाद से घनिष्ठ सम्बन्ध था, जिससे परम्परागत वेदान्त-दर्शन उन्हे विरासत मे मिला था। हालाँकि पिता ने सामन्तवादी तत्त्वो को झटककर अपने

चिंतन को बहुत हद तक वैज्ञानिक बना लिया था और अपने जीवन को और घर के वातावरण को पूंजीवादी सभ्यता के साँचे मे ढाल दिया था, मगर जवाहरलाल का लालन-पालन जिस विलासता मे हुआ, उसने उन पर वेदान्त-दर्शन के प्रभाव को गहरा बनाये रखा। इसी कारण वह एनी बेसेन्ट और ब्रुक्स के ब्रह्मवाद की ओर आकर्षित हुए और थियोसाँफी की दीक्षा ली। फिर जब शिक्षा के लिए विलायत गए तो पतनोन्मुख पश्चिमी सभ्यता की भोगवादी प्रवृत्तियो ने और नीत्शे के सनकीवाद ने—अतिमानव के सिद्धान्त ने उन्हे बहुत ज्यादा प्रभावित किया। जब वह स्वदेश लौटे तो उनका वर्ग-चरित्र एक ठोस और दृढ रूप धारण कर चुका था। क्रान्तिविरोधी गांधीवादी दर्शन से उनका राजनैतिक सम्बन्ध जुड जाना स्वाभाविक ही था। यह ठीक है कि विज्ञान मे उनकी रुचि थी; लेकिन विज्ञान के प्रति भी उनका दृष्टिकोण आदर्शवादी था। पदार्थ की वास्तविकता को मानते हुए भी वह आत्मा के स्वतत्र अस्तित्व मे विश्वास करते थे अर्थात वह द्वैतवादी थे। लिखा है :

"आध्यात्मिक चीजो मे, जो हमारी भौतिक दुनिया की सीमा से आगे है, थोडी-बहुत आस्था आवश्यक प्रतीत होती है, नैतिक, आध्यात्मिक और आदर्शवादी अवधारणाओ पर थोडी-बहुत निर्भरता जरूरी है, नही तो हमारे पास कोई शरण-स्थल, जीवन मे कोई उद्देश्य अथवा सार्थकता नही रह जायगी। हम ईश्वर मे विश्वास करे या नही, किसी-न-किसी चीज मे विश्वास न होना असम्भव है, चाहे हम उसे प्राणदायक रचनात्मक शक्ति कहें या पदार्थ मे अन्तर्निहित शक्ति—वह यद्यपि अस्पष्ट है, तथापि वह उतनी ही सत्य है जितना मृत्यु की तुलना मे जीवन।"

सजाया गया है, उसकी तह मे भी इसी विश्वास की प्रेरणा है। वरना इस मामले मे डा० राम मनोहर लोहिया और सावरकर तक उनसे कही अधिक प्रगतिशील सिद्ध हुए, जिन्होने अपना दाह-सस्कार बिजली द्वारा करने को कहा।

प्रतिक्रियावाद और पतनोन्मुख पूँजीवाद के पूरे युग की राजनीति तथा सस्कृति का आधार आदर्शवाद है, जिसने वैज्ञानिक उन्नति और मार्क्सवादी आलोचना के दबाव से मनोगत आदर्शवाद वस्तुगत आदर्शवाद, व्यवहारवाद, रहस्यवाद, अस्तित्ववाद, प्रयोगवाद और अराजकतावाद आदि के विभिन्न रूप धारण कर लिये हैं। इनमे व्यवहारवाद (Pragmatism) को जिसका प्रतिपादन अमरीकी मनोविज्ञान के विशेषज्ञ विलियम जेम्स ने किया है, सबसे सशक्त तथा आधुनिकतम माना जाता है। यह व्यवहारिकता पर बल देता है और जेम्स ने इसे "कर्म का दर्शन" कहा है। इसके अनुसार "कोई भी विचार उस समय तक 'सत्य' है, जब तक उस पर विश्वास करने से हमे अपने जीवन मे लाभ पहुचता है।" दरअसल यह मुनाफा खोर अमरीकी साम्राज्यवादी व्यापारियो का दर्शन है, जिसे दूसरे देशो के उनके भाई-बन्दो ने भी अपना लिया है। जवाहरलाल ने गाँधीवादी सत्य की जो उक्त व्यवहारिक परिभाषा की है, वह इससे बहुत मुख्तलिफ नही है। पूरे राष्ट्रीय आदोलन मे क्रान्तिकारी सघर्षो को टालने और निहित स्वार्थो की रक्षा करने के लिए समय-समय पर ऐसे ही 'सत्यो' का सहारा लिया गया और अब भी हमारे राष्ट्रीय जीवन मे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनो को रोकने के लिए ऐसे ही 'सत्य' का सहारा लेकर उन वर्गो के स्वार्थों की रक्षा की जा रही है, जिनका कांग्रेस प्रतिनिधित्व करती है। समाजवादी समाज के निर्माण का नारा भी एक ऐसा ही "सत्य" है।

जवाहरलाल ने करजिया के साथ अपनी भेंट मे कहा था, "मैं समाजवाद मे पिछले पचास वर्षो से विश्वास करता आ रहा हूँ और

उसमे विश्वास करता तथा उसके लिए काम करता रहूँगा।"
(द माईड आफ मिस्टर नेहरू)

लेकिन उनके इस विश्वास का दार्शनिक आधार क्या था ? और
उनके दिमाग मे समाजवाद की धारणा क्या थी ? १५ अगस्त
१९५८ को उन्होने अपने "मूलभूत दृष्टिकोण" निबध मे लिखा था :
'लेकिन, समाजवाद क्या है ? इसका कोई ठीक उत्तर देना कठिन
है और समाजवाद की अनेक परिभाषाएँ है। कुछ लोग शायद अस्पष्ट
ढग से सिर्फ यह सोचते है कि वह कोई अच्छी चीज है और उसका
मकसद समानता स्थापित करना है। पर यह सोच हमे किसी निष्कर्ष
पर नही पहुँचाती।" जब उनके पास कोई ठोस उत्तर नही और
उनके दिमाग मे समाजवाद की कोई निश्चित परिभाषा ही नही तो
उनका विश्वास कैसे बना ? और उन्होने किस समाजवाद के लिए
काम किया ? इस सिलसिले मे स्पष्ट बात उन्होने सिर्फ इतनी ही कही
है, "समाजवाद बुनिग्रादी तौर पर पूजीवाद से भिन्न मार्ग है तथापि
खयाल है कि दोनो का बडा अतर खत्म होता जा रहा है क्योकि
समाजवाद के बहुत से विचार धीरे-धीरे पूँजीवादी व्यवस्था का अग
बनते जा रहे है।" अर्थात् समाजवाद के विचार अपना लेने से खुद
पूँजीवाद के समाजवाद मे बदल जाने की सम्भावना है। कांग्रेस सर-
कार ने समाजवादी समाज के निर्माण का जो मार्ग अपनाया उसका
आधार भी यही है। वह लिखते है :

"इसके लिए आयोजन आवश्यक है वरना हम अपने साधनों को
अत्यन्त सीमित है, व्यर्थ खोते है। आयोजन का मतलब है प्रगति
ाधार और गति को सुदृढ बनाने का सुनिश्चित मार्ग, ताकि समाज
ाम मोर्चों पर आगे बढ सके।"

(इकनोमिक रिव्यू)

असल सवाल व्यक्तिगत सम्पत्ति का और उत्पादन-सम्बधो का है।
जीवाद ने श्रम का समाजीकरण किया, समाजवाद सम्पत्ति का

समाजीकरण करेगा। अगर कृषि के क्षेत्र मे जमीदारी खत्म न की जाये और औद्योगिक क्षेत्र मे घरेलू और विदेशी पूँजीपतियो की इजारादारी ज्यो-की-त्यो बनी रहे तो किसानो और मजदूरो की दरिद्रता कैसे दूर होगी और शोषण कैसे समाप्त होगा ? जाहिर है कि जिस समाजवाद मे जवाहरलाल का विश्वास था वह समाजवाद नही कोई और चीज है। तीन पचवर्षीय योजनाओ का हश्र वह खुद देख चुके थे और चौथी का और भी बुरा हश्र उनके उत्तराधिकारी देख रहे है। दरिद्रता और शोषण के रहते और अँग्रेज साम्राज्यवादियो से मिली इस पुरानी नौकरशाही मशीनरी के रहते आयोजन की बात करना बूढी घोडी लाल लगाम की कहावत को चिरतार्थ करना है।

मार्क्स ने समाजवाद की वैज्ञानिक परिभाषा करके पहले से प्रचलित कई प्रकार के काल्पनिक समाजवादो और उनके द्वारा फैलाये गये भ्रमो को दूर किया। इसी परिभाषा के आधार पर समाजवाद का नाम मार्क्सवाद, वैज्ञानिक समाजवाद अथवा कम्युनिज्म पडा। मगर जवाहरलाल मार्क्स की इस वैज्ञानिक परिभाषा को स्वीकार नही करते, क्योकि उनके कथनानुसार कम्युनिज्म मनुष्य की आध्यात्मिक आवश्यकताओ को पूरा नही करता, कम्युनिज्म मे व्यक्ति को समाज पर कुर्बान किया जाता है और उनका सबसे बडा एतराज यह है कि कम्युनिज्म का ताल्लुक अहिसा से है जो गांधीजी के शान्तिपूर्ण और अहिसात्मक मार्ग के एकदम विपरीत है। लेकिन जवाहरलाल जिस सरकार के १७ साल तक प्रधान मत्री रहे क्या वह हिसा ही का सगठित रूप नही है और उनके इस १७ वर्ष के शासन मे गाँधीजी के शान्तिपूर्ण मार्ग को हिन्दुस्तान की मेहनतकश जनता ने जितना भुगता है, इस काल मे किसी दूसरे देश की मेहनतकश जनता ने उतना नही भुगता होगा। और १९ सितम्बर '६२ की सरकारी कर्मचारियो की साकेतिक हडताल को कुचलने के लिए जारी किये गये अध्यादेश और पुलिस का वर्वर दमन इस शान्तिपूर्ण और अहिसात्मक मार्ग की सच्चाई

का ताजा सबूत है ।

हिंसा का आधार शोषण है। जब तक एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण होता रहेगा, मानव समाज मे हिंसा भी अनिवार्य रूप से बनी रहेगी और व्यक्ति तथा समाज के बीच की असगतियाँ भी बनी रहेगी। हिंसा और इन असगतियो को दूर करने का यह उपाय नही कि शोषक और शोषित मे प्रेरणा तथा उपदेश द्वारा ब्रह्म के कल्पित अश को जगाया—बढाया जाये, यह उपाय अमूर्त और काल्पनिक है जिसे मानव अनुभव बहुत पहले रद्द कर चुका हे। कम्युनिज्म इसका ऐतिहासिक उपाय यह बताता है कि शोषक वर्ग की प्रतिक्रियावादी सगठित हिंसा के खिलाफ क्रान्तिकारी सगठित हिंसा का प्रयोग किया जाय। जब पहले शोषण की व्यवस्था, अपने समस्त विभिन्न रूपो मे, समाप्त कर दी जायगी तभी हिंसा और व्यक्ति तथा समाज के बीच की असगतियाँ दूर होगी। उन्हे दूर करना ही कम्युनिज्म का वास्तविक ध्येय है।

जवाहरलाल जब इस बात को मानने से इनकार करते है तो मनुष्य के सदियो लम्बे अनुभव को अर्थात इतिहास के परिस्थिति-जनित दर्शन को मानने से इनकार करते हैं।

जवाहरलाल ने अपने इस "मूलभूत दृष्टिकोण" निबध मे विज्ञान के प्रति भी निराशा व्यक्त की है। उनका कहना है कि हमारे इस स्पुतनिक तथा परमाणु युग मे विज्ञान ने इतनी समस्याएं खड़ी कर दी हैं कि उनके हल का तो सवाल ही पैदा नही होता, मानवबुद्धि उन्हे समझने तक मे असमर्थ है। और फिर विज्ञान ने हिंसा और विनाश की शक्तियो को विकसित करके मनुष्य को मौत के कगार पर ला खड़ा किया है, सामाजिक सुरक्षा एकदम खतरे मे है।

इसलिए वह बुद्धि, ज्ञान और तर्क को—हर प्रकार के जीवन-दर्शन को महत्त्वहीन ठहराकर अपना निर्णय घोषित करते है

"यह वात स्पष्ट है कि असल महत्व अच्छे प्रकार के मनुष्यो का

मतलब यह है कि नवसशोधनवादियो के नजदीक मार्क्सवाद के बिना भी समाजवादी आदर्शो की प्राप्ति सम्भव है और उनके नजदीक निष्ठा का भी कोई वर्ग-आधार नही है, वह एक अमूर्त्त वस्तु है। उनके इस अमूर्त्तचिंतन से नेहरू के प्रति उनके आदर भाव का वर्ग-आधार सहज मे समझा जा सकता है।

इतिहास लेखक

एक बार की बात है, चेक दूतावास मे दावत थी। प्रधानमत्री पडित जवाहरलाल भी मौजूद थे। कुछ मित्र लेखको ने मुझसे कहा "रहबर साहब; चलिए रहबरी कीजिए, पडितजी से कुछ बाते की जाएँ।"

प्रधानमत्री से बात करने का यह कोई उचित स्थान नही था, लेकिन मैने इस पहलू पर विचार ही नही किया। इत्तफाक से वह लान मे उस समय अकेले थे। मैं रहबरी के शौक मे मित्रो के साथ आगे बढा। 'पडितजी, नमस्ते" मैंने उनके सम्मुख जाकर बड़ी नम्रता से कहा।

"नमस्ते।" पडितजी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"आपको तो क्या याद होगा?" मैने बात शुरू की, "लुधियाना अखिल भारतीय प्रजामडल सम्मेलन मे आपके साथ काम किया था।

"लुधियाना!" उन्होने दिमाग पर जोर डालते हुए दोहराया।

"जी, हाँ। फरवरी १६३६ की बात है।"

मेरे जीवन मे तो इस सम्मेलन और इस तिथि का बड़ा महत्त्व था और राजनैतिक जीवन मे शायद यह सर्वोपरी थी। पर पडितजी का जीवन तो इससे कही अधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओ, सम्मेलनो तथा तिथियो से ओत-प्रोत था। "ओह! बहुत दिन हुए" स्मृतियो के ढेर मे से जैसे इसे खोजते हुए उन्होने कहा।

"हम सब लेखक हैं।" अपने मित्रो का परिचय देते हुए मैंने विषय बदला।

"मैं भी लेखक हूँ।" पडितजी ने प्रसन्न मुद्रा मे कहा, "लेकिन राजनीति मे ऐसा उलझा हूँ कि लेखक होने की बात भूल-सी गई है।"

"मैंने आपकी पुस्तक 'विश्व इतिहास की झलक' अगस्त १९४२ की नज़रबदी के दिनो मे दो-बार पढी थी। एक बार हाल ही मे अब फिर पढी है। पहले बहुत अच्छी लगी थी, पर इस बार मन कुछ भीगा नही।"

"हाँ, वह छोटी बच्ची के लिए पत्रो मे लिखी गई थी।" पडित जी ने उत्तर दिया।

"वह तो आपकी शैली है और रोचक है। लेकिन मैं बात दृष्टिकोण की कर रहा हूँ।"

पडितजी सिर्फ मुस्कराये और आगे की तरफ पग बढा दिया।

यह वही रहस्यमयी मुस्कराहट थी, जिसे वह जनसमूह की सद्भावना प्राप्त करने के लिए यदा-कदा नाटकीय ढग से होठो पर लाने के अभ्यस्त हो चुके थे। लेकिन मैंने इस मुस्कराहट के अर्थ को समझना शुरू कर दिया था और इस भेट के दस-बारह साल बाद तो और भी भली प्रकार समझ लिया है। इस मुस्कराहट को समझ लेने के बाद जीवन के प्रति राष्ट्रीय आँदोलन के प्रति और इतिहास के प्रति उनके रुख को समझ लेना कुछ भी कठिन नही है।

"हिन्दुस्तान की कहानी" अर्थात् 'भारत की खोज' नाम की अपनी ऐतिहासिक पुस्तक लिखने का उद्देश्य अतीत को समझने और उसका वर्तमान तथा भविष्य से सम्बन्ध स्थापित करना बताते हुए जवाहरलाल ने लिखा है :

"गुजरे हुए जमाने को और उसके मौजूदा जमाने के साथ के सम्बन्ध को खोजने की इसी कोशिश ने, आज से बारह बरस पहले, अपनी लड़की के नाम लिखे गये खतों की शकल मे, मुझे 'विश्व-इतिहास

की झलक' लिखने पर आमादा किया था। मैंने कुछ सतही ढंग की चीज लिखी और जहाँ तक बन पडा सादे ढग से लिखा, क्योकि वह एक लडकी के पढने के लिए लिखी गई थी, जिसकी उम्र-पन्द्रह सोलह बरस की थी। लेकिन इस लिखने के पीछे वही तलाश और खोज थी।···"

"इसी तरह की एक तलाश ने अगरचे वह ज्यादा नजदीकी वक्त और लोगो तक महदूद थी, मुझे अपनी कहानी लिखने पर उकसाया"

इसी खोज के सिलसिले मे बारह साल बाद जब ज्यादा विचार-शील और गम्भीर हो गये थे उन्होने "हिन्दुस्तान की कहानी" लिखी क्योकि जब तक अतीत और "मौजूदा वक्त मे, जहाँ इतनी कशमकश है और हल करने के लिए इतने मसले है, एक जीती जागती कड़ी न कायम कर सके, तब तक हम इस जिंदगी को जिंदगी नही कह सकते। यह कला, कला के लिए जैसी एक चीज बन जाती है, जिसमे कोई उत्साह नही, काम करने की उमग नही, जो जिन्दगी का सार है।"

इतिहास क्या है? मनुष्य के रादियो के संघर्ष की कहानी का नाम ही इतिहास है। इस सघर्ष के विभिन्न रूप है। जैसे प्रकृति की अन्धी शक्तियो के विरुद्ध सघर्ष, अपने ही अज्ञान के विरुद्ध सघर्ष, अन्याय तथा शोषण के विरुद्ध सघर्ष, दासता और कुरूपता के विरुद्ध सघर्ष। यह सघर्ष गगा की धारा की तरह बहती, फैलती, इठलाती—एक अटूट प्रक्रिया है। किसी भी जमाने का संघर्ष उसी वक्त समाप्त नही हो जाता बल्कि एक ऐतिहासिक प्रक्रिया आने वाली घटनाओ को प्रभावित करती रहती है। हमारे विचारो पर अटूट सघर्ष के इसी प्रभाव का नाम परम्परा है। जब हम परम्परा के सूत्र को थाम लेते है तो जीवन की भुल-भुलैयो मे खोजाने का अँदेशा नही रह जाता, हम उत्साह और उमग मे भरे मजबूत कदमो से आगे बढते रहते है। अतएव इतिहास का अध्ययन करना इस परम्परा को—पुरखो

की विरासत को समझना है। लिखा है :

"मेरी विरासत क्या है ? मै किस चीज का वारिस हूं ? उस सबका, जिसे इन्सान ने दसियो हजारो साल मे हासिल किया है, उस सबका, जिस पर इसने विचार किया है, जिसका इसने अनुभव किया है या जिसे इसने सहा है या जिसमे इसने सुख पाया है, उसकी विजय की घोषणाओ का और उसकी हारो की तीखी वेदना का, उस अचरज भरी जिन्दगी का, जो इतने पहले शुरू हुई और अब भी चल रही है और जो हमे अपनी तरफ इशारा करके बुला रही है। इस सब के, बल्कि इससे भी ज्यादा के, सभी इन्सानो की शिरकत मे, हम वारिस है। लेकिन हम, हिन्दुस्तानियो की एक खास विरासत या दाय है। वह ऐसी नही कि दूसरे उससे वञ्चित हो, क्योकि सभी विरासते किसी एक जाति की न होकर सारी मनुष्य जाति की होती है। फिर भी वह ऐसी है जो हम पर खास तौर पर लागू होता है और जो कुछ हम हैं या हो सकेंगे, उसमे उसका हाथ है।"

(हिन्दुस्तान की कहानी)

जवाहरलाल विचारक और इतिहास लेखक ही नही हमारे राष्ट्रीय सघर्ष के प्रमुख नेता भी थे। इसलिए उन्होने इतिहास का अध्ययन, अध्ययन के लिए प्रस्तुत नही किया बल्कि इसका उद्देश्य सघर्ष के दौरान उत्पन्न होने वाली राजनैतिक आर्थिक, सास्कृतिक और साम्प्रदायिक समस्याओ का हल पेश करके राष्ट्रीय एकता को दृढ बनाना और आजादी के लिए लडने वाली जनता की चेतना और कर्म को उभाडकर सघर्ष को सफलता की मजिल तक पहुंचाना था। इसमे वह कहाँ तक सफल हो पाये, इसका अन्दाजा हम अपने राष्ट्रीय सघर्ष के परिणामो से सहज मे लगा सकते है। इससे हम जो कुछ बन पाये है या आगे बनने की सम्भावना है, वह अब बिलकुल स्पष्ट है।

"विश्व-इतिहास की झलक" चाहे उन्होने एक पन्द्रह सोलह बरस

की उम्र की लड़की के लिए सादा ढग से लिखी है, इससे दृष्टिकोण मे तो कोई अन्तर नही आता। राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति उनके रुख ने, कथनी और करनी के अन्तर ने उनके चितन मे जो अन्तरविरोध उत्पन्न कर दिया था, वह "मेरी कहानी" और "हिन्दुस्तात की कहानी" की तरह इसमे भी स्पष्ट झलक पडता है। भूमिका मे लिखा है :

"दिमाग में बहते हुए विचारो को पकडकर कागज पर लिखने से सोचने मे भी आसानी होती है और उनके नए-नए पहलू निकलते है।"

यह ठीक है कि भाषा विचारो को भौतिक रूप प्रदान करती है। लेकिन लिखने की प्रक्रिया मे उनके जो नए-नए पहलू निकलते हैं, उन पहलुओ को लिखने वाले का दृष्टिकोण ही निर्धारित करता है। जवाहरलाल का दृष्टिकोण पहले ही पत्र से स्पष्ट हो जाता है। लिखा है :

"इतिहास पढकर हमे यह भी सीखना चाहिए कि दुनिया ने कैसे आहिस्ता-आहिस्ता लेकिन निश्चित रूप से तरक्की की है। दुनिया के आरम्भ के सरल जीवो की जगह पर अधिक उन्नत और पेचीदा जीव कैसे आगये और कैसे सबसे आखिर जीवो का सिरताज आदमी पैदा हुआ और अपनी बुद्धि के जोर पर उसने कैसे दूसरो पर विजय पाई। बर्बरता से निकलकर सभ्यता की ओर मनुष्य की प्रगति का हाल इतिहास का विषय माना जाता है।" यह एकदम वैज्ञानिक चितन है, डार्विन के विकासवाद की सक्षिप्त व्याख्या हे। पर जवाहरलाल नेहरू अपनी इस व्याख्या पर स्थिर नही रह पाते। यहीं से अन्तर्विरोध सिर उठाता है, "लेकिन कभी-कभी जब हम इतिहास के लम्बे जमानो पर नजर डालते है तो यह विश्वास करना मुश्किल होता है कि हम लोग बहुत सभ्य या उन्नत हो गये हैं। सहयोग का अभाव आज भी बहुत काफी पाया जाता है।" और फिर तर्क को घुमा-फिराकर यहाँ तक

आगे बढा दिया है, "लेकिन अगर आपस के सहयोग और समाज की भलाई के लिए त्याग को सभ्यता की कसौटी माने तो हम कह सकते है कि इस लिहाज से दीमक और चीटिया मनुष्य जाति से अच्छी है।" यो अमूर्त्त चिंतन द्वारा "कुछ बातो मे कुछ जीवो को आदमी से श्रेष्ठ" बताकर सत्याग्रह के लिए समाज मे यथा स्थिति बनाये रखने के लिए तर्कहीन सहयोग और त्याग की गुजायश पैदा की गई है। इसी सदर्भ मे जवाहरलाल ने महान् सभ्यता और विज्ञान के चमत्कारो को व्यर्थ की डीग बताया है जो प्रतिक्रियावाद का पतनोन्मुख दर्शन है।

इसी पतनोन्मुख दर्शन को बारह साल बाद हिन्दुस्तान की कहानी मे यो प्रस्तुत किया है

"या फिर मुमकिन है कि विज्ञान की तरक्की ही नैतिक सयमो को तोडकर शक्ति और विनाश के उन भयानक साधनो को जिन्हे उसने तैयार किया है, बुरे और स्वार्थी लोगो के हाथो मे केन्द्रित कर दे, ऐसे लोगो के हाथो मे, जो दूसरो पर अधिकार करने की कोशिश मे रहते है—और इस तरह खुद अपने बडे कारनामो का खात्मा कर दे। इस तरह की कुछ बाते हम आजकल घटित होती हुई देखते है और इस युद्ध के पीछे है, मनुष्य की आत्मा का भीतरी सघर्ष।"

आपको ताज्जुब होगा कि गाँधीजी ने गीता का जो भाष्य लिखा है, उसमे भी कुरुक्षेत्र के युद्ध को मनुष्य की आत्मा का भीतरी सघर्ष बताया गया है। और जवाहरलाल ही के शब्दो मे इस सघर्ष का कारण यह है कि मनुष्य मे कुछ बात जिस तरह देवता-जैसी है उसी तरह कुछ शैतान जैसी भी है।

मतलब यह कि शैतान यानी बुराई हमारे इस वर्ग-विभाजित समाज मे नही मनुष्य के अपने भीतर है, इसलिए शोपक तथा अन्यायी के विरुद्ध लडने के बजाय अपनी और उसकी आत्मशुद्धि के लिए उपवास और व्रत किये जायें।

दरअसल जवाहरलाल ने जब "विश्व-इतिहास की झलक"

लिखी तो वह काग्रेस की बुर्जुआ राजनीति मे गांधीजी के आशीर्वाद से पदारूढ हुए थे और सत्तारूढ होने के लिए प्रयत्नशील थे। इसी प्रयत्न मे उन्होने चर्खे और सत्याग्रह की प्रतिक्रियावादी नीतियो से समझौता किया और सिर मे घाव हो जाने की परवा न करते हुए कांटो का ताज पहने रखा। लेकिन बारह बरस बाद जब "हिन्दुस्तान की कहानी" लिखी तो वह सत्तारूढ हो चुके थे और समाजवादी विचारो के प्रचार द्वारा इतनी लोकप्रयता प्राप्त कर ली थी कि और नेताओ की तो बात ही छोडिये किसी मामले पर खुद गांधीजी से उलझ जाने का सामर्थ्य उनमे पैदा हो गया था।

लेकिन इस लोकप्रियता की कीमत चुकाना भी जरूरी था और वह जवाहरलाल को यो चुकानी पडी कि शुरू-शुरू मे वैज्ञानिक विचार धारा को आधिभौतिकवाद मे गड्ड-मड्ड करते हुए जिस सकोच, दुविधा और आत्मवेदना का उन्हे एहसास होता था और जिसमे निरीह अपढ जनता को धोखा देने का एहसास भी शामिल था, वह अब नहीं रह गया था। वह दोहरा चरित्र उनका सहज स्वभाव बन चुका था और जवाहरलाल ने इस बात को यो स्वीकार किया है :

छोड गये हैं।"

अर्थात वह जवाहरलाल जो विज्ञान की, वर्ग-सघर्ष और क्रान्ति की बात क्या करता था, वह समझौते की राजनीति मे सत्तारूढ होने के लिए यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते अपने को मिटा-चुका था। निश्चित रूप से ये ऐसे निराश व्यक्ति के शब्द है, जो अपनी समस्त शक्तियाँ शिथिल हो गई महसूस कर रहा है।

इस अन्तर को समझने के लिए दोनो पुस्तको से कुछ और उदाहरण लिये जा सकते है। जैसे आत्मा के बारे मे "विश्व इतिहास की झलक" के पहले ही पत्र मे लिखा है :

"आत्मा क्या चीज है, इसे हममे से न कोई समझता है और न बता सकता है और हर एक आदमी आत्मा का अर्थ अपने-अपने खयाल के मुताबिक अलग-अलग किया करता है।"

लेकिन "हिन्दुस्तान की कहानी" लिखते समय "शरीर के भौतिक विनाश के बाद आत्मा के बने रहने" मे बल्कि "पुनर्जन्म के सिद्धान्त मे भी दलील जान पडती है।" और मजे की बात यह है कि वह मनुष्य की आत्मा के भीतरी सघर्ष को युद्ध का कारण समझने लगते हैं। इसके विपरीत "विश्व इतिहास की झलक मे "१९१४-१८ के महायुद्ध" का बयान यो शुरू होता है :

"मैंने इस युद्ध के कुछ कारणो की जाँच करने की कोशिश की है : किस तरह पूंजीवादी उद्योग-प्रधान देशो की लालची-वृत्ति और साम्राज्यवादी शक्तियो की प्रतिद्वद्विताए टकराई और उनके कारण सघर्ष लाज़िमी हो गया, इनमे से हर देश के उद्योगपति फायदा उठाने के लिए किस तरह अधिकाधिक अवसर और क्षेत्र चाहते थे, किस तरह साहूकार लोग खूब रुपया कमाने की धुन मे थे, किस तरह युद्ध-सामग्री बनाने वाले लम्बे-चौड़े मुनाफे कमाना चाहते थे। बस, ये लोग युद्ध मे कूद पडे..."

सामंतवाद और पूंजीवाद मे विचारधारा का जो सघर्ष था,

उसका उल्लेख करते हुए लिखा था :

"अन्य देशो की तरह यूरोप मे भी, तथा अन्य धर्मों की तरह ईसाई धर्म मे भी पुरानी धारणा यह थी कि पाप और दु ख सभी मनुष्यो को अनिवार्य रूप से भोगने पडते है। धर्म ने मानो इस ससार मे दरिद्रता तथा मुसीबतो को एक स्थाई और यहाँ तक कि प्रतिष्ठ आसन दे दिया था। धर्म के प्रलोभन और पुरस्कार तमाम किसी परलोक के लिए थे, यहाँ तो हमे यही उपदेश दिया जाता था कि सतोष के साथ अपने भाग्य के भोगो को बर्दाश्त करते रहे और किसी मौलिक परिवर्तन के पीछे न पडे। दान-पुण्य, यानी गरीबो को टुकडे डालने की वृत्ति को प्रोत्साहित किया जाता था। मगर गरीब या गरीबी पैदा करने वाली प्रणाली का नाश करने की कोई कल्पना नही थी। स्वाधीनता और समानता के विचार ही चर्च और समाज के अधिकार वादी दृष्टिकोण के विरोधी थे।" (विश्व इतिहास की झलक)

और बारह बरस बाद इसी विषय का उल्लेख यो किया है :

"धर्म, शब्द का व्यापक अर्थ लेते हुए हम देखेगे कि इसका सम्बन्ध मनुष्य के अनुभव के उन प्रदेशो से है, जिनकी ठीक-ठीक माप नही हुई है, यानी जो विज्ञान की निश्चित जानकारी की हद मे नही आया है।...शायद विज्ञान के साधारण तरीके और यह बात कि उसका सम्बन्ध दृश्य जगत और उसकी क्रियाओ से है, उसे उन बातो मे पूरी तरह कारगर न होने दे, जो आत्मिक, कलात्मिक, आध्यात्मिक और अदृश्य जगत से सम्बन्ध रखने वाली हैं। जो हम देखते, सुनते और अनुभव करते है, यानी दिखाई पडने वाली और समय और अतरिक्ष के भीतर परिवर्तनशील दुनिया तक ही जिन्दगी महदूद नही है।

धर्म की यह व्याख्या और अनदेखी दुनिया की सृष्टि निश्चित रूप से अधविश्वास फैलाने वाला प्रतिक्रियावादी दर्शन है। कारण यह कि जवाहरलाल का भावी यथास्थिति से मुकम्मिल समझौता हो चुका था और बारह वरस पहले अपने को सत्तारूढ करने के लिए उन्हे जिन क्रांतिकारी और प्रगतिशील विचारो का प्रदर्शन करना पडता था, उनकी भी अब जरूरत नही रह गई थी। अतएव उनके चिन्तन मे जो अन्तर्विरोधी प्रतिक्रियावादी तत्त्व था उसकी मात्रा कम होने के वजाय कही ज्यादा बढ गई थी। "विश्व इतिहास की झलक" लिखते समय वर्णव्यवस्था तथा जाति-पाँति के बारे मे उनके विचार थे

"आज के समाज के सदर्भ मे जाति प्रथा और उसके साथ की तमाम दूसरी चीजे पिछडी, प्रतिक्रियावादी वन्धनपूर्ण और प्रगति के मार्ग मे अवरोध पैदा करने वाली है। इसके अन्तर्गत स्थिति और अवसरो की समानता नही हो सकती, न तो इसके अन्तर्गत राजनैतिक और न ही आर्थिक जनतन्त्र हो सकता है, इन दो मान्यताओ मे टकराव लाजिमी है और उस टकराव मे इनमे से एक ही बच सकेगा।"

और "हिन्दुस्तान की कहानी" लिखते समय इसी वर्ण-व्यवस्था के बारे मे उनका रुख यह था :

" 'वर्ण' या 'जाति' लफज के इस्तेमाल से कुछ गलतफहमी होती है, क्योंकि अलग-अलग लोग इसके अलग-अलग माने लगाते है। साधारण यूरोपीयन या उसी के जैसे विचारो वाला हिन्स्दुतानी यह समझता है कि यह केवल वर्णो को पत्थर की तरह मजबूत करके अलग-अलग कर देना है और यह महज इस बात की तरकीव है कि वर्ग-भेद बना रहे, ऊँचे वर्ग के लोग सदा-सदा के लिए चोटी पर बने चले जाये और नीचे वर्ग के लोग सदा-सदा के लिए नीचे बने रहे। इस विचार मे सचाई है···लेकिन सचाई का यह महज एक पहलू है और इस कैफियत से यह नही पता चलता कि आखिर इस व्यवस्था

मे इतनी शक्ति और मजबूती क्योकर रही कि यह आज तक चली आ रही है। उसने बौद्ध-धर्म की जबर्दस्त टक्कर को झेल लिया और अफगान और मुगलशासन और इस्लाम के प्रसार की कई सदियाँ ही नही देखी; बल्कि अनगिनत हिन्दुसुधारको के, जिन्होंने इसके खिलाफ अपनी आवाजे बुलन्द की, वार सहे और यह तो सिर्फ आजकल ही ऐसा हुआ है कि उसकी बुनियाद पर ही हमला हो रहा है और इसका वजूद ही जोखिम मे है।···जिन्दगी के हालात मे तब्दीली आ गई है, विचार के ढग बदल रहे हैं, यहाँ तक कि अब गैर-मुमकिन जान पडता है कि वर्णव्यवस्था कायम रह सके।" लेकिन "इसकी जगह क्या चीज ले लेगी, यह मै नही कह सकता क्यो कि सिर्फ वर्ण-व्यवस्था ही जोखिम मे नही है। सघर्ष है सामाजिक सगठन के मसले पर दो जुदा-जुदा नजरियो मे। एक तरफ है पुराना हिन्दु विचार कि वर्ण या गिरोह सगठन की बुनियादी इकाई है: दूसरी तरफ पच्छिम का विचार है, जो बहुत ज्यादा व्यक्तिवाद पर जोर देता है, जो व्यक्ति को वर्ग से ऊपर रखता है।"

घुमा-फिराकर खूबसूरत ढग से वर्णव्यवस्था की वकालत की गई है और इसके लिए बोदा अवैज्ञानिक तथा प्रतिक्रियावादी तर्क प्रस्तुत किया गया है हिन्दू समन्वयवाद और पच्छिम के व्यक्तिवाद की विचारधारा के सघर्ष का।

जवाहरलाल जहाँ क्रान्ति की बात को घुमा-फिराकर टालते है, वहाँ सुधारवाद की बात को बडे सीधे ढग से और उत्साह के साथ बयान करते हैं। लिखा है .

"इसमे मुझे जरा भी शक नही कि सदियो मे हिन्दुस्तान के ह्रास के कारणो मे से एक खास कारण औरतो के पर्दे मे रखने का रिवाज है। मुझे इसका और भी ज्यादा यकीन है कि इस वहशियाना रिवाज का पूरी तरह खत्म होना हमारी समाजी जिन्दगी की तरक्की के लिए लाजिमी है। औरत को इससे नुकसान पहुँचता है यह जाहिर-सी बात है;

लेकिन जो नुक़सान मर्द को पहुँचता है, जो बढ़ते हुए बच्चे को पहुँचता है जिसे अपना बहुत-सा वक्त औरतो के साथ पर्दे मे बिताना पडता है वह कम बडा नही है। खुशकिस्मती से यह रिवाज हिन्दुओ मे बहुत तेजी से उठ रहा है और मुसलमानो मे भी कुछ धीमी रफ्तार से। पर्दे के उठाने मे सबसे ज्यादा हाथ कांग्रेस की सियासी और समाजी तहरीको का रहा है जिन्होने बीच के वर्ग की दसियो हजार औरतो को अपनी ओर खीचा है और जो किसी-न-किसी सार्वजनिक धन्धे मे शरीक हुई है। गांधी जी पर्दे के रिवाज के कट्टर विरोधी रहे है और है और उन्होने इसे "दूषित और बर्बर रिवाज" बताया है, जिसने औरतो को पिछडा हुआ और तरक्की से महरूम रखा है :

(हिन्दुस्तात की कहानी)

जब "मेरी कहानी" और "विश्व इतिहास की झलक" लिखी तब हमारी राजनीति मे समाजवादी बिचारो का प्रभाव बढ रहा था और जवाहरलाल को अपने-आपको समाजवादी और क्रान्तिकारी सिद्ध करना था, इसलिए इन दो पुस्तको मे बुर्जुआ ससदवाद और चुनावकी राजनीति की भी आलोचना मिलेगी। जैसे 'विश्व इतिहासकी झलक' मे लिखा है :

"वोट देने का अधिकार राजनैतिक सत्ता का प्रतीक है, और यह मान लिया गया हे कि अगर हर एक आदमी को अधिकार हो, तो उसे राजनैतिक सत्ता मे बराबर का हिस्सा मिल जायगा। इसलिए सारी उन्नीसवी सदी' मे लोकतत्रवाद की मुख्य माग यह थी कि मताधिकार बढाया जाय।......

"मगर विचित्र बात यह हुई कि जब ज्यादातर लोगो को वोट का अधिकार मिल गया, तब उन्हे मालूम पडा कि इससे उनकी हालत मे कोई बडा अन्तर नही हुआ। वोट का अधिकार मिल जाने पर भी राज्य मे या तो उन्हे कुछ भी सत्ता नही मिली या बहुत ही थोडी मिली। भूखे आदमी को मताधिकार किस काम का ? असली सत्ता

खत्म हो जायँगे। यह हमारी मेहनतकश जनता को बुर्जुवा ससदवाद—चुनाव की राजनीति के ढर्रे पर लगाने की समझी-सोची कोशिश थी, क्योंकि युद्ध के बाद "जन-सत्ता वाली" हुकूमत पा जाने का जो विश्वास पैदा हो गया था, उसे जवाहरलाल ने इसी पुस्तक के "तलाश" अध्याय मे यो व्यक्त किया है

"फिर गुजरे हुए जमाने की यह विशाल तस्वीर धीरे-धीरे मौजूदा जमाने की बदनसीबी मे बदल जाती है। जबकि हिन्दुस्तान अपने बीते दिनो के बडप्पन के बावजूद एक गुलाम मुल्क है और इंगिलस्तान का पुछल्ला बना हुआ है और सारी दुनिया एक भयानक और विध्वसकारी लडाई के शिकजे मे है और इसान को वहशी बनाये हुए है। लेकिन पाँच हजार बरसो की इस कल्पना ने मुझे एक नई निगाह दी और हाल के जमाने का बोझ कुछ हल्का जान पडने लगा। अग्रेजी सरकार की एक सौ अस्सी साल की हुकूमत हिन्दुस्तान की लम्बी कहानी की महज एक दुखदाई घटना जान पडती है। वह फिर सभलने लगा है और इस अध्याय के आखिरी सफे का लिखा जाना शुरू हो गया है। दुनिया भी इस वहशतनाक हालत को पार करेगी और एक नई नीव पर अपना निर्माण करेगी।"

युद्ध के कारण इसान को वहशी बना हुआ बताना, उस पूंजीपति शोषक वर्ग को नजर से ओझल करना है, जो इस वहशत के लिए दरअसल जिम्मेदार है जो मुनाफे की हविस और मडियो के बटवारे के लिए युद्ध छेडता है। मनुष्य के बारे मे यह अमूर्त चिंतन जन-विरोधी बुर्जुआ दृष्टिकोण है, जिसे जवाहरलाल ने यो आगे बढाया है।

"मैं अपने जैसे या अपने वर्ग के लोगो को सराहने वाला नही था, लेकिन मुझे उम्मीद थी कि हो-न-हो, वही हिन्दुस्तान की हिफाजत की लडाई मे आगे आयेगा।" यानी राष्ट्रीय स्वाधीनता की लडाई लडने का श्रेय सिर्फ बुर्जुवा वर्ग को प्राप्त है, "बीच का वर्ग

अपने को कैद और जकडा हुआ पाता था और खुद बढना और तरक्की करना चाहता था और चूँकि अंग्रेजी हुकूमत के चोराटे मे गिरफ्तार रहते हुए उसके लिए ऐसा करना मुमकिन न था, इस हुकूमत के खिलाफ उसमे बगावत का जज्बा पैदा हो गया, फिर भी यह जज्बा उस ढर्रे के खिलाफ नही थी, जो हमे पीछे डाल रहा था। दरअसल यह महज अंग्रेजो बागडोर को बदलकर, उसे कायम रखना चाहता था। यह बीच का वर्ग खुद इस ढाँचे की पैदावार था और इस वर्ग के लिए यह मुमकिन न था कि उसे ललकारे और उखाडकर फेक दे।"

दरअसल यह खुद कॉंग्रेस की, हमारे इजारेदार पूंजीपति वर्ग की राजनीति थी जो अंग्रेजो बागडोर को बदलकर हमे पीछे की तरफ ले जाने वाले इस औपनिवेशिक ढाँचे की सत्ता अपने हाथ मे लेना चाहती थी। लेकिन अपने इरादो को छिपाने के लिए जवाहरलाल ने इसे मध्यवर्ग के जिम्मे मढ दिया है और अपने आप को और अपने वर्ग को क्रांन्तिकारी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। और देखिए :

"आम जनता की मैं आदर्शवादी कल्पना नही करता हूँ, और जहाँ तक हो सकता है, अमूर्त रूप से उसका खयाल करने से बचता हूँ। हिन्दुस्तान की जनता इतनी विविध और विशाल होते हुए भी मेरे लिए बडी वास्तविक है। मैं उसका खयाल अस्पष्ट गुटो की शक्ल मे नही, बल्कि व्यक्ति के रूप मे करना चाहता हूँ। यह हो सकता है कि मैं उनसे कोई बडी उम्मीदे नही रखता था, इस लिए मुझे कोई मायूसी नही हुई। जितनी मैने आशा कर रखी थी, उससे मैंने उन्हे बढ़कर ही पाया। मुझे ऐसा जान पडा कि उनमे जो मजबूती और अदरूनी ताकत है, उसकी वजह यह है कि वे अपनी पुरानी परम्परा अब अपनाये हुए है।"

कितना गहरा और कुटिल तर्क है! देश की आम जनता को

आर्थिक आधार पर मजदूरो, किसानो और मध्य वर्ग मे और वर्ण-व्यवस्था के आधार पर शोषित और पीडित जातियो मे विभाजित देखना आदर्शवादी कल्पना है। उनके लिए यह जनता वास्तविक तब बनती है, जब वह उसका खयाल व्यक्तियो के रूप मे करते हैं। मतलब यह कि अब जब सत्ता की बागडोर कांग्रेस के हाथ मे आने वाली है तो आम जनता के लिए वर्गाधार पर सगठित होकर सघर्ष जारी रखने की जरूरत नही रह जाती। बेहतर यह है कि वर्गो और जातियो के बजाये वह अपने बारे मे व्यक्तियो के रूप मे खयाल करना सीखे और अपनी प्राचीन सस्कृति की महान परम्परा और अन्दरूनी ताकत पर, जो आत्मा और पुनर्जन्म के विश्वास से उत्पन्न होती है, गर्व करती हुई गरीबी मे भी खुश रहे, जैसाकि वह आर्थिक शोषण और जाति-पाँति के धार्मिक दमन के बावजूद सदियो से रहती आई है।

जवाहरलाल जानते थे कि भारतीय जनता मे वर्ण-व्यवस्था के रक्षको ने आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म का विश्वास सदियो के धार्मिक प्रचार द्वारा इतना गहरा पैठा दिया है कि वह घोर व्यक्ति-वादी बन गई है। जब तक उसमे यह विश्वास बना रहेगा, उससे क्रान्ति की, शोषण की इस बर्बर व्यवस्था को उखाड़ फेकने की उम्मीद नही की जा सकती और जवाहरलाल तथा दूसरे कांग्रेसी नेताओ ने उससे कोई ऐसी बडी उम्मीद की भी नही थी। वे तो इसी राजनैतिक और सामाजिक ढाँचे के भीतर सुधारवादी ढग से जिस हद तक लडाना चाहतेथे, जनता उससे कही बढकर लडी और लड़ी इस लिए कि :

"हिन्दुस्तान की आजादी के लिए पिछली चौथाई सदी की लडाई और अग्रेजी सरकार से मोर्चा लेने मे मेरे मन मे और बहुत से और लोगो के मन मे जो ख्वाहिश रही है, वह उसकी जीवन शक्ति को फिर जगाने की ख्वाहिश रही है। .... दरअसल हमारा मकसद

उनमे एक अन्दरूनी ताक़त पैदा करना था—यह जानते हुए कि और बाते खुद-ब-खुद आ जायेगी। हमे पीढियो की गुलामी और एक मग-रूर विदेशी ताकत की अधीनता को मिटा देना था।"

(हिन्दुस्तान की कहानी)

मतलब यह कि कांग्रेस के बुर्जुआ नेताओ के मन मे अंग्रेज की गुलामी के खिलाफ लडने की ख्वाहिश पैदा हुई और इसके लिए उन्होने जनता मे अन्दरूनी ताकत पैदा की और उसे अपना मकसद पूरा होने की हद तक लडाया। जनता मे यह अन्दरूनी ताकत पैदा करने का सबसे ज्यादा श्रेय "महात्मा" गाधी को प्राप्त है क्योकि वह अपने भीतर एक अलौकिक शक्ति—एक अज्ञात तत्त्व लेकर पैदा हुए थे, हमारे इस युग के अवतार थे। "मध्य वर्ग की बेवसी : गाँधीजी का आगमन" शीर्षक तले अंग्रेजो की दमनकारी नीति का उल्लेख करते हुए लिखा है :

"ऐसा मालूम पडता था कि किसी सर्व शक्तिमान राक्षस के चुँगल मे हम बेबस हैं, हमारे जिस्म के हिस्सो को लकवा मार गया है और हमारे दिमाग मुर्दा हो गए है। किसान वर्ग दब्बू था और उसमे डर समाया हुआ था, कारखाने के मजदूरो की हालत भी उससे कोई बेहतर न थी। मध्यम वर्ग के और पढे-लिखे लोग, जो इस अँधेरे वातावरण मे रोशनी दिखा सकते थे, खुद ही इस अँधेरे मे डूबे हुए थे।......

"हम क्या कर सकते थे? गरीबी और पस्त हिम्मती की इस दलदल से, जो हिन्दुस्तान को अपने अन्दर खीचे जाती थी, हम उसे किस तरह बाहर ला सकते थे?......

"और तब गाँधीजी का आना हुआ। गाँधीजी उस ताजी हवा के उस प्रबल प्रवाह की तरह थे, जिसने हमारे लिए पूरी तरह फैलना और साँस लेना सम्भव बनाया। वह रोशनी की उस किरण की तरह थे, जो अन्धकार मे पैठ गई और जिसने हमारी आँखो के सामने से

अन्धकार के पर्दे को हटा दिया..... "

(हिन्दुस्तान की कहानी)

बारह-तेरह साल पहले इसके एकदम विपरीत जवाहरलाल ने यह भी लिखा था :

"कोई नेता शून्य मे जादू की लकडी फेरकर जन-आन्दोलन नही खड़ा कर सकता। हाँ, एक विशेषावस्था पैदा होने पर उनसे लाभ उठा सकता है, उन अवस्थाओ से लाभ उठाने की तैयारी कर सकता है, लेकिन खुद उन अवस्थाओ को पैदा नही कर सकता।"

(मेरी कहानी)

जब गाँधीजी नेता बने तब वास्तविक स्थिति यह थी कि युद्ध के दौरान मेहनतकश जनता का जो शोषण हुआ, उससे वर्ग-सघर्ष तेज हो गया था, मजदूर, किसान तथा मध्य वर्ग के लोग अपने आर्थिक दबाव से स्वत लडने पर आमादा हो गए थे। उस समय देश का जो वातावरण था सितम्बर १९२० के काँग्रेस के विशेष अधिवेशन मे उसके बारे मे अधिवेशन के अध्यक्ष ला० लाजपतराय ने यह मत व्यक्त किया था—"देश क्रान्ति के मुहाने पर खडा है, पर क्रान्ति हम नेताओ के स्वभाव और संस्कार के अनुकूल नही है।"

गाँधीजी ने चर्खा कातने और सत्याग्रह करके जेल जाने का कार्य-क्रम इसलिए रखा था कि जनता के जोश को सुधारवाद की परिधि मे सीमित रखा जाये। लेकिन जब आन्दोलन इस परिधि के बाहर फैला और उसने क्रान्तिकारी रूप धारण शुरू किया तो गाँधीजी ने चौरी-चौरा की घटना के बाद चट बन्द कर दिया। हमारी राष्ट्रीय एकता टूटी, देश म पस्त हिम्मती फैली और साम्प्रदायिक दगो का वातावरण बना। तब खुद जवाहरलाल ने इस स्थिति पर विक्षोभ व्यक्त करते हुए लिखा था कि अगर ध्येय स्पष्ट हो और लडाई का ढग सही हो तो जनता हार के बावजूद लडने के लिए जल्दी ही दोबारा तैयार हो जाती हे। जवाहरलाल नेहरू के शब्द ये है

'असली बात पीछे हटना या दिखावटी हार होना नही है, बल्कि सिद्धात और आदर्श है। अगर जनता इन उसूलो का तेज कम न होने दे तो नए सिरे से ताक़त हासिल करने मे देर नही लगती। लेकिन १९२१ और १९२२ मे हमारे सिद्धान्त और हमारा लक्ष्य क्या था? एक धुधला स्वराज्य, जिसकी कोई स्पष्ट व्याख्या न थी और अहिंसात्मक लडाईकी एक खास पद्धति···जो हजारो लोग जेल गए थे, वे भी क्षणिक जोश मे आकर और यह उम्मीद करते हुए कि तमाम किस्सा कुछ ही दिनो मे तय हो जायगा।"

(मेरी कहानी)

परिस्थिति और घटनाओ की यह जो व्याख्या है मार्क्सवाद के अध्ययन की देन है और जवाहरलाल ने "मार्क्सवाद" शीर्षक तले लिखा है: "मार्क्स इतिहास को इस तरह देखता था कि वह अनिवार्य वर्ग-सघर्ष की महान् प्रक्रिया है। इतिहास को इस दृष्टिकोण से देखने का तरीका, जो मार्क्स ने समझाया, इतिहास की भौतिक व्याख्या कहलाता है।" (विश्व इतिहास की झलक)

अपने वर्ग-अन्तर विरोधो के बावजूद जनता मे लोकप्रिय बनने और राष्ट्रीय आंदोलन मे उसका सहयोग प्राप्त करने के लिए जवाहर लाल ने "मेरी कहानी" और 'विश्व इतिहास की झलक' मे इतिहास के इस भौतिकवादी दृष्टिकोण का अक्सर प्रयोग किया है, जिससे मार्क्सवाद का कम ज्ञान रखने वाले पाठक मे जवाहरलाल को समाजवादी समझ लेने का भ्रम पैदा हो जाता है और यह भ्रम शुरू-शुरू मे मुझे भी हुआ था और जवाहरलाल का उद्देश्य भी पाठक मे यह भ्रम पैदा करना ही था। लेकिन "हिन्दुस्तान की कहानी" लिखते समय वैज्ञानिक तथा मार्क्सवादी दृष्टिकोण को लगभग त्याग दिया था।

समस्याओं का हल पेश करना बताया है; लेकिन साथ ही यह भी लिख दिया है : "इस विषय को देखने का मेरा ढग लाजिमी तौर पर अक्सर एक निजी ढग होगा।"

'निजी ढग' का मतलब है व्यक्तिवादी ढग, पतनोन्मुख बुर्जुआ का आदर्शवादी ढग, अवैज्ञानिक ढग। ढग या दृष्टिकोण व्यक्ति का नही हमेशा वर्ग का होता है। जब दृष्टिकोण निजी अर्थात् अवैज्ञानिक हो तो उसके द्वारा जो व्याख्या की जायगी, वह ऐसी ही होगी जैसी "मध्य वर्ग की बेबसी · गाँधी जी का आगमन" शीर्षक तले देश की राजनैतिक स्थिति की की गई है। बुद्ध, अशोक और अकबर आदि की ऐतिहासिक भूमिका की व्याख्या भी इसी तरह अमूर्त और अवैज्ञानिक है।

मार्क्स के मतानुसार सामाजिक जीवन का भौतिक आधार—उसकी अन्तरवस्तु, आर्थिक विकास है जबकि सवैधानिक, राजनैतिक और धार्मिक-दार्शनिक विकास इस अन्तरवस्तु का सैद्धान्तिक रूप है, उसका ऊपरी ढाँचा है। मार्क्स इससे निष्कर्ष निकालता है कि आर्थिक आधार के बदलते ही पूरे का पूरा ऊपरी ढाँचा कमो-वेश बडी तेजी से बदल जाता है।

इस नियम के अनुसार देखा जाए तो गीता वर्ण-व्यवस्था के ठेकेदारो का, व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा का, सूद-दर-सूद का दर्शन है। इसीलिए उसे इतनी धार्मिक मान्यता प्रदान कर दी गई है। लेकिन जवाहरलाल ने आर्थिक या वर्ग-आधार बताये विना ही अमूर्त ढग से 'गीता' के वारे में लिखा है ·

"वौद्ध-काल मे पहले जव इसकी रचना हुई, तव से इसकी लोकप्रियता और प्रभाव हटे नही हैं और आज भी हिन्दुस्तान मे इसके लिए पहले जैसा आकर्षण वना हुआ है। विचार और फिलसफे का हर एक सम्प्रदाय इसे श्रद्धा से देखता है और अपने-अपने ढग से इसकी व्याख्या करता है। सकट के वक्त जव आदमी का दिमाग

सदेह से सताया हुआ होता है और अपने फर्ज के बारे दुविधा उसे दो तरफ खीचती होती है, वह रोशनी और रहनुमाई के लिए गीता की तरफ और भी झुकता है, क्योकि यह सकट काल के लिए लिखी गई कविता है—राजनैतिक और सामाजिक सकटो के अवसर के लिए और उससे भी ज्यादा इसान की आत्मा के सकट काल के लिए।"

जवाहरलाल ने साहित्य और कला को भी साथ-साथ लिया है, लेकिन लिखने का ढग वही अमूर्त और अवैज्ञानिक है। एक उदाहरण देखिए :

"कालिदास की एक बडी कविता है—'मेघदूत'। एक प्रेमी है, जिसे पकडकर अपनी प्रेयसी से अलग कर दिया गया है, बरसात के मौसम मे अपनी गहरी चाह का सदेश उसके पास पहुँचाने के लिए वह बादल से कहता है।" इसके बाद किसी अमरीकी विद्वान राईडर का हवाला है, जिसमे बताया गया है कि इस कविता के पहले आधे हिस्से मे बाहरी प्रकृति का बयान है, दूसरे आधे मे इसानी दिल की तस्वीर है। और लिखा है, "कालिदास ने पाँचवी सदी मे वह बात समझ ली थी, जिसे यूरप ने उन्नीसवी सदी तक न समझा।" बात यह है कि "दुनिया आदमी के लिए नही बनी और यह कि वह अपना पूरा रुतबा तभी हासिल करता है, जब कि वह इस जिदगी की शान और कीमत समझ लेता है जो इसानी जिदगी से जुदा है। कालिदास ने इस हकीकत को पा लिया था, यह उसकी दिमागी ताकत का शानदार सबूत है..."

जवाहरलाल किसी सिलवा लेवी, किसी बार्थ, किसी डाडवेल तथा किसी मिसेज रीज डेविडस के हवाले खूब देते रहते हैं। लेकिन इन हवालों से वह खुद अथवा पाठक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता और ये विदेशी लेखक खुद नही पहुँचे होते। उदाहरण के लिए अरविन्द घोष ने "रिजन आफ इडिया" मे अपने ऐतिहासिक

संदर्भ मे 'मेघदूत' की अत्यन्त उपयुक्त व्याख्या की है। उन्होने लिखा है कि उस समय देश का एकीकरण हो रहा था और यक्ष बादल को जो संदेश देता है उसमे दक्षिण से उत्तर तक भारत की नदियो, पहाडो, मैदानो और ऋतुओ का वर्णन करके देश की महानता, विशालता और सौंदर्य को साकार बना दिया है और यो कालिदास ने एकीकरण की प्रक्रिया मे सहायता की है।

एक ऐतिहासिक प्रक्रिया अपने ही समय मे नही आने वाले वक्तो मे भी सक्रिय रहती है और हमारे जीवन को प्रभावित करती रहती है। इसलिए वर्तमान तथा भविष्य की कुछ समस्याएँ इतिहास की देन होती है, जो अतीत की सही समझ द्वारा ही हल हो सकती है। लेकिन अगर अतीत का विश्लेपण अवैज्ञानिक और समझ गलत हो तो समस्याएँ सुलझने के बजाय उलटा उलझ जाती हैं, भ्रम फैलते है और समूचे राष्ट्र को मुसीबतो का सामना करना पडता है। जवाहर-लाल ने समस्याओ को सुलझाने के बजाय उलटा उलझाया है। उदा-हरण लीजिए, लिखा है :

"औरगजेब अपने मौजूदा जमाने को भी समझ न पाया, वह उलटी चाल चलने वाला आदमी था और अपनी सारी काबिलियत और उत्साह के बावजूद उसने अपने पूर्वजो के काम को मिटाने की कोशिश की। वह धर्मांध और नीरस आदमी था और उसे कला या साहित्य से कोई प्रेम न था। हिन्दुओ पर पुराना और घृणित जजिया कर लगाकर और उनके बहुत से मदिरो को तुडवा कर उसने अपनी बहुत वडी प्रजा को बुरी तरह नाराज कर लिया। उसने गर्वीले राजपूतो को भी, जो मुगल सल्तनत के खभे थे, नाराज कर दिया। उत्तर मे सिख उठ खडे हुए जो हिन्दु और मुसलमानी विचारो के एक प्रकार के समन्वय की नुमाइदगी करने वाले लोग थे, लेकिन जिन्होने ने दमन से वचने के लिए एक फौजी बिरादरी बना ली थी। हिन्दुस्तान के पच्छिमी समुद्र तट के करीव के योद्धा मराठो को भी उसने नाराज

कर दिया, जो प्राचीन राष्ट्र कूटो के वशज थे और जिनके यहाँ उस वक्त एक चमत्कारी सेना-नायक पैदा हो चुका था।"

ये वही दलीले है जो अग्रेजो ने हमारी पाठ्य-पुस्तको मे हिन्दु-मुसलमानो मे नफरत फैलाने के लिए शामिल की थीं। नई बात अगर कुछ है तो यह है कि सिखों को हिन्दू और मुसलमानी विचारो के समन्वय की नुमाइंदगी करने वाले कहा गया है, जिसमे कोई तर्क नही, कोई वास्तविक आधार नही। मराठों मे जो 'चमत्कारी सेना नायक' पैदा हो चुका था, उसके बारे मे आगे लिखा है :

"शिवाजी उभरती हुई हिन्दू राष्ट्रीयता का प्रतीक था और पुराने साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करता था, वह दिलेर था और उसमें नेतृत्व के बडे गुण थे। उसने मराठो को एक मजबूत और संगठित फौजी दल का रूप दिया, उन्हे एक कौमी भूमिका दी और ऐसी ताकत बना दिया, जिसने मुगल सल्तनत को बिगाड़ कर छोडा।"

(हिन्दुस्तान की कहानी)

औरंगजेब को धर्मान्ध और शिवाजी को हिन्दू-राष्ट्रीयता का प्रतीक कहना इतिहास को विकृत करना है। व्यक्ति ऐतिहासिक परिस्थितियो को नहीं बनाते बल्कि वे खुद उन परिस्थितियों की पैदावार होते है। अकबर और उसके उत्तराधिकारियो ने धर्म के प्रति जो उदार नीति अपनाई वह उनकी सामंती अर्थ-व्यवस्था ही के ऊपरी ढाँचे का एक अग थी। उस समय इस अर्थ-व्यवस्था के भीतर उद्योग-धधे विकसित हो रहे थे और व्यापार बढ़ रहा था जिससे सरकार को आम जनता का सहयोग प्राप्त था। ऐसी स्थिति मे शासक का भी जनता के प्रति उदार होना स्वाभाविक था। ऐसी परिस्थिति मे इग्लैंड की मलिका एलिजबेथ ने भी धर्म के प्रति उदार नीति अपनाई थी। लेकिन बाद मे पूंजीवाद की नई शक्तियो का सामतवाद से सघर्ष तीव्र हुआ तो ऐलिजबेथ के उत्तराधिकारी कट्टर

कैथौलिक बन गये ।

हिन्दुस्तान विभिन्न जातियो का विशाल देश है और हर एक जाति का अपना एक विशेष साँस्कृतिक चरित्र है। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के जमाने मे जहा उद्योग-धन्धो की उन्नति हो रही थी और व्यापार बढ रहा था, वहाँ इन विभिन्न जातियो का यह सास्कृतिक चरित्र भी विकसित हो रहा था। लेकिन औरगजेब के जमाने मे सामती अर्थ-व्यवस्था के भीतर और विकसित होने की सम्भावना समाप्त हो गई थी। इसलिए इस अर्थ-व्यवस्था के विरुद्ध जातियो के विद्रोह वक्त का तकाजा थे। अगर मराठो के विद्रोह को हिन्दू राष्ट्रीयता का नाम दिया जाय, तो जाटो और सिखोके विद्रोह के बारे मे क्या कहा जायगा? और खुशहाल खाँ खटक की रहनुमाई मे पठानो ने औरगजेब के खिलाफ जो विद्रोह किया, वह कौन-सी राष्ट्रीयता का विद्रोह था? यह ठीक है कि इन विद्रोहो के पीछे जातीयता की जो भावना थी, उसमे धार्मिक और सामती तत्वो का भी समावेश था। लेकिन पुरानी सामती अर्थ-व्यवस्था के टूटने और नई पूँजीवादी व्यवस्था के द्वारा उसका स्थान ग्रहण करने की ऐतिहासिक प्रक्रिया की यह सिर्फ एक धुधली सी शुरूआत थी। अगर विदेशी हस्तक्षेप इस प्रक्रिया को बीच ही मे न रोक देता तो यह सघर्ष लम्बा-बहुत लम्बा चलता और इस सघर्ष मे न सिर्फ सामती अर्थ-व्यवस्था वल्कि उसका सामाजिक ढाँचा—यह क्रूर वर्ण-व्यवस्था भी समाप्त होती और इसके खडहरो पर एक सुन्दर, सुडौल और वैज्ञानिक विचारो वाले नये भारत का निर्माण होता ।

इतिहास की इस भौतिक व्याख्या के वजाय, जवाहरलाल ने व्याख्या का जो निजी ढग अपनाया, उससे प्रगतिवाद की नही प्रतिक्रियावाद की शक्तियोको ही बल मिलता है। वैसे यह निजी ढंग उनके वर्ग-स्वभाव और काग्रेस की प्रतिक्रियावादी नीतियो के अनुकूल था और वह अपने इस निजी ढग के दोषो और सीमाओ को खूब

समभते थे। इसी पुस्तक के अतिम पृष्ठो मे लिखा है :

"जिस तरह किसी व्यक्ति की आशाओ और आशंकाओ के बीच सही समतौल पा लेना मुश्किल है, उसी तरह किसी आदमी के खयालो पर उसकी ख्वाहिशों की छाप रोकना भी मुश्किल है। हमारी ख्वाहिशे ऐसी दलीलो की तलाश मे रहती हैं, जो उनके माफिक हो और वे उन सच्चाइयो या दलीलो की, जो उनसे मेल नही खाती, अवहेलना की कोशिश करती है। मै उस समतौल को हासिल करने की कोशिश करता हूँ ताकि मै चीजो को सही ढग से देख सकूँ और काम के लिए सही बुनियाद पा लूँ, फिर भी मैं जानता हूँ कि मैं कामयाबी से कितनी दूर हूँ और मै उन विचारो और भावनाओ से, जिन्होने मुझे बनाया है और जो अपने अदृश्य सीखचे से मुझे घेरे हुए है, छुटकारा नही पा सकता।"

इस आत्मस्वीकृति के बावजूद जवाहरलाल ने राष्ट्रीय तथा अतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावाद की बहुत बडी सेवा की, इसलिए जब तक सम्भव हो सकेगा, वह उन्हे हीरो बनाये रखेगा और उनकी हर बात की तारीफ करेगा। उदाहरण के लिए जवाहरलाल की मृत्यु के बाद एक भारतीय प्रकाशक द्वारा "प्रोफाइल्स ऑफ नेहरू" नाम की एक अमरीकी पुस्तक प्रकाशित हुई। उसमे एक लेख उनकी ऐतिहासिक रचनाओ के बारे मे भी है, जिसमे लेखक ने सार्वभौमिकता, नैतिकता और बुद्धिवाद के नुक्ते ढूँढ निकाले है और अन्त मे लिखा है कि "नेहरू अपने इतिहास के दर्शन मे मानवता का और उसके बर्बरता से सभ्यता तक के विकास का प्रवक्ता है।"

इसी प्रकार सशोधनवादी रूसियो द्वारा प्रकाशित पुस्तिका "नेहरू जी की स्मृतिमे भी "जवाहरलाल नेहरू इतिहासकार के रूप मे" एक लेख है, जिसके अन्त मे कहा गया है :

"नेहरू के ऐतिहासिक ग्रन्थ उनके प्रगतिशील ऐतिहासिक दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रमाण है। वे उनके वैज्ञानिक विचारो और बुनियादी

राजनीतिक प्रवृत्तियो तथा जनतान्त्रिक कार्यकलाप मे, जो उन्हे भारत की स्वतन्त्रता के एक अथक योद्धा और सम्प्रदायवाद तथा जातिवाद के प्रवल विरोधी के रूप मे चित्रित करते हैं, एक निश्चित सम्बन्ध दिखाते है।"

परिशिष्ट--२

नेहरू ने लिखा था :
जय जवाहरलाल की !

(यह लेख जवाहरलालजी ने रामानन्द चटर्जी द्वारा सम्पादित 'माडर्न रिव्यु' पत्र में लिखा था। लेखक का नाम चाणक्य दिया गया था)

—राष्ट्रपति जवाहरलाल की जय।—प्रतीक्षा-रत जनसमूह के बीच तेजी से गुजरते हुए 'राष्ट्रपति' ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई, हाथ भी ऊपर उठकर अभिवादन की मुद्रा मे जुड गए और पीताभ कठोर चेहरे पर मुस्कराहट खिल उठी। यह अत्यन्त उत्साहपूर्ण व्यक्तिगत मुस्कराहट थी और जिन लोगो ने इसे देखा उन सभी ने तुरन्त ही मुस्कराहट और हर्ष-ध्वनि के रूप मे अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

मुस्कराहट गुजर गई और चेहरा पुन गम्भीर, उदास तथा विशाल जनसमूह मे जागृत भावना के प्रति उदासीन हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी मुस्कान तथा मुद्रा यथार्थ नही है, बल्कि जन-समूह की सद्भावना प्राप्त करने की चाल-भर है, जिसका वह नायक बना हुआ है। क्या सचमुच यही बात है ?

फिर से देखे। एक विशाल जुलूस है, उसमे हजारो, लाखो व्यक्ति उसकी कार को घेरे आनन्दातिरेक से हर्षध्वनि कर रहे हैं। वह कार की सीट पर अच्छी तरह सन्तुलन के साथ खड़ा है, सीधा

इन प्रश्नो का उत्तर खोजना ही होगा।

करीब दो वर्षों से वह कांग्रेस का अध्यक्ष बना हुआ है और कुछ लोगो का खयाल है कि वह कांग्रेस कार्यसमिति मे सिर्फ एक शिविरानुयायी हैं जिस पर दूसरो का नियन्त्रण रहता है। लेकिन फिर भी वह जनता मे और जनता के सभी वर्गों मे लगातार अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा एव प्रभाव बढ़ाता ही चला जा रहा है।

वह किसान से लेकर मजदूर तक, जमीदार से लेकर पूँजीपति तक, व्यापारी से लेकर कगाल तक, ब्राह्मण से लेकर अछूत तक, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई और यहूदी तक -जो भारतीय जीवन के विविध अग है—पहुँचता है। इन सभी से वह भिन्न-भिन्न भाषा बोलता है क्योकि वह उनको अपने साथ लाने की चेष्टा करता रहता है।

शक्ति की इच्छा

अपनी इस आयु मे भी विचित्र फुर्ती एव शक्ति से वह इस विशाल देश मे भी चारो ओर भ्रमण कर चुका है और सर्वत्र उसका असाधारण सार्वजनिक स्वागत किया गया, उत्तर से लेकर दक्षिण मे कन्याकुमारी तक वह विजेता सीजर महान् की तरह अपने पीछे गौरव के चिह्न छोडता हुआ घूमा है। क्या यह सब उसके लिए हल्का मनोविनोद मात्र है या इसके पीछे कोई गहरा रहस्य है, जिसे वह स्वय नही जानता? क्या यह उसकी महत्वाकाक्षा के लक्षण हैं, जिनके बारे मे उसने स्वय आत्म-कथा मे लिखा है और जो उसे जनसमूहो के बीच घुमा रही है तथा अपने आपसे मन ही मन यह कहला रही है कि मैंने इस मानवीय ज्वार को अपने हाथो मे लिया और अपना आदेश आकाश के आर-पार सितारो पर लिख दिया।

अगर उसका दिमाग बदल जाए, तो क्या होगा? जवाहरलाल जैसा महान् एव प्रभावशाली वक्ता लोकतन्त्र मे अरक्षित है। वह

स्वय को लोकतन्त्रवादी एव समाजवादी मानता है-और इसमे कोई सन्देह भी नही कि वह इस वारे मे ईमानदार है, पर हर मनोवैज्ञानिक जानता है कि मस्तिष्क हृदय का दास है और युक्तियो को हमेशा ही गैर-जिम्मेदाराना आकाक्षाओ एव इच्छाओ के अनुकूल ढाला जा सकता है।

जरा-सा झटका लगा कि वह तुरन्त ही मथर लोकतन्त्र के रथ को एक ओर डालकर तानाशाह बन बैठेगा। वह लोकतन्त्र और समाजवाद की भाषा एव नारे तो इस स्थिति मे भी इस्तेमाल कर सकता है क्योकि हम सभी जानते है कि किस तरह फासिज्म इसी भाषा पर पनपा और पुष्ट होकर लोकतन्त्र की हत्या कर चुका है।

जवाहरलाल फासिस्ट तो कतई नही है—न विचार से और न ही स्वभाव से। वह इतना अधिक कुलीनतावादी है कि फासिज्म की कठोरता और अश्लीलता स्वीकार नही कर सकता, उसका चेहरा तथा वाणी हमसे यह कहते प्रतीत होते है—'सार्वजनिक स्थानो पर व्यक्तिगत चेहरे, व्यक्तिगत स्थानो पर सार्वजनिक चेहरो से अधिक शोभनीय तथा सुन्दर लगते है।'

फासिस्ट चेहरा सार्वजनिक चेहरा है और सार्वजनिक अथवा निजी स्थलो पर शोभा नही देता। जवाहरलाल का चेहरा और वाणी—दोनो ही व्यक्तिगत है। यह शत-प्रतिशत सही है कि भीड मे भी उसकी आवाज भीड के हर व्यक्ति से अलग-अलग घरेलू तौर पर बोलती प्रतीत होती है।

रहस्यपूर्ण

उसकी वाणी सुनकर या भावुक चेहरा देखकर आदमी यह सोचने लगता है कि इसके पीछे न जाने क्या छिपा है, क्या-क्या इच्छाएँ, विचार, विचित्र ग्रन्थियाँ, दमित होकर शक्ति मे ढली हुई आकाक्षाएँ और लालसाएँ छिपी है ?

विचार-शृखला सार्वजनिक वक्तृता मे तो उसे सहेजे रखती हैं पर शेष समय मे उसका चेहरा खोया-खोया-सा लगता है, क्योकि उसका मन दूर कही कल्पनाओ और योजनाओ मे भटक जाता है अपने मानस-लोक के प्राणियो से अश्रव्य वार्तालाप करता रहता है, जिसके कारण सगी-साथियों का भी ध्यान नही रहता। क्या वह अपनी तूफानी जीवन-यात्रा के बीच बिछुडे मनुष्यो की याद करता है या फिर सफलतापूर्ण भविष्य का दिवास्वप्न देखता रहता है ? इसे भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि उसने जिस रास्ते पर कदम बढाए हैं, उस पर विश्राम की कोइ गुजाइश नही होती है और यहाँ तक कि विजय स्वय भी बोझिल होती है। लारेन्स ने अरबो को सम्बोधित करते हुए कहा है—'विद्रोह के लिए विश्रामालय नही हो सकते और न ही आनन्द के लाभाश प्राप्त होते है।'

तानाशाह के गुण

जवाहरलाल फासिस्ट नही हो सकता। लेकिन उसमे तानाशाह बनने के लिए जरूरी सभी गुण हैं—व्यापक लोकप्रियता, सुनिर्धारित उद्देश्य के प्रति सजगता, शक्ति, गर्व, योग्यता, सगठन, कुशलता, कठोरता, असहिष्णुता तथा कमजोर तथा अकर्मण्य के विरुद्ध थोडी-बहुत घृणा।

उसकी गरम मिजाजी सर्व-ज्ञात है, जिसे वह कोशिश करके भी नही छिपा पाता क्योकि अधरो की वक्रता गुस्से को जाहिर कर ही देती है, काम पूरा कराने की तीव्र आकाक्षा, अरुचिकर अथवा नापसन्द चीजो को दूर हटाकर नव-निर्माण का उतावलापन लोकतन्त्र की मथर प्रक्रिया को काफी अर्से तक बर्दाश्त नही कर सकते।

वह अकड़ कायम रखता है, पर अपनी इच्छानुकूल उसे मोड भी सकता है, सामान्य काल मे वह कुशल और सफल कार्याधिकारी मात्र रहेगा, पर क्रान्तिकारी काल मे सीजरवाद उसके निकट खडा

रहता है। तो क्या यह सम्भव नही है कि जवाहरलाल स्वय को सीज़र मानने लगे ?

खतरा

यही भारत और जवाहरलाल नेहरू के लिए खतरा उपस्थित हो जाता है क्योकि भारत को स्वाधीनता सीजरवाद द्वारा नही प्राप्त होगी, बल्कि इससे तो देश की मुक्ति मे अधिक विलम्ब होगा।

जवाहरलाल लगातार दो वर्ष से कांग्रेस का अध्यक्ष है और इस बीच उसने अपने आपको इतना उपयोगी बना लिया है कि कई लोगो ने उसे तीसरी बार पुन अध्यक्ष चुनने का सुझाव पेश किया है। लेकिन भारत तथा स्वय जवाहरलाल के लिए इससे अधिक हानिकर बात और कोई नही हो सकती। उसे तीसरी बार अध्यक्ष चुनकर हम कांग्रेस की कीमत पर एक व्यक्ति को ऊपर चढायेगे और लोग सीजरवाद की दिशा मे सोचने लगेगे।

इससे जवाहरलाल मे गलत प्रवृत्तियो को वढावा मिलेगा और उसमे प्रवचना एव गर्व की मात्रा बढेगी, वह मान बैठेगा कि वही इस भार को संभाल सकता है और भारत की समस्याओ को हल कर सकता है। स्मरण रहे कि पद के प्रति उदासीनता के दिखावे के बावजूद वह विगत १७ वर्षों से लगातार कांग्रेस मे किसी न किसी महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन रहता चला आ रहा है। वह अपने आपको अनिवार्य मानता होगा, यह एक बुरी बात है। भारत उसे तीसरी बार कांग्रेस का अध्यक्ष चुनकर लाभ मे नही रहेगा।

इसका एक व्यक्तिगत कारण भी है। लफ्फाजी और बढी-चढी बातो के बावजूद जवाहरलाल इस समय थका हुआ और अस्वस्थ है। अत. वह अध्यक्ष रहा, तो उसकी स्थिति लगातार बिगडती चली जाएगी। वह आराम नही कर सकता क्योकि शेर पर सवारी करने वाला कभी उतर नही सकता। लेकिन हम तो उसे कम से कम

भटकने से और मानसिक ह्रास से बचा ही सकते है, जिसका मूल कारण भारी दायित्व एव कार्यभार है। हमको उससे भविष्य मे काफी आशा है। अत: हमे इस आशा को और जवाहरलाल को भी बिगड़ने नही देना चाहिए। उसमे प्रवचना, जैसी भी हो, काफी मात्रा मे है। इसे दूर करना चाहिए। हमे सीजरो की जरूरत नही है।

वसीयतनामा

भारतीय जनता से मुझे इतना प्रेम व स्नेह मिला है कि मैं कुछ भी क्यो न करूँ, इस प्रेम व स्नेह के तनिक अश का भी प्रतिदान मै नही दे सकता। असल मे प्रेम जैसी अमूल्य चीज का कोई प्रतिदान हो भी नही सकता है। बहुत लोग सराहे गए है, कुछ को श्रद्धा मिली है, पर भारतीय जनता के सभी वर्ग के लोगो का स्नेह मुझे इतना मिला है कि मैं उसके बोझ से दब गया हूँ, अभिभूत हो गया हूँ। मैं केवल यही आशा प्रगट कर सकता हूँ कि आगे जितने वर्ष भी जीऊँ अपने लोगो के प्रेम के अयोग्य न बनूँ। अपने अनगिनत साथियो और सहयोगियो के प्रति मेरी कृतज्ञता और भी गहरी है। हम महान कार्यो मे साथी रहे है और इनकी सफलताएँ और इनके दुख, जो उनके साथ निश्चित रूप से जुडे ही रहते है, हम हिस्सेदार है।

मैं पूरी गम्भीरता के साथ यह घोषित करना चाहता हूँ कि मेरी मृत्यु के बाद मेरे लिए कोई धार्मिक अनुष्ठान न किया जाए। इस तरह के अनुष्ठानो मे मेरी कोई आस्था नही है और रस्मी तौर पर भी इन्हे झेलना पाखण्ड होगा और यह अपने लोगो को और दूसरो को धोखे मे डालने का एक प्रयास होगा।

मैं चाहता हूँ कि मेरे मरने के बाद मेरा दाह-सस्कार हो। अगर मै विदेश मे मरूँ, तो वही मेरा दाह-सस्कार किया जाए, पर मेरी अस्थियाँ इलाहाबाद लाई जाएँ। इनमे से मुट्ठी भर गगा मे प्रवाहित

की जाएँ और इनके अधिकांश हिस्से का नीचे लिखे ढग से उपयोग किया जाए। इन अस्थियो का कोई भी अश बचाकर या सरक्षित रूप मे न रखा जाए।

मेरी मुट्ठी-भर भस्मी इलाहाबाद की गगा मे प्रवाहित करने की मेरी इच्छा के पीछे, जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, कोई धार्मिक भावुकता नही है। बचपन से ही इलाहाबाद की गगा और यमुना से मेरा लगाव रहा है। जैसे-जैसे मेरी उम्र बढती गई है वैसे-वैसे यह लगाव बढता ही गया है। मैंने मौसम बदलने के साथ इनके बदलते रगो और रुखो को देखा है और इतिहास, किंवदन्तियो, परम्पराओ, गीतो और कहानियो की उन सभी बातो पर अक्सर विचार किया है जो युगो से इनसे जुडती चली आई है और उनकी जलधारा का अगबन चुकी है।

गगा विशेषकर भारत की वह नदी है, जिसे जनता प्यार करती है और जिसके इर्द-गिर्द उसकी जातीय स्मृतियाँ, उसकी आशाएँ, आशकाएँ, उसके विजयगीत, उसकी विजय और पराजय का ताना-बाना जुडा हुआ है। गगा हमारी युग-युग पुरानी सभ्यता व सस्कृति का प्रतीक रही है, हर समय बदलती और हर समय बहती हुई। फिर भी यह वही गगा है। वह मुझे हिमालय के हिमाच्छादित शिखरो और घाटियो की याद दिलाती है, जिससे मेरा लगाव और प्यार बहुत ज्यादा रहा है। साथ ही गगा मुझे नीचे के उन ऐश्वर्यशाली विराट मैदानो की याद दिलाती है जहाँ मेरा जीवन और कार्य-क्षेत्र प्रसारित रहा। सुबह की सूर्य-किरणो मे मुस्कराती और नाचती हुई जब सन्ध्या की छाया उतरती है, उस समय कलोंच लिए हुए और उदास और रहस्य से ओत-प्रोत, जाड़ो मे पतली, धीमी और भव्य धारा के रूप मे बहती हुई, वर्षा मे भयकर गर्जना करती हुई और लगभग समुद्र की तरह विराट वक्षवाली और साथ ही समुद्र की तरह विनाश की शक्ति का कुछ अश रखती हुई गगा मेरे लिए भारत के अतीत का एक प्रतीक और स्मृति के रूप मे रही है, जो वर्तमान

काल मे आकर बहती है और भविष्य के महासागर मे बहकर जाती है।

यद्यपि मैंने अतीत की बहुत-सी परम्पराओ का और प्रथाओ का वर्जन किया है और मैं चाहता हूँ कि भारत उन सभी जजीरो से, जिन्होने उसे कस रखा है और सकुचित करती हैं, उसकी जनता मे अलगाव पैदा करती है, और उनमे से बहुत बडी सख्या का दमन करती है और देह व मन के मुक्त विकास मे बाधा खडी करती हैं, छुटकारा कर ले। यद्यपि मैं यह सब चाहता हूँ, फिर भी मैं अपने को अतीत से पूरी तरह काटकर अलग कर देना नही चाहता। उस महान् विरासत व परम्परा पर जो हमारी है, मुझे गर्व है। मै इस बात के प्रति भी जागरूक हूँ कि मैं भी हम सभी की तरह उस अटूट शृखला की एक कडी हूँ, जो इतिहास के उषाकाल से युगो-युगो से चली आ रही है। मैं इस शृखला को तोडना नही चाहूँगा, क्योकि मैं इसे धरोहर मानता हूँ और इससे प्रेरणा प्राप्त करता हूँ। अपनी इस इच्छा के साथ और हमारी सास्कृतिक विरासत के प्रति श्रद्धाजलि के रूप मे मैं यह अनुरोध करता हूँ कि मेरी मुट्ठी भर भस्मी इलाहाबाद की गगा मे प्रवाहित की जाए जो गगा मे प्रवाहित होकर उस महासागर मे जाए जो हमारे देश के तटो को पखारता है।

मेरी भस्मी का अधिकाश हिस्सा दूसरी तरह काम मे लाया जाए। मैं चाहता हूँ कि इसे आकाश मे ऊँचे एक विमान मे ले जाया जाए और खेतो के ऊपर जहाँ हमारे किसान मेहनत करते है, बिखराया जाए ताकि वह भारत की धूल और मिट्टी मे सन जाए और भारत का एक अनचीन्हा अश हो जाए।

२१ जून, १९५४ —जवाहरलाल नेहरू

महात्मा गांधी का पत्र

सेगाँव
१५ जुलाई १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

१. आशा है तुमको 'टाइम्स ऑफ इडिया' के पत्र के बारे मे मेरा तार मिला होगा। मैने कल प्राप्त करके उसे पूरा पढा। इसके विषय मे मुझे कभी किसी ने नही लिखा। पत्र को पढकर मेरी राय पक्की हुई है कि तुम्हे इसपर मान-हानि की कानूनी कार्यवाई करनी चाहिए।

२. यदि तुम मुझे गलत न समझो तो मै चाहूँगा कि तुम मुझे नागरिक स्वातन्त्र्य-संघ से मुक्त रखो। फिलहाल मे किसी राजनैतिक सस्था मे शामिल होना पसन्द नहीं करता और किसी पक्के सत्याग्रही के उसमे शरीक होने का कोई अर्थ भी नही : परन्तु इस सघ मे मेरे सम्मिलित होने-न-होने के परिपक्व विचार के बाद मेरी यह राय पक्की हुई है कि सरोजिनी को या यो कहो कि किसी भी सत्याग्रही को अध्यक्ष बनाने मे भूल होगी। मेरा अब यह मत है कि अध्यक्ष कोई प्रसिद्ध वैधानिक कानूनी वकील होना चाहिए। यदि यह बात तुम्हें न जँचती हो तो तुम्हे एक टिप्पणी लेखक को, जो कानून-भंग करने वाला न हो, रखना चाहिए। मैं यह भी कहूँगा कि सदस्यो की सख्या सीमित रखो। तुम्हे सख्या के बजाय गुणो

की आवश्यकता है ।

३ तुम्हारा पत्र मर्मस्पर्शी है । तुम ऐसा अनुभव करते हो कि तुम सब से अधिक पीडित पक्ष हो । लेकिन हकीकत यह है कि तुम्हारे साथियो मे तुम्हारे जैसी हिम्मत और साफगोई नही है । परिणाम विनाशकारी हुआ है । मैंने सदा उन्हे समझाया है कि वे तुमसे साफ-साफ और निडर होकर बात कर लें । परन्तु साहस न होने के कारण जब कभी वे बोले, भद्दी तरह से बोले और तुम्हे उत्तेजना हुई । मै तुम्हे बताता हूँ कि वे तुमसे डरते रहे, क्योकि तुम्हे उनसे चिड-चिडाहट और अधीरता हो जाती है । वे तुम्हारी झिडकियो से और तुम्हारे हाकिमाना ढंग पर कुढते रहे और सबसे अधिक इस बात से कि उनके खयाल से तुम अपने-आपको अचूक और श्रेष्ठ ज्ञान वाला समझते हो । वे महसूस करते है कि तुम उनके साथ शिष्टता से पेश नही आये और समाजवादियो के उपहास और गलत अर्थ लगाने से तुमने उनकी कभी रक्षा नही की ।

तुम्हे शिकायत है कि उन्होने तुम्हारी प्रवृत्तियो को हानिकारक बताया । इसका यह अर्थ नही था कि तुम हानिकारक हो । उनके पत्र मे तुम्हारे गुणो या तुम्हारी सेवाओ के बखान करने का कोई मौक़ा नही था । वे पूरी तरह जानते है कि तुममे जीवट है और आम जनता और देश के युवको पर तुम्हारा काबू है । वे जानते है कि तुम्हे छोडा नही जा सकता और इस लिए वे झुक जाना जाहते थे ।

मुझे यह सारा मामला दुखद लगता है, साथ ही हास्यजनक भी । इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम सारी बात विनोद-वृत्ति से देखो । मुझे इस बात की चिंता नही कि तुम ए० आई० सी० को अपने विश्वास मे लो, परन्तु मे नही चाहता कि उस पर तुम्हारे घरेलू झगड़े ठीक करने का या तुममे और उनमे चुनाव करने का असह्य भार डाला जाय । तुम कुछ भी करो, उनके सामने बनी-बनाई बातें हो रखनी चाहिए ।

तुम इस बात पर रोष क्यो करते हो कि तमाम समितियो मे उनका बहुमत प्रकट हो। क्या यह अत्यन्त स्वाभाविक चीज नही है ? तुम उनके सर्वसम्मत चुनाव से पदारूढ हो, लेकिन अभी तक सत्ता तुम्हारे पास नही है। तुम्हे पदारूढ करना तुम्हे शीघ्र सत्तारूढ करने का प्रयत्न था। और किसी तरह ऐसा होता। जो हो, मेरे दिमाग मे यही बात थी, जब मैंने कॉंटो के ताज के लिए तुम्हारा नाम सुझाया था। सिर पर घाव हो जायँ तो भी इसे पहने रहो। समिति की बैठको मे फिर से अपनी विनोदप्रियता दिखाओ। तुम्हारा अत्यन्त सामान्य स्वरूप होना चाहिए, न कि एक चिन्ता-मग्न क्षुब्ध व्यक्ति का, जो जरा-जरा-सी बात पर उबल पडने को तैयार हो।

काश तुम मुझे तार से खबर दोगे कि मेरा पत्र पढ लेने के बाद तुम्हे उतनी ही प्रफुल्लता अनुभव हुई जितनी लाहौर मे नववर्ष के दिन हुई थी, जब तुम तिरगे झडे के चारो ओर नाचते बताये गए थे। अपने गले को भी तो तुम्हे मौका देना ही चाहिए।

मैं अपना बयान फिर से देख रहा हूँ। मैंने निश्चय किया है कि जब तक तुम इसे देख न लो, मैं इसे प्रकाशित न करूँ।

मैंने यह भी निर्णय किया है कि हमारे पत्र-व्यवहार को महादेव के सिवा और कोई न देखे।

सस्नेह,

बापू

सुभाषचन्द्र बोस का पत्र

जीलागोरा पो० ग्रा०
जिला मानभूम, बिहार
२८ मार्च १६३६

प्रिय जवाहर,

मुझे लगता है कि तुम कुछ समय से मुझे बहुत ज्यादा नापसद करने लगे हो। यह मैं इसलिए कहता हूँ कि कोई भी बात, जो मेरे विरुद्ध पडती हो, उसे तुम बडे उत्साह से ग्रहण कर लेते हो और मेरे पक्ष मे जाने वाली बातो की उपेक्षा करते हो। मेरे राजनैतिक विरोधी मेरे खिलाफ जो कुछ कहते हैं, उसे तुम मान लेते हो, किन्तु तुम उनके खिलाफ कही जा सकने वाली बातो के प्रति करीब-करीब अपनी आखें बन्द कर लेते हो। मैं इस कथन को आगे स्पष्ट करने की कोशिश करूँगा।

मेरे लिए यह एक पहेली ही है कि तुम मुझे इतना अधिक नापसद क्यो करने लगे हो। जहाँ तक मेरा सबध है, जब से मे सन् १६३७ मे नजर-बदी से बाहर आया हूँ, मैं व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन मे तुम्हारा बहुत अधिक लिहाज और खयाल रखता आ रहा हूँ। राजनैतिक दृष्टि से मैंने तुम्हे अपना बडा भाई और नेता माना है, अक्सर तुम्हारी सलाह लेता रहा हूँ। पिछले साल जब तुम यूरोप से वापस आये तो मैं तुम्हारे पास इलाहाबाद आया और पूछा कि अब तुम हमे क्या नेतृत्व दोगे। आम तौर पर, जब

मैं तुम्हारे सामने इस रूप मे आया तो तुम्हारे जवाब अस्पष्ट और अनिश्चित रहे। उदाहरण के लिए, गत वर्ष जब तुम यूरोप से लौटे तो तुमने मुझे यह कह कर टाल दिया कि तुम गाँधीजी से परामर्श करोगे और उसके बाद मुझे बताओगे। जब हम वर्धा मे मिले, तब तुम गाँधीजी से मिल लिए थे, किन्तु तुमने मुझे कुछ भी निश्चित नही बताया। बाद मे तुमने कार्यसमिति के सामने कुछ प्रस्ताव पेश किये, जिनमे नया कुछ नही था और न देश को कोई नेतृत्व दिया गया था।

अध्यक्ष पद के पिछले चुनाव के बाद एक कटु विवाद छिड गया और उसके दौरान मे बहुत-सी बाते कही गई—कुछ मेरे हक मे और कुछ मेरे खिलाफ। तुम्हारे उद्गारो और बयानो से हरेक मुद्दे का मेरे विरुद्ध अर्थ लगाया गया। दिल्ली के एक भाषण मे तुमने यह कहा बताया कि तुम मेरे द्वारा या मेरे पक्ष में हुए चुनाव-प्रचार को पसद नही करते। मैं नही जानता कि तुम्हारे मन मे ठीक-ठीक क्या था, किन्तु तुमने इस तथ्य को बिल्कुल ही भुला दिया कि मेरी चुनाव अपील डा० पट्टाभि की अपील पत्रो मे छपने के बाद ही जारी हुई थी। जहाँ तक चुनाव—प्रचार का ताल्लुक है, तुमने जाने या अनजाने इस तथ्य को नजर अदाज किया कि दूसरे पक्ष का चुनाव-प्रचार कही ज्यादा बढा-चढा था और डा० पट्टाभि के लिए मत प्राप्त करने मे कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलो की मशीनरी का पूरा-पूरा उपयोग किया गया। दूसरे पक्ष के पास नियमित सगठन था (गांधी सेवा संघ, कांग्रेसी मन्त्रिमंडल, और शायद चरखा संघ और अखिल भारतीय ग्रामोद्योग सघ भी) जिसे तुरन्त गतिमान कर दिया गया। इसके अलावा, सभी बड़े-बड़े नेता और तुम भी मेरे खिलाफ थे—महात्मा गांधी का नाम

और गांधीवाद के लिए हुआ, हालाँकि अनेक आदमियो ने ऐसे मिथ्या प्रचार के वशीभूत होने से इन्कार कर दिया। फिर भी, एक सार्वजनिक सभा मे खडे होकर, तुमने ऐसे आधार पर मेरी निन्दा करने की कोशिश की, जो बिल्कुल गलत प्रतीत होता है।

अब त्यागपत्रो की बात ले लो। बारह सदस्यो ने त्यागपत्र दिये। उन्होने एक स्पष्ट पत्र लिखा—शिष्ट पत्र था वह, जिसमे उन्होने अपनी स्थिति को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया। मेरी बीमारी का खयाल करके उन्होने मेरे बारे मे एक भी कटु शब्द का प्रयोग नही किया, हालाँकि वे चाहते तो मेरी प्रतिकूल आलोचना कर सकते थे। किन्तु तुम्हारा बयान—उसके बारे मे मै क्या कहूँ? मैं कटु भाषा का प्रयोग नही करूँगा और केवल यही कहूँगा कि वह तुम्हारे लायक नही था (मुझे बताया गया है कि तुम अपने बयान को मोटे रूप मे त्यागपत्र के भीतर समावेश कराना चाहते थे, किन्तु यह स्वीकार नही किया गया) तुम्हारे बयान से ऐसा असर पडता है कि अन्य बारह सदस्यो की तरह तुमने भी त्यागपत्र दे दिया है, किन्तु इस समय तक आम जनता के सामने तुम्हारी स्थिति एक पहेली बनी हुई है। जब कोई सकट पैदा होता है तो अक्सर तुम इस पक्ष या उस पक्ष मे अपनी राय नही बना पाते और नतीजा यह होता है कि जनता को तुम दो घोड़ो पर सवारी करते हुए दिखाई देते हो।

मैं फिर तुम्हारे २२ फरवरी के वक्तव्य पर आता हूँ। तुम्हारा खयाल है कि तुम जो कहते हो या करते हो, उसमे बहुत ही युक्ति-युक्त और सगत रहते हो। किन्तु विभिन्न अवसरो पर तुम्हारे रुख से अक्सर लोग स्तब्ध और आश्चर्यचकित रह जाते हैं। कुछ उदाहरण ले लो। २२ फरवरी के अपने वक्तव्य मे तुमने कुछ कारण दिये। उन कारणो की २६ जनवरी को अलमोडा से जारी किये अपने वक्तव्य मे दिये गये कारणो से तुलना करो। तुमने स्पष्टत. अपना आधार बदल लिया। फिर कुछ बम्बई के मित्रो ने मुझसे कहा कि

तुमने उनसे पहले कहा था कि तुम्हे मेरे अध्यक्ष-पद के लिए खडे होने मे कोई एतराज नही है, बशर्ते कि मैं वामपक्ष के उम्मीदवार के रूप मे खडा होऊँ।

अल्मोड़ा के बयान को तुमने यह कहकर खत्म किया था कि हमको व्यक्तियो को भुला देना चाहिए और केवल सिद्धान्तो और अपने ध्येय को ही याद रखना चाहिए। तुम्हे कभी यह ख़याल नही आया कि व्यक्तियो को भुला देने की बात तुम तभी कहते हो, जब कुछ खास व्यक्तियो का ख़याल सामने होता है। जब सुभाप वोस दुवारा चुने जाने के लिए खड़ा होता है, तो तुम व्यक्तियो की उपेक्षा करते हो और सिद्धान्तो आदि की दुहाई देते हो। जव मोलाना आजाद पुनः निर्वाचन के लिए खड़े होते है तो तुम्हे लम्वा प्रगसा-गीत लिखने मे कोई सकोच नही होता। जव मामला सुभाष वोस और सरदार पटेल तथा दूसरो के वीच होता है तो सवसे पहले सुभाप वोस को अपने व्यक्तिगत प्रश्न को खुलासा करना चाहिए। जब शरत् वोस त्रिपुरी मे कुछ वातो की शिकायत करते हैं (उन लोगो के रवैये और व्यवहार की शिकायत करते हैं, जो अपने को महात्मा गांधी के कट्टर अनुयायी कहते है) तो तुम्हारे खयाल से वह व्यक्तिगत प्रश्नो के स्तर पर उतर आते है, जवकि उन्हे अपने को सिद्धान्तो और कार्यक्रमो तक ही सीमित रखना चाहिए था। मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरा तुच्छ दिमाग तुम्हारी संगतता को समझने मे असमर्थ है।

अब मे व्यक्तिगत प्रश्न की चर्चा करूँगा, जो, जहाँ तक मेरा सवघ है, तुम्हारी निगाह मे इतना अधिक महत्त्वपूर्ण वन जाता है। तुम्हारा आरोप है कि मैंने अपने वयानो मे अपने सहयोगियो के प्रति अन्याय किया है। प्रकटत: तुम उनमे नही हो और अगर हो मैंने कोई आरोप लगाया था तो वह दूसरो के खिलाफ था, अत. तुम अपनी ओर से नही. वल्कि दूसरो की वकालत कर रहे हो। एक वकील आम तौर

पर अपने मवक्किल से ज्यादा वाचाल होता है। इसलिए तुमको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जब इस प्रश्न पर मैंने त्रिपुरी मे सरदार पटेल से और राजेनबाबू और मौलाना से बातचीत की तो उन्होने मुझे यह आश्चर्यजनक खबर सुनाई कि मेरे विरुद्ध उनकी मुख्य शिकायत काग्रेस कार्य समिति की गत जनवरी की बारडोली की बैठक से पहले की अवधि से सबध रखती है। जवाब मे जब मैंने यह कहा कि जनता मे आम खयाल यह है कि मेरे खिलाफ शिकायत मेरे 'चुनाव वक्तव्यो' से ताल्लुक रखती है तो उहोने कहा कि यह तो अतिरिक्त आरोप है। आखिर इसका यह मतलब हुआ कि तुम्हारे मवक्किल 'लांछन के मामले' को उतना महत्त्व नही देते जितना तुम उनके वकील की हैसियत से देते हो। त्रिपुरी मे, चूँकि सरदार पटेल और अन्य लोग काग्रेस महासमिति की बैठक मे शामिल होने के लिए चले गये और वादा करके भी बैठक के बाद वापस नही लौटे, मे इस बारे मे और बातचीत नही कर सका, ताकि यह मालूम करता कि कार्यसमिति की बारडोली की बैठक के बाद की कौन-सी घटनाओ से उनका आशय है। किन्तु मेरे भाई शरत् ने इस बारे मे सरदार पटेल से बात की थी तो उन्होने शरत् को बताया कि उनको मुख्य शिकायत मेरे उस रवैये पर है, जो मैंने कांग्रेस महासमिनि की दिल्ली की वैठक मे, सितम्बर १९३८ मे अपनाया, जबकि समाजवादी बैठक से उठकर चले गये थे ? इस आरोप पर मुझे और मेरे भाई दोनो को बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु प्रसगवश उससे यह भी पता चल गया कि सरदार पटेल और दूसरो के मन मे 'लाछनवाले मामले' का उतना महत्व नही है, जितना महत्व उसे तुमने दिया है। असल मे, जब मैं त्रिपुरी मे था, कई प्रतिनिधियो ने मुझे बताया (मैं तुम्हे बता दूं कि वे मेरे समर्थक नही थे) कि 'लाछनवाले मामले' को तो उस समय तक करीव-करीव भुला ही दिया गया था, जबतक कि तुमने अपने बयानो और उद्गारो द्वारा इस विवाद को पुनः सजीव नही कर

दिया। और इस बारे मे मै तुम्हे बताऊँ कि कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव के बाद कार्य-समिति के बारह भूतपूर्व सदस्यों ने जितना एक साथ मिलकर नही किया, उससे अधिक तुमने मुझे जनता की निगाह मे गिराने के लिए किया है। अवश्य ही, अगर मे सचमुच इतना दुष्ट हूँ तो यह तुम्हारा अधिकार ही नही, बल्कि कर्त्तव्य भी हो जाता है कि तुम जनता के सामने मेरा पर्दाफाश करो। किन्तु शायद तुमको यह प्रतीत होगा कि जो दुष्ट व्यक्ति तुम्हारे समेत बडे-बड़े नेताओ, महात्मा-गाँधी और आठ प्रान्तीय सरकारो के विरोध के बावजूद अध्यक्ष चुना गया, उसमे कुछ तो अच्छाई होगी। उसने अपने अध्यक्ष-काल मे देश की कुछ तो सेवा की होगी कि उसकी पीठ पर कोई सगठन न होने पर भी और भारी बाधाओ के बावजूद वह इतने वोट प्राप्त कर सका।

तुमने अपने २२ फरवरी के वक्तव्य मे आगे कहा है: "मैंने कांग्रेस अध्यक्ष को सुझाया कि यह सबसे पहला और सबसे जरूरी विचारणीय मुद्दा है, किन्तु अब तक उसे निपटाने की कोई कोशिश नही की गई।" किन्तु ये पक्तिया लिखते समय तुमको यह खयाल क्यो नही आया कि गलतफहमी को दूर करने के लिए मेरा सरदार पटेल और दूसरो से मिलना जरूरी था और यह कार्यसमिति की २२ फरवरी की बैठक के समय ही हो सकता था? अथवा क्या तुम यह खयाल करते हो कि मैंने कार्यसमिति की बैठक को टाला? यह सही है कि 'लाछनवाले मामले' के बारे मे मैंने १५ फरवरी को महात्मा गांधी से चर्चा नही की, हालांकि उन्होंने एक बार इसका जिक्र किया था, किन्तु उस समय मैं तुम्हारे ही इस निर्देश का पालन कर रहा था कि हमको व्यक्तिगत सवालो के बजाय सिद्धान्त और कार्यक्रमो को ज्यादा महत्त्व देना चाहिए। मैं तुम्हे बता दूं कि जब महात्मा गांधी ने मुझसे कहा कि सरदार पटेल और अन्य एक ही समिति मे मेरे साथ सहयोग नही करेंगे तो मैंने उनसे यही कहा कि

२२ फरवरी को जब हम मिलेंगे तो मैं उन लोगो से बात कर लूंगा और उनका सहयोग हासिल करने की कोशिश करूंगा। तुम शायद मुझसे सहमत होगे कि लांछनो का—अगर कोई थे तो—महात्मा गांधी से नहीं, बल्कि कार्य-समिति के सदस्यो से सबध था और उनके बारे मे उन्हीं से बात करना जरूरी था।

इस बयान मे तुम मुझसे यह चाहते हो कि मैं लिखित रूप मे यह ठीक-ठीक बताऊँ कि वाम-पक्ष और दक्षिण-पक्ष जैसे शब्दो से मेरा क्या आशय है? मैंने तो यही सोचा था कि कम-से-कम तुम ऐसा सवाल नही पूछोगे। क्या तुम उन रिपोर्टों को भूल गये जो तुमने खुद ने और आचार्य कृपलानी ने हरिपुरा मे कांग्रेस-महासमिति को दी थी? क्या तुमने अपनी रिपोर्ट मे यह नही कहा था कि दक्षिण-पक्ष वाम-पक्ष को दबाने की कोशिश कर रहा है? अगर तुम जरूरत पड़ने पर दक्षिण-पक्ष और वाम-पक्ष जैसे शब्दो का प्रयोग कर सकते हो तो क्या दूसरे लोग वैसा नही कर सकते?

तुमने मुझ पर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलो पर अपनी नीति स्पष्ट न करने का आरोप भी लगाया है। मेरा खयाल है कि मेरी अपनी नीति है, वह गलत या सही हो सकती है। त्रिपुरी मे अपने सक्षिप्त अध्यक्षीय भाषण मे मैंने उसका अत्यत स्पष्ट शब्दो मे ज़िक्र किया है। मेरी विनम्र राय मे भारत की और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को देखते हुए हमारे सामने एक ही समस्या, एक ही कर्तव्य है—कि ब्रिटिश सरकार के सामने स्वराज्य का प्रश्न पेश करें। इसके साथ-साथ सारे देश मे रियासती जनता के आन्दोलन के पथ-प्रदर्शन की भी एक व्यापक योजना बनानी चाहिए। मेरा खयाल है कि त्रिपुरी-कांग्रेस के पहले भी मैंने अपने विचारो की स्पष्ट झांकी तुम्हे उस समय दे दी थी, जब हम शान्ति-निकेतन मे और बाद मैं आनन्द भवन मे मिले थे। मैंने अभी-अभी जो लिखा है, वह भी कम से-कम निश्चित नीति ही है। अब मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम्हारी

क्या नीति है ? हाल के एक पत्र मे त्रिपुरी-कांग्रेस द्वारा स्वीकृत माँग सबधी प्रस्ताव का तुमने जिक्र किया है, और तुम उसे काफी महत्व देते प्रतीत होते हो। मुझे खेद है कि एकदम ऐसा अस्पष्ट प्रस्ताव, जिसमे भली लगनेवाली सामान्य बाते कही गई हो, मै पसद नही कर सकता। वह हमे कही भी नही ले जा सकता। अगर हम स्वराज्य के लिए ब्रिटिश सरकार से लडना चाहते हो और हम अनुभव करते हो कि उसके लिए उपयुक्त समय आ गया है तो हमको ऐसा साफ-साफ कहना चाहिए और आगे कदम बढाना चाहिए। तुमने एक से अधिक बार मुझसे कहा है कि चुनौती देने का विचार तुम्हे जँचता नही। पिछले बीस वर्षो मे महात्मा गाँधी ब्रिटिश सरकार को बार-बार चुनौतियाँ देते रहे है। इन चुनौतियो और जरूरत होने पर साथ-साथ लडाई की तैयारी करने के फलस्वरूप ही वह ब्रिटिश सरकार से इतना कुछ प्राप्त कर सके है। अगर तुम सचमुच यह मानते हो कि राष्ट्रीय माँग को मनवा लेने का समय आ गया है तो चुनौती देने के अलावा तुम और कौन-सा रास्ता अपना सकते हो ? पिछले दिनो महात्मा गाँधी ने राजकोट के सवाल पर चुनौती दी थी। क्या तुम चुनौती के विचार का इसलिए विरोध करते हो कि मैने उसे पेश किया है ? अगर यही बात है तो उसे साफ-साफ और बिना किसी लाग-लपेट के क्यो नही कहते ?

सार रूप मे कहूँ तो मै यह नही समझ पाता कि देश की आन्तरिक राजनीति के बारे मे तुम्हारी क्या नीति है। मुझे याद पड़ता है, मैने तुम्हारे किसी एक बयान मे यह पढा था कि तुम्हारे खयाल से राजकोट और जयपुर, देश के सभी अन्य राजनैतिक प्रश्नो को ढक लेगे। मै तुम्हारे जैसे बडे नेता के मुँह से ऐसा उद्गार सुनकर स्तब्ध रह गया। मैं नही समझ सकता कि कोई सवाल स्वराज्य के मुख्य सवाल को कैसे ढक सकता है ? राजकोट इस विशाल देश के भीतर एक छोटा-सा विन्दु है। जयपुर का क्षेत्र राजकोट से कुछ

बडा है, किन्तु जयपुर का सवाल भी हमारी ब्रिटिश सरकार के साथ चलने वाली मुख्य लडाई की तुलना मे चिऊटी की चटक-मात्र है। फिर, हम यह नही भूल सकते कि देश मे छ सौ से अधिक रियासते है। अगर हम मौजूदा टुकडो मे विभक्त, थेगली लगाने वाली और समझौता-पसद नीति का अनुसरण करते रहेगे और अन्य राज्यों मे लोक-सघर्ष स्थगित कर देगे तो रियासतो मे नागरिक स्वतत्रता और उत्तरदायी शासन स्थापित करने मे हमे ढाई सौ साल लग जायेगे और उसके बाद हम स्वराज्य की बात सोचेगे।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलो मे तुम्हारी नीति और भी अधिक पगु है। कुछ समय पहले जब तुमने कॉग्रेस कायसमिति के सामने इस आशय का प्रस्ताव किया कि यहूदियो को भारत मे बसने दिया जाय तो मैं आश्चर्य चकित रह गया। जब कार्यसमिति ने (शायद महात्मा गॉधी की सहमति से) इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया तो तुमको बडी चोट लगी। विदेश-नीति यथार्थवादी विषय है और उसका निर्धारण मुख्यत राष्ट्र के हित की दृष्टि से ही होना चाहिए। उदाहरण के लिए रूस को ले लो। अपनी आन्तरिक राजनीति मे वह साम्यवाद का पोषण करता है, किन्तु अपनी विदेश-नीति पर वह कभी भी अपनी भावनाओ को हावी नही होने देता। यही कारण है कि जब उसे अपना फायदा नजर आया तो उसने फ्रासीसी साम्राज्यवाद के साथ समझौता कर लेने मे कोई सकोच नही किया। फ्रास रूस समझौता और चेकोस्लोवाक रूस समझौता इसकी पुष्टि करते है। आज भी, रूस ब्रिटिश साम्राज्य के साथ समझौता करने के लिए उत्सुक है। अब बताओ, तुम्हारी विदेश-नीति क्या है? भावनाओ के बुदबुदो और नेक शिष्टाचारो से विदेश-नीति का निर्माण नही होता। हर समय पराजित ध्येयो की वकालत करते रहने तथा एक ओर जर्मनी और इटली जैसे देशो की निन्दा करने और दूसरी ओर ब्रिटिश और फ्रांसीसी साम्राज्यवाद को सदाचरण का प्रमाणपत्र देने से कोई काम

बनने वाला नही है।

पिछले कुछ समय से तुम्हे और महात्मा गांधी समेत हर सबंधित व्यक्ति को मैं यह समझाने की कोशिश कर रहा हूँ कि हमको अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का भारत के हक मे फायदा उठाना चाहिए और इस उद्देश्य से अपनी राष्ट्रीय मॉग एक चुनौती के रूप मे ब्रिटिश सरकार के सामने रखना चाहिए, किन्तु मैं तुम्हे या महात्मा गांधी को तनिक भी प्रभावित नही कर सका, हालांकि देश की जनता का एक बडा भाग मेरे रुख को पसन्द करता है और ग्रेट ब्रिटेन के भारतीय विद्यार्थियो ने अनेक हस्ताक्षरो वाला एक दस्तावेज मुझे भेजा है; जिसमे मेरी नीति का समर्थन किया गया है। आज जब त्रिपुरी-प्रस्ताव के बंधनो के बावजूद, कार्यसमिति की तुरन्त नियुक्ति न करने के लिए तुम मुझे दोष देते हो तो अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति अचानक तुम्हारी निगाह मे असाधारण महत्व धारण कर लेती है। मैं पूछता हू, यूरोप मे आज ऐसा क्या हुआ है जो अप्रत्याशित था ? क्या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रत्येक विद्यार्थी यह नही जानता था कि बसन्त मे यूरोप मे सकट पैदा होगा ? जब मैं ब्रिटिश सरकार को चुनौती देने की बात कहता था तो क्या मैंने बार-बार इसका जिक्र नही किया था ?

अब मैं तुम्हारे बयान के दूसरे हिस्से पर विचार करूगा। तुम कहते हो : "यह कार्य-समिति तो अस्तित्व मे नही है और अध्यक्ष, जैसा कि शायद वह चाहते है, अपने प्रस्ताव तैयार करने और उन्हे कांग्रेस के सामने पेश करने के लिए स्वतंत्र है। उनकी इच्छा के अनुसार साधारण काम-काज को निपटाने के लिए भी कोई बैठक नही बुलाई गई।" मुझे आश्चर्य है, तुम ऐसे अर्ध-सत्य या मैं कहूं असत्य का सहारा कैसे ले सकते हो ? कार्यसमिति के बारह सदस्य [illegible] और [illegible] इसलिए मेरे आगे रख देते है और फिर भी तुम उनको नही, मुझे ही दोष देते हो कि शायद मैं [illegible] करने के लिए स्वतन्त्र होना चाहता था। फिर, साधारण

काम-काज निपटाने से मैंने तुम्हे कब रोका ? कांग्रेस के लिए प्रस्ताव तैयार करने के मुख्य काम के बारे मे भी, हालांकि मैंने त्रिपुरी-कांग्रेस तक कार्यसमिति की बैठक स्थगित करने का सुझाव दिया था, पर किन्तु क्या मैंने सरदार पटेल से अपने तार मे यह नही कहा कि समिति के दूसरे सदस्यो से परामर्श करे और उनकी राय मुझे तार द्वारा सूचित करे ? अगर तुम्हे इस बारे मे भी शक है तो कृपया सरदार के नाम मेरे तार पर एक नजर डाल लो। मेरा तार इस प्रकार था .

"सरदार पटेल, वर्धा।

कृपया महात्माजी के नाम मेरा तार देखे। खेद के साथ अनुभव करता हूँ कि कार्यसमिति कांग्रेस तक स्थगित कर दी जाय। कृपया साथियो से परामर्श करे और राय तार से सूचित करे।

—सुभाष"

त्रिपुरी-कांग्रेस के समाप्त होने के सात दिन बाद तुमने मुझे इस आशय का तार भेजा कि कांग्रेस मे गतिरोध के लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ। तुम्हारी समस्त न्याय-भावना के बावजूद तुमने यह अनुभव नही किया कि त्रिपुरी-कांग्रेस ने जब पडित पत का प्रस्ताव पास किया तो वह अच्छी तरह जानती थी कि मैं सख्त बीमार हूँ, महात्मा गाधी त्रिपुरी नही आये है और हम दोनो का निकट भविष्य मे मिलना मुश्किल होगा। तुमने यह भी नही सोचा कि मेरे हाथो अवैधानिक और अनियमित रूप से कार्य-समिति नियुक्त करने का अधिकार छीनकर कांग्रेस ने स्वय गतिरोध की जिम्मेदारी अपने सिर पर ली है। अगर पडित पत के प्रस्ताव ने निष्ठुरतापूर्वक कांग्रेस-सविधान की अवहेलना न की होती तो मैंने १३ मार्च १९३९ को कार्यसमिति को नियुक्त कर दिया होता। तुमने कांग्रेस के सात दिन बाद ही मेरे विरुद्ध सार्वजनिक आन्दोलन शुरू कर दिया, हालांकि तुम्हे मेरे स्वास्थ्य की दशा का अच्छी तरह पता था और मेरे नाम

दिया हुआ तुम्हारा तार मुझे मिलने के पहले अखबारो मे छप गया। जब त्रिपुरी के पहले पूरे पखवारे कार्य-समिति के बारह सदस्यो के त्यागपत्र देने के कारण कांग्रेस के मामलो मे गतिरोध रहा तो क्या तुमने विरोध मे एक शब्द भी कहा ? क्या तुमने मेरे प्रति एक भी शब्द सहानुभूति का कहा ? तुमने हाल के एक पत्र मे लिखा है कि तुम अपनी ही ओर से बोलते हो या काम करते हो और तुमको और किसी का प्रतिनिधि नही मानना चाहिए। यह हमारी बदकिस्मती है कि तुम्हे यह कभी नही सूझता कि तुम दूसरो को दक्षिण-पथियों के हिमायती के रूप मे नज़र आते हो। उदाहरण के लिए अपने २६ मार्च के पत्र को ही ले लो। तुम उसमे कहते हो : मैने तुम्हारा बयान आज पत्रो मे पढा। मुझे डर है इस तरह के दलीलबाजी से युक्त बयान स्थिति को सुधारने मे सहायक नही होगे।"

इस समय, जबकि कई हल्को से मेरे ऊपर अन्यायपूर्ण हमले हो रहे है—जैसाकि कहा जाता है, कमर से नीचे प्रहार किये जा रहे है—तुम विरोध मे एक शब्द नही कहते, तुम मेरे लिए एक शब्द सहानुभूति का नही बोलते। किन्तु जब मैं आत्म-रक्षा मे कुछ कहता हू तो तुम्हारी प्रतिक्रिया होती है—"ऐसे दलीलबाजी वाले बयान अधिक सहायक नही होगे।" क्या तुमने मेरे राजनीतिक विरोधियो के बयानो के लिए भी ऐसे ही विशेषणो का प्रयोग किया है ? शायद उनकी तुम सराहना करते होगे।

फिर, तुम अपने २२ फरवरी के वक्तव्य मे कहते हो "स्थानीय कांग्रेसी झगडो को सामान्य तरीके से निपटाने के बजाय सीधे शीर्ष-स्थान से निपटाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है और इसका यह नतीजा होता है कि खास गुटो और पार्टियो के साथ रियायत होती है, गोल-माल पैदा होता है और काम की हानि होती है।..... मुझे यह देखकर दु ख होता है कि हमारे सगठन के हृदय-स्थल मे नये तरीके दाखिल किये जा रहे है, जिनसे स्थानीय झगड़े ऊँचे स्तरो पर भी

फैल जायेगे।"

इस प्रकार का दोषारोपण पढकर मुझे दुख-मिश्रित आश्चर्य हुआ, जबकि तुमने सब तथ्यो का पता लगाने की परवा नही की है। कम-से-कम तुम यह तो कर सकते थे कि मुझसे तथ्यो के वारे मे, जिस रूप मे कि वे मुझे मालूम है, पूछ लेते। मै नही जानता कि यह लिखते समय तुम्हारे दिमाग मे कौन-सी वाते थी। एक मित्र का कहना है कि तुम दिल्ली प्रातीय कांग्रेस कमेटी के मामलो के वारे मे सोच रहे हो। अगर यही बात है तो मैं तुम्हे बिलकुल साफ-साफ वता दूं कि दिल्ली के वारे मे मैंने जो कुछ किया, मेरे लिए वही करना ठीक था।

इस सबध मे मुझे कहने की इजाजत दो कि ऊपर से हस्तक्षेप करने के मामले मे कोई कांग्रेस-अध्यक्ष तुमसे बाजी नही मार सकता। शायद तुम उन वातो को भूल गये जो तुमने काग्रेस-अध्यक्ष की हैसियत से की है या शायद अपनी ओर विवेचक दृष्टि से देखना मुश्किल होता है। २२ फरवरी को तुम मुझ पर ऊपर से हस्तक्षेप करने का आरोप लगाते हो। क्या तुम यह भूल गये कि ४ फरवरी को तुमने मुझे एक पत्र लिखा था, जिसमे तुमने मुझपर निराग्रही और निष्क्रिय अध्यक्ष होने का आरोप लगाया है? तुमने लिखा है: "वस्तुत तुमने निर्देश देने वाले अध्यक्ष की अपेक्षा प्रवक्ता (स्पीकर) की हैसियत अधिक रखी है।" तुम्हारा यह आरोप सबसे अधिक आपत्तिजनक है कि मैं पक्षपातपूर्ण ढग से काम कर रहा हूँ और किसी खास पार्टी या गुट के प्रति रियायत कर रहा हूँ। क्या व्यक्तिश: मेरे प्रति नही तो काग्रेस के अध्यक्ष के प्रति तुम्हारा यह कर्तव्य नही था कि उसके विरुद्ध समाचारपत्रो मे ऐसा गभीर आरोप लगाने के पहले उचित जॉच कर लेते?

यदि चुनाव-विवाद पर समग्र दृष्टि से कोई विचार करे तो वह यही सोचेगा कि चुनाव का दगल समाप्त हो जाने के वाद यह सारा प्रकरण भुला दिया जायगा, लड़ाई के अस्त्रो को दफना दिया जायगा

और जैसाकि मुक्केबाजी के दगल के बाद होता है, मुक्केबाज हँसते हुए हाथ मिला लेगे। किन्तु सत्य और अहिंसा के बावजूद ऐसा नही हुआ। चुनाव-परिणाम को खिलाडी की भावना से स्वीकार नही किया गया, मेरे विरुद्ध मन मे गाँठ बाँध ली गई और प्रतिशोध की भावना गतिशील कर दी गई। तुमने कार्यसमिति के अन्य सदस्यो की ओर से शस्त्र ग्रहण किये। तुम्हे ऐसा करने का पूरा अधिकार था। किन्तु क्या तुमने कभी यह नही सोचा कि कुछ मेरे पक्ष मे भी कहा जा सकता है ? क्या कार्यसमिति के दूसरे सदस्यो के लिए इसमे कुछ अनुचित नही था कि मेरी अनुपस्थिति मे और मेरी पीठ पीछे एकत्र होते और डा० पट्टाभि को कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए खडा करने का फैसला करते ? क्या सरदार पटेल और दूसरो के लिए अनुचित न था कि कार्य-समिति के सदस्य के नाते कांग्रेस-प्रतिनिधियो से डा० पट्टाभि का समर्थन करने की अपील करते ? क्या चुनाव-कार्य के लिए सरदार पटेल का, महात्मा गांधी का नाम और उनकी सत्ता का उपयोग करने मे कुछ भी अनुचित नही था ? क्या सरदार पटेल का यह कहना अनुचित नही था कि मेरा दुबारा चुना जाना देश के हित के लिए हानिकर होगा ? क्या विभिन्न प्रान्तो मे कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो का वोट हासिल करने के लिए उपयोग करने मे कोई गलती नही थी ?

रिक सन्देह के वातावरण और विश्वास की कमी की शिकायत की है। क्या मै तुम से कह दूँ कि अध्यक्षीय चुनाव न होने तक तुम्हारे कार्य-काल की अपेक्षा मेरे कार्यकाल मे कार्यसमिति के सदस्यो मे सन्देह और विश्वास का अभाव कही कम था ? उसके फलस्वरूप हमारे त्याग-पत्र देने की कभी नौबत नही आई, जैसा कि, तुम्हारे ही कथना-नुसार, तुम्हे एक से अधिक बार करना पडा। जहाँ तक मुझे मालूम है, झगडा चुनाव-सघर्ष मे मेरी सफलता के बाद से शुरू हुआ। अगर मै हार गया होता तो ज्यादा सभव यही था कि जनता को 'लाछन प्रकरण के बारे मे सुनने को मिलता ही नही।

तुम यह अक्सर कहते रहते हो कि तुम अपना ही प्रतिनिधित्व करते हो, और किसी का नही, और तुम्हारा किसी भी पार्टी से सम्बन्ध नही है। अक्सर यह बात तुम इस ढग से कहते हो मानो इस बात पर तुम बडा गर्व या सुख अनुभव करते हो। साथ ही, कभी-कभी तुम अपने ही को समाजवादी—'पक्का समाजवदी' भी कहते हो। मेरी समझ मे नही आता कि कोई समाजवादी, जैसा कि तुम अपने को मानते हो, व्यक्तिवादी कैसे हो सकता है ? एक दूसरे से बिलकुल भिन्न होता है। मेरे लिए यह भी एक पहेली है कि तुम जिस व्यक्तिवाद के समर्थक हो, उसके जरिये समाजवाद कभी भी कैसे स्थापित हो सकता है। अपने पर किसी भी पार्टी का बिल्ला न लगा-कर आदमी मत्र पार्टियो का प्रिय हो सकता है, किन्तु उसका मूल्य क्या ? अगर एक आदमी किन्ही विचारो और सिद्धान्तो मे विश्वास रखता है तो उसे उन्हे साकार करने की कोशिश करनी चाहिए और यह किसी पार्टी या सगठन के जरिये ही किया जा सकता है। मैंने आज तक नही सुना कि किसी देश ने विना पार्टी के समाजवाद की स्थापना की है या उस दिशा मे कदम आगे वढाया है। महात्मा गाँधी की भी अपनी पार्टी है।

एक और विचार है, जिसका तुम अक्सर राग अलापते हो—

उसके बारे मे भी मै कुछ कहना चाहूँगा। मेरा आशय राष्ट्रीय एकता के विचार से है। मै भी उस विचार का पूरा समर्थक हूँ, जैसा कि, मैं मानता हूँ, सारा देश है। किन्तु इसकी एक प्रकट सीमा है। जिस एकता की हम कोशिश करते है या कायम रखना चाहते है वह काम करने की एकता होनी चाहिए, हाथ-पर-हाथ धरकर बैठे रहने की नही। एक पार्टी अगर दो टुकडो मे बँटती है तो यह हमेशा ही बुरा नही होता। ऐसे मौके आते हैं जब आगे बढने के लिए अलहदगी जरूरी होती है। जब रूस की सोशल डेमोक्रेट पार्टी सन् १६०३ मे टूटी और बोलशेविक और मेनशेविक अस्तित्व मे आये तो लेनिन ने राहत की साँस ली थी। मेनशेविको का भारी बोझ सिर से उतर गया और लेनिन ने महसूस किया कि आखिर तेज तरक्की का रास्ता खुल गया है। भारत मे जब 'मॉडेरेट' (नरम दली) कॉंग्रेस से अलग हो गये तो किसी भी प्रगतिशील विचार-धारा के व्यक्ति ने इस अलहदगी पर अफसोस प्रकट नही किया। उसके बाद. जब बहुत से कॉंग्रेसी सन् १६२० मे कॉंग्रेस से हट गये तो शेष कॉंग्रेसियो ने उनकी जुदाई पर आँसू नही बहाये। इस तरह की अलहदगियो से वास्तव मे आगे बढने मे मदद मिली। कुछ समय से हम एकता के अन्ध-भक्त बन रहे है। इसमे खतरा छिपा हुआ है। उसको कमजोरी को छिपाने के लिए या ऐसे समझौते करने के लिए उपयोग किया जा सकता है, जो बुनियादी तौर पर प्रगति-विरोधी होते है। तुम अपना ही उदाहरण ले लो। तुम गाँधी-इर्विन-समझौते के खिलाफ थे, किन्तु तुमने एकता के नाम पर उसे स्वीकार कर लिया। फिर, तुम प्रान्तो मे मन्त्री-पद स्वीकार करने के खिलाफ थे, किन्तु जब पद ग्रहण करने का निश्चय हुआ तो तुमने शायद उसी एकता के नाम पर इस फैसले को मान लिया। दलील की खातिर मान लो कि किसी तरह कॉंग्रेस का बहुमत सघ योजना को अमल मे लाना स्वीकार कर लेता है तो उसके विरोधी, अपने दृढ सिद्धान्तो के बावजूद, उसी एकता के नाम पर

अपने राजनैतिक विश्वासो के विरुद्ध सघ-योजना को स्वीकार करने के लिए प्रेरित हो सकते है। एक क्रान्तिकारी आन्दोलन मे एकता साध्य नही हुआ करती, साधन ही होती है। उसकी तभी तक जरूरत है, जब तक कि वह प्रगति मे सहायक होती है। ज्यो ही वह प्रगति मे वाधक वनने लगती है कि वह एक बुराई बन जाती है। मैं पूछना हूँ, अगर कॉग्रेस बहुमत से सघ-योजना को स्वीकार कर ले तो तुम क्या करोगे? क्या तुम उस फैसले के आगे सिर झुकाओगे या उसके खिलाफ बगावत करोगे?

तुम्हारा इलाहाबाद से लिखा ४ फरवरी का पत्र दिलचस्प है। उससे प्रकट होता है कि मेरे प्रति तुम्हारा रुख उस समय तक कडा नही हुआ था जैसा कि वाद मे हुआ। उदाहरण के लिए तुम अपने पत्र मे लिखते हो

"जैसा कि मैंने तुम से कहा, तुम्हारे चुनाव-सघर्ष से कुछ लाभ हुआ है तो कुछ हानि।" बाद मे तुम्हारी यह धारणा बन गई कि मेरा दुवारा निर्वाचित होना बिल्कुल बुरा हुआ। आगे तुमने लिखा है: "इस भविष्य पर हमको व्यक्तियो के अर्थ मे नही, बल्कि व्यापक दृष्टि से विचार करना चाहिए। जाहिर है कि घटना-चक्र हमारी इच्छा के अनुकूल नही घूमा, केवल इसीलिए हम मे से किसी को रुष्ट नही हो जाना चाहिए। कुछ भी होता रहे, हमे तो अपने ध्येय की पूर्ति के लिए पूरी ताकत खर्च करनी होगी।" यह स्पष्ट है कि तुम 'लाछन'-प्रकरण को वह महत्त्व नही देते थे, जो वाद मे देने लगे। यही नही, जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, 'लाछन'-प्रकरण पर वाद मे जो आन्दोलन हुआ, उसके मुख्यत जनक तुम्ही थे। इस वारे मे शायद तुम्हे याद होगा कि जब हम शान्तिनिकेतन मे मिले थे तो मैंने सुझाया था कि अगर हमारी कोशिश के वावजूद हम कार्य-समिति के सदस्यो का सहयोग हासिल न कर सकें तो हमको कॉंग्रेस को चलाने की जिम्मेदारी से मुँह नही मोड़ना चाहिए। उस समय तुम मुझसे सह-

मत हुए थे। बाद मे, पता नही किन कारणो से, तुम लोगो ने ब[illegible]
बहादुरी से दूसरे पक्ष मे जा मिले। बेशक, तुम्हे ऐसा करने का प्रत्ये[illegible]
हक हासिल था, किन्तु फिर तुम्हारा समाजवाद या वामवाद कहाँ
गया ?

अपने ४ फरवरी के पत्र मे तुमने एक से अधिक बार यह आरोप लगाया है कि मेरी अध्यक्षता के जमाने मे सघ जैसे महत्त्वपूर्ण सवालो पर चर्चा नही हुई। यह एक अजीब आरोप है जबकि तुम खुद करीब छः महीने देश से बाहर रहे। क्या तुम्हे पता है कि जब श्री भूलाभाई देसाई के कथित लन्दन वाले भाषण पर तूफान पैदा हुआ था तो मैंने कार्यसमिति को यह सुझाया था कि सघ के विरुद्ध हमे अपना प्रस्ताव दोहराना चाहिए और देश मे सघ-विरोधी प्रचार चलाना चाहिए, पर मेरा प्रस्ताव गैर-जरूरी समझा गया। क्या तुम्हे मालूम है कि बाद मे जब कार्यसमिति की बैठक सितम्बर मे दिल्ली मे हुई तो संघ की निन्दा करने वाला प्रस्ताव जरूरी समझा गया और कॉंग्रेस महासमिति ने ऐसा प्रस्ताव स्वीकार किया।

इस पत्र मे एक आरोप तुमने यह लगाया है कि मैंने कार्यसमिति मे निष्क्रिय रुख रखा और मैंने वस्तुत. निर्देशक अध्यक्ष बनने के बजाय स्पीकर की तरह काम किया। इस प्रकार का कथन कुछ न्यायोचित नही है। क्या यह कहना गलत होगा कि आमतौर पर कार्यसमिति का ज्यादातर समय तुम खुद ही ले लेते थे ? अगर कार्यसमिति मे तुम्हारे जितना वाचाल कोई दूसरा सदस्य होता तो हम अपना काम कभी निपटा ही नही पाते। इसके अलावा, दूसरे तौर-तरीके कुछ ऐसे थे कि तुम लगभग अध्यक्ष के काम अपने हाथो मे ले लेते थे। अवश्य ही मैं तुम्हारी लगाम खीचकर समिति को सँभाल सकता था, किन्तु उसके फलस्वरूप हमारे बीच खुली दरार पड जाती। बहुत साफ-साफ कहूँ तो तुम कभी-कभी कार्यसमिति मे लाड-प्यार से बिगड़े बेटे की तरह बर्ताव करते थे और अक्सर तुम्हारा पारा चढ़

जाता था। अब बताओ, तुमने अपनी तमाम 'गरमभिजाजी' और उछल-कूद से क्या नतीजे हासिल किये ? तुम आमतौर पर घटो अडे रहते और तब आखिर मे घुटने टेक देते। सरदार पटेल और दूसरो के पास तुमसे निपटने के लिए एक कुशल तरीका है। वे तुम्हे खूब बोलने देगे और अन्त मे तुमसे कहेगे, अच्छा प्रस्ताव लिख डालो। एक बार तुमको प्रस्ताव बनाने दिया कि तुम खश हो जाओगे, फिर भले ही वह प्रस्ताव कैसा भी क्यो न हो। मैंने तुम्हे अपने मुद्दे पर आखिर तक डटे रहते शायद ही कभी देखा है।

मेरे खिलाफ दूसरा अजीब आरोप यह है कि पिछले वर्ष मे कॉंग्रेस महासमिति के दफ्तर की हालत बडी खराब हो गई है। मैं नही जानता कि तुम्हारे खयाल से अध्यक्ष के क्या काम है। मेरे खयाल से वह किसी शानदार क्लर्क या शानदार सेक्रेटरी से कही ज्यादा हैसियत रखता है। अध्यक्ष की हैसियत से तुम सेक्रेटरी के काम भी अपने हाथ मे ले लिया करते थे, किन्तु यह कोई वजह नही कि दूसरे अध्यक्ष भी तुम्हारे जैसा ही बर्ताव करे। इसके अलावा, मुख्य कठिनाई यह थी कि कॉंग्रेस महासमिति का दफ्तर काफी दूर था और जनरल सेक्रेटरी मेरी पसन्द का नही था। यह कहने मे कोई अति-शयोक्ति न होगी कि जैसा एक सेक्रेटरी को अपने प्रेसीडेण्ट के प्रति वफादार होना चहिए, वैसा जनरल सेक्रेटरी वफादार न था। (मै जान बूझकर बहुत नरम शब्दो मे यह बात कह रहा हूँ।) असल मे कृपलानी जी को मेरी इच्छा के विरुद्ध थोपा गया। शायद तुम्हे याद होगा कि मैंने कॉंग्रेस महासमिति के दफ्तर का एक भाग कलकत्ता लाने की भरसक कोशिश की, ताकि मैं उसके काम की ठीक तरह से देखभाल कर सकूँ। किन्तु तुम सबने उसका विरोध किया और अब तुम उल्टे मुझे ही कॉंग्रेस महासमिति के दफ्तर की कमियो के लिए दोष देते हो। अगर कॉंग्रेस महासमिति का दफ्तर, जैसा तुम कहते हो, सचमुच बिगडा है तो इसके लिए मैं नही, बल्कि जनरल सेक्रेटरी

जिम्मेदार है। तुम मुझ पर यही आरोप लगा सकते हो कि मेरे अध्यक्ष-काल मे जनरल सेक्रेटरी के काम मे कम हस्तक्षेप हुआ और उसे पहले की अपेक्षा वास्तव मे ज्यादा अधिकार प्राप्त रहे। फल-स्वरूप, अगर सचमुच कांग्रेस महासमिति के दफ्तर की हालत खराब हुई है तो उसकी जिम्मेदारी मुझ पर नही, बल्कि जनरल सेक्रेटरी पर है।

मुझे आश्चर्य है कि बिना पूरे तथ्य जाने तुमने यह आरोप लगाया है कि मैने बम्बई श्रमिक विवाद विधेयक को उसकी मौजूदा शक्ल मे स्वीकृत होने से रोकने की भरसक कोशिश नही की। असल मे, कुछ समय से, तथ्यो का पता लगाने की चिन्ता किये बिना तुमने मेरे खिलाफ आरोप लगाने की, कभी-कभी सार्वजनिक रूप से लगाने की, कला का विकास कर लिया है। अगर तुम जानना चाहते हो कि मैंने इस बारे मे क्या किया तो सबसे अच्छी बात यह होगी कि सरदार पटेल से पूछ देखो। जो बात मैने नही की, वह यही कि मैने इस सवाल पर उनके साथ नाता नही तोडा। अगर यह अपराध है तो मै अभियोग को स्वीकार करता हूँ। प्रसगवश, क्या तुम्हे पता है कि बम्बई की कांग्रेस-समाजवादी पार्टी ने विधेयक का उसके मौजूदा रूप मे समर्थन किया था? और अब तुम्हारी अपनी बात ले लो। क्या मैं पूछ सकता हू कि तुमने इस विधेयक की स्वीकृति को रोकने के लिए क्या किया? जब तुम बम्बई लौटे तो तुम जरूर कुछ कर सकते थे। मेरे खयाल से कुछ श्रमिक कार्यकर्ता तुमसे मिले थे और उनको तुमने कुछ उम्मीद बधाई थी। मेरी अपेक्षा तुम अच्छी स्थिति मे थे, कारण तुम मेरी अपेक्षा कही अधिक गाधीजी को प्रभावित कर सकते हो। अगर तुमने जोर लगाया होता तो जहाँ मै विफल रहा, वहाँ तुम सफल हो सकते थे। क्या तुमने ऐसा किया?

एक और मामला है, जिसके बारे मे तुम अक्सर मेरे ऊपर तीर

चलाया करते हो। वह है मिला-जुला मन्त्रिमडल बनाने का विचार। सिद्धान्तवादी राजनीतिज्ञ की तरह तुमने हमेशा के लिए यह तय कर दिया कि मिला-जुला मन्त्रिमडल दक्षिण-पथी कदम होगा। इस प्रश्न पर अपने आखिरी निर्णय की घोषणा करने से पहले क्या तुम एक पखवार के लिए असम का दौरा करोगे और फिर आकर मुझे बताओगे कि क्या वतमान मिला-जुला मन्त्रि-मडल प्रगतिशील रहा है अथवा प्रतिक्रियावादी ? इलाहाबाद मे बैठकर बुद्धिमत्ता-भरे ऐसे उद्गार प्रकट करने से क्या फायदा, जिनका वास्तविकता से कोई सबध नही ? सादुल्ला-मन्त्रिमडल के पतन के बाद जब मैं असम गया तो मुझे एक भी ऐसा कॉग्रेसी नही मिला, जो मिला-जुला मन्त्रि-मडल बनाने पर जोर न देता हो। तथ्य यह है कि प्रात प्रतिक्रिया-वादी मन्त्रिमडल के नीचे कराह रहा था। हालत बद-से-बदतर होती जा रही थी और भ्रष्टाचार रोजाना बढता जा रहा था। जब नये मन्त्रिमडल ने पद ग्रहण किया तो असम की कॉग्रेस विचारधारा को मानने वाली समस्त जनता ने राहत की साँस ली और नये विश्वास और आशा का अनुभव किया। अगर तुम पदग्रहण की नीति को सारे ही देश के लिए छोडने को तैयार हो तो मैं भी असम और बगाल जैसे प्रान्तो के कॉग्रेसजनो के साथ-साथ उसका स्वागत करूँगा। किन्तु अगर कॉग्रेस-पार्टी सात प्रातो मे पदग्रहण करती है तो यह जरूरी है कि दूसरे प्रातो मे मिले-जुले मन्त्रिमडल स्थापित हो। अगर तुम्हे पता हो कि मिला-जुला मंत्रिमडल बनने के बाद तमाम बाधाओ और कठिनाइयो के बावजूद, असम की हालत मे कितना सुधार हुआ है तो तुम अपनी राय बिलकुल बदल लोगे।

बगाल के बारे मे, मुझे भय है कि तुम करीब-करीब कुछ नही जानते। अपनी अध्यक्षता के दो वर्षों मे तुमने इस प्रान्त का कभी दौरा नही किया, हालाँकि इस प्रान्त को जिस भयकर दमन मे से गुजरना पडा, उसे देखते हुए उसकी और दूसरे प्रान्तो की अपेक्षा

कही अधिक ध्यान देने की जरूरत थी। क्या तुमने कभी यह मालूम करने की परवा की कि हक-मन्त्रिमडल के पद ग्रहण करने के बाद इस प्रान्त मे क्या हुआ ? अगर तुमने की होती तो तुम एक सिद्धांत-वादी राजनीतिज्ञ की तरह बात न करते। तब तुम मुझसे सहमत होते कि अगर इस प्रान्त को बचाना हो तो हक-मन्त्रिमडल को खत्म होना चाहिए और मौजूदा परिस्थितियो मे सर्वश्रेष्ठ शासन की यानी मिले-जुले मन्त्रिमडल की स्थापना होनी चाहिए। किन्तु यह सब कहते समय मुझे यह भी कहना चाहिए कि मिले-जुले मन्त्रिमडल का सवाल इसलिए उठता है कि पूर्ण-स्वराज्य का सक्रिय सघर्ष स्थगित कर दिया गया है। इस लडाई को कल शुरू कर दो और मिले-जुले मन्त्रि-मडल की सारी चर्चा हवा मे उड जायगी।

अब मै तुम्हारे दिल्ली के २० मार्च के तार का जिक्र करूँगा। उसमे तुमने कहा है : "अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और नाजुक राष्ट्रीय समस्याओ की दृष्टि से कार्यसमिति का गठन और दफ्तर के इन्तजाम जरूरी है।" आदि। कार्य समिति के शीघ्र गठन की जरूरत को हर कोई समझ सकता है, किन्तु तुम्हारे तार मे मेरी कठिनाइयो के लिए तनिक भी सहानुभूति नही दिखाई दी। तुम अच्छी तरह से जानते हो कि अगर पन्त का प्रस्ताव पेश और स्वीकृत न हुआ होता

महात्माजी से कैसे मिल सकता था ? और क्या तुम भूल गये कि गत वर्ष हरिपुरा कांग्रेस के छ सप्ताह बाद कार्यसमिति की बैठक हुई थी ? क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारा तार अखबारो मे छपने के बाद मेरे खिलाफ कुछ लोगो ने और अखबारो ने जो आन्दोलन शुरू किया, वह सर्वथा शुद्ध हेतु से प्रेरित था ? क्या मैं जान-बूझकर कार्य-समिति को नियुक्त न करके कांग्रेस के मामलो मे गतिरोध पैदा कर रहा था ? अगर आन्दोलन सर्वथा उचित न था—तो क्या एक सार्व-जनिक नेता की हैसियत से तुम्हारा यह कर्तव्य न था कि तुम मेरे पक्ष मे कुछ शब्द बोलते—उस समय जबकि मैं बिस्तर मे पडा था ?

मै तुम्हारे इस आरोप की चर्चा कर चुका हूँ कि मेरी अध्यक्षता के जमाने मे कॉग्रेस महासमिति की हालत खराब हुई है। इस बारे मे मैं एक शब्द और कहूँगा। क्या तुम्हे यह खयाल नही हुआ कि तुम मेरी निन्दा करने की कोशिश मे जनरल सेक्रेटरी की निन्दा करने के अलावा दफ्तर के सारे कर्मचारियो की निन्दा कर रहे हो ?

तुमने अपने तार मे 'नाजुक राष्ट्रीय समस्याओ' का जिक्र किया, जिनके लिए तुम कार्यसमिति के गठन की माँग करते हो, हालाँकि तुम कहते हो कि तुम कार्यसमिति मे नही रहना चाहते। कृपया बताओ भी कि ये 'नाजुक राष्ट्रीय समस्याएँ' क्या है ? तुमने अपने एक पिछले पत्र मे कहा था कि राजकोट और जयपुर की समस्या ही अत्यन्त नाजुक समस्या है। पर चूंकि महात्माजी इन मामलो से निपट रहे है, एक तरह से वे कार्यसमिति और महासमिति के कार्यक्षेत्र से बाहर है।

तुमने अपने तार मे अन्तर्राष्ट्रीय स्थित का भी जिक्र किया है। मैंने अखबारो मे देखा है कि तुम्हारे द्वारा इसका उल्लेख होने के बाद ऐसे कई आदमी, जिनमे तनिक भी अन्तर्राष्ट्रीय समझ नही है, जो अन्तर्राष्ट्रीय मामलो को समझने की कोई इच्छा नही रखते और जो

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का भारत के हित मे उपयोग भी नही करना चाहते, बोहेमिया और स्लोवाकिया की किस्मत के बारे मे चिन्तित हो उठे हैं। जाहिर है कि यह मुझ पर प्रहार करने का अच्छा हथियार मिल गया है। पिछले दो महीनो मे ऐसा कुछ नही हुआ, जिसकी आशा नही थी। चेकोस्लोवाकिया मे हाल मे जो कुछ हुआ, वह म्युनिख-समझौते का नतीजा है। असल मे यूरोप से जो जानकारी मुझे मिलती रही है, उसके आधार पर मैं पिछले छः महीनों में कांग्रेसी मित्रो से कहता रहा हूँ कि वसन्त मे यूरोप मे सकट पैदा होगा, जो गरमियों तक जारी रहेगा। इसलिए मैं अपनी ओर से गतिवान कदम उठाने पर जोर देता आया—वह यह कि ब्रिटिश सरकार को पूर्ण स्वराज्य की मांग करने वाली चुनौती दी जाय। मुझे याद पड़ता है कि जब मैंने पिछले दिनो (शान्तिनिकेतन या इलाहाबाद मे) एक बार तुमसे अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की चर्चा की थी और उसके आधार पर ब्रिटिश सरकार के सामने राष्ट्रीय माँग पेश करने की दलील दी थी तो तुमने ठंडा उत्तर दिया था कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कुछ साल जारी रहने वाला है। अचानक ही तुम अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के बारे मे बड़े उत्साही हो गये हो। किन्तु मैं यह बता दूं कि तुम्हारी ओर से या गांधीवादी समुदाय की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का हमारे हित मे उपयोग कर लेने का कोई इरादा नजर नही आता। तुम्हारे तार मे यह भी लिखा है कि अन्तर्राष्ट्रीय संकट पर विचार करने के लिए कांग्रेस महासमिति की बैठक जल्दी होनी चाहिए। किस मकसद के लिए ? एक लम्बा-चौड़ा प्रस्ताव पास करने के लिए, जिसका कोई व्यावहारिक नतीजा न हो ? या तुम अपनी राय बदल लोगे और कांग्रेस महासमिति से कहोगे कि अब हमको पूर्ण स्वराज्य की ओर कदम बढ़ाना चाहिए और एक चुनौती की शक्ल मे राष्ट्रीय मांग ब्रिटिश सरकार के सामने पेश करनी चाहिए ? नही, मैं महसूस करता हूँ कि या तो हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर गम्भीरतापूर्वक

विचार करे और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का अपने हित मे लाभ उठाये या फिर उसकी बात ही न करे। अगर हम कुछ करना-धरना नही चाहते तो खाली दिखावा करना वेकार है।

मुझे बताया गया है कि जब तुम दिल्ली मे थे तो तुमने महात्माजी को यह सदेश दिया कि उन्हे मौलाना आजाद से मिलने इलाहाबाद जाना चाहिए। यह जानकारी विलकुल गलत हो सकती है। लेकिन अगर गलत न हो तो क्या तुमने उनको सुझाया कि उन्हे साथ-साथ धनबाद भी हो आना चाहिए? जब मेरे सेक्रेटरी ने तुमको २४ मार्च को टेलीफोन किया कि अखबारो मे यह छपा है कि डाक्टरो की मनाही के कारण महात्माजी धनबाद नही आ सकते और इसका आप खडन करे तो तुमने ऐसी कोई इच्छा प्रकट नही की कि महात्माजी धनबाद आये, हालाँकि तुम इस बात के लिए बडे उत्सुक थे कि मुझे गाँधीजी की इच्छा अनुसार कार्यसमिति के गठन की घोषणा कर देनी चाहिए। टेलीफ़ोन पर तुमने यही कहा कि धनबाद गाँधीजी के कार्यक्रम मे शामिल नही है। क्या तुम्हारे लिए महात्माजी को धनबाद आने के लिए रजामद करना इतना अधिक मुश्किल था? क्या तुमने कोशिश की? तुम कह सकते हो कि उन्हे राजकोट के मामले मे वापस दिल्ली लौटना था। किन्तु उनकी वाइसराय से मुलाकात पूरी हो चुकी थी और जहाँ तक सर मारिस ग्वायर से मिलने की बात है, सरदार पटेल को मिलना था, न कि महात्माजी को।

राजकोट-प्रकरण के सम्वन्ध मे मैं कुछ शब्द कहना चाहूँगा। समझौते की शर्तो को, जिनके आधार पर महात्माजी का उपवास समाप्त हुआ, तुम काफी अच्छा समझते हो। कोई भी हिन्दुस्तानी ऐसा नही होगा, जिसे महात्माजी का जीवन बच जाने पर खुशी और राहत अनुभव नही हुई होगी। किन्तु जब हम समझौते की शर्तो के तर्क की वारीक निगाह से जाँच-पड़ताल करते है तो हमे क्या मालूम

होता है ? पहली वात तो यह कि सर मारिस ग्वायर को, जो सघ-योजना के अविभावक अग है, पच मान लिया गया। क्या इसका अर्थ यह नही कि हमने अप्रत्यक्ष रूप मे सघ-योजना को स्वीकार कर लिया ? दूसरे, सर मारिस न तो हमारे आदमी है, और न स्वतत्र एजेट ही है। वह सीधे-सादे रूप मे सरकार के आदमी है। ब्रिटिश सरकार के साथ अपने किसी भी विवाद मे अगर हम किसी हाईकोर्ट जज या सेशन जज को पच मान ले तो ब्रिटिश सरकार इसके लिए खुशी से राजी हो जायगी। उदाहरण के लिए विना मुकद्दमा चलाये नजरवद राजवदियो के मामले मे ब्रिटिश सरकार हमेशा गर्व के साथ कहती है कि तत्सवधी कागजात दो हाईकोट या सेशन जजो के सामने रखे जाते है। किन्तु हमने इस व्यवस्था को कभी सतोषजनक नही स्वीकार किया। फिर राजकोट के मामले मे भिन्न तरीका क्यो स्वीकार किया गया ?

इस वारे मे एक और मुद्दा है, जिसे मैं नही समझ पाता और जिस पर तुम प्रकाश डाल सकते हो। महात्मा गाँधी वाइसराय से मिलने गये और उनकी भेट हो चुकी। अव वह वहाँ क्यो इन्तजार कर रहे हैं ? अगर सर मारिस ग्वायर को जरूरत हो तो सरदार पटेल को इन्तजार करना चाहिए। अगर महात्माजी वाइसराय से मुलाकात कर चुकने के वाद दिल्ली मे ठहरे रहते हैं तो क्या इससे अप्रत्यक्ष रूप मे ब्रिटिश सरकार की प्रतिष्ठा नही वढ़ती ? तुमने अपने २४ मार्च के पत्र मे लिखा था कि महात्माजी का कई दिन तक दिल्ली मे ठहरने का निश्चय हो चुका है और वह वाहर नही जा सकते। मैं तो ऐसा सोचता हूं, महात्माजी के लिए दिल्ली मे इन्तजार करते रहने के वजाये और कई जरूरी काम करने को पडे है। अगर महात्माजी थोड़ा भी परिश्रम करे तो जिस दवाव और गति-रोध आदि की तुम इतनी शिकायत करते हो, उसे देखते-देखते समाप्त किया जा सकता है। किन्तु इस वारे मे तुम चुप हो और सारा दोष

मेरे लिए सुरक्षित रखते हो।

अपने २३ मार्च के पत्र मे तुमने लिखा है : "मैंने बाद मे दूसरे लोगो को यह गोलमोल बात करते पाया कि कांग्रेस महासमिति की बैठक बुलाई जाय। मैं ठीक-ठीक नही जानता कि इन आधारो पर कौन सोच रहा है और महासमिति की बैठक बुलाने का उनका क्या उद्देश्य है, सिवा इसके कि उससे स्थिति और स्पष्ट हो सके।" खबरे काफी तेजी से और दूर-दूर फैलती हैं और मुझे सूचना मिली है कि कुछ केन्द्रीय एम० एल० ए० महासमिति की बैठक जल्दी बुलाने के अनुरोध-पत्र पर महासमिति के सदस्यो के हस्ताक्षर प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं, मानो मैं महासमिति की बैठक बुलाने को टाल रहा हूँ और जान-बूझकर काग्रेस के मामलो मे गतिरोध पैदा कर रहा हूँ। क्या तुमने इस तरह की चर्चा दिल्ली मे या अन्यत्र नही सुनी ? यदि हाँ, तो क्या तुम समझते हो, यह कदम न्यायोचित और सम्मान-नीय है ?

इसी मार्च २३ के पत्र मे तुम राष्ट्रीय मांग के प्रस्ताव और शरत् द्वारा उसके विरोध का जिक्र करते हो। जहाँ तक शरत् के रुख का संबध है, वह शायद इस बारे मे तुम्हे लिखने वाले हैं। किन्तु यह कहना सही नही है कि उनके विरोध के अलावा प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। मैंने कई लोगो से सुना है कि उन्होंने प्रस्ताव का विरोध किया, इसलिए नही कि उसमे कुछ बुनियादी खराबी थी, बल्कि इसलिए कि उसका कोई व्यावहारिक अर्थ नही था। वह भी उन निर्दोष प्रस्तावो जैसा था जो हर कांग्रेस-अधिवेशन के अन्त मे पेश किये जाते हैं, अनुमोदित होते हैं और या तो सर्वसम्मति से या मूक रूप से पास किये जाते है। वह कौन-सा अमली नेतृत्व देता है ?

इस बारे मे मैं यह कहे बिना नही रह सकता कि पिछले वर्षो मे कांग्रेस के प्रस्ताव बहुत ज्यादा लम्बे-चौड़े रहे हैं। उन्हे 'प्रस्तावो' की अपेक्षा 'निबध' कहना ज़्यादा ठीक होगा। पिछले हमारे प्रस्ताव

सक्षिप्त, विषय-सगत और व्यावहारिक होते थे। मेरा खयाल है कि हमारे प्रस्तावो को यह नई शक्ल देने मे तुम्हारा हाथ रहा है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं लम्बे निबधो के बजाय अमली प्रस्ताव ज्यादा पसद करता हूँ।

तुमने अपने पत्रो मे एक से अधिक बार आज की काग्रेस मे 'दुस्साहसिक प्रवृत्तियो' का जिक्र किया है। तुम्हारा ठीक-ठीक आशय क्या है? मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारे ध्यान मे कुछ खास व्यक्ति है। क्या तुम नये आदमियो और औरतो के काँग्रेस मे आने और प्रमुखता प्राप्त करने के विरुद्ध हो? क्या तुम चाहते हो कि काँग्रेस का शीर्ष नेतृत्व चन्द व्यक्तियो के लिए ही सुरक्षित रहे? अगर मेरी याददाश्त मुझे धोखा नही देती तो सयुक्त प्रान्त की प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी की परिषद ने एक बार इस आशय का नियम स्वीकार किया था कि किन्ही काँग्रेस संस्थाओ मे एक व्यक्ति तीन साल से अधिक प॰ [illegible]िकारी न रहे। प्रकटत: यह नियम मातहत सस्थाओ के लिए था और उच्च सस्थाओ मे एक ही व्यक्ति उसी पद पर दसो साल तक रह सकता है। तुम कुछ भी कहो, हम सब, एक अर्थ मे, दुस्साहसी हैं, कारण, जीवन एक दीर्घ दुस्साहस है। मैने तो सोचा था कि जो लोग अपने को प्रगतिशील कहते है, वे काग्रेस सगठन की नई श्रेणियो मे नये खून का स्वागत करेगे।

तुम्हारे लिए यह सोचने का कोई कारण नही है कि शरत् का पत्र मेरी ओर से लिखा गया। (यहाँ मैं तुम्हारे २४ मार्च के पत्र का हवाला दे रहा हूँ) उनका अपना व्यक्तित्व है। जब वह यहाँ से कलकत्ता लौटे तो उन्हे गाधीजी का तार मिला कि वह उन्हे पत्र लिखे। अगर गाँधीजी ने इस तरह का तार नही दिया होता तो मुझे शक है कि उन्होने पत्र लिखा भी होता। किन्तु मैं यह कह दू कि महात्माजी को लिखे गये उनके पत्र में कुछ ऐसी बाते है जो मेरी भावनाओ को प्रकट करती हैं।

शरत् के नाम तुम्हारे पत्र के बारे मे मुझे कुछ कहना है। मैं तुम्हारे पत्र से यह अर्थ लेता हूं कि त्रिपुरी मे वातावरण आदि के बारे मे उन्होने जो कुछ लिखा, उसपर तुम्हे आश्चर्य हुआ। इस पर मुझे आश्चर्य होता है। हालांकि मे स्वतत्रतापूर्वक आ-जा नही सकता था, किन्तु स्वतत्र जरियो से उस जगह के दूषित वातावरण की मुझे काफी रिपोर्ट मिली थी। मेरी समझ मे नही आता कि तुम उस जगह आये-गये और फिर भी कैसे तुम्हें उसकी गव नही आई या तुमने उसके बारे मे सुना नही ?

दूसरे, तुम्हारा यह कहना है कि त्रिपुरी मे दूसरे सवालो के विचार पर व्यक्तिगत प्रश्नो की छाया पडी। तुम्हारा कहना सही है। सिर्फ तुमने यह और नही जोडा कि यद्यपि तुम इस विपय पर विषय-सीमित या खूले अधिवेशन मे बोले नही, पर तुमने इन व्यक्तिगत प्रश्नो को तीव्र बनाने मे और उन्हे सार्वजनिक दृष्टि मे प्रधानता दिलाने मे और किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक योग दिया।

तुमने शरत् के नाम अपने पत्र मे कहा है: "किसी के लिए भी यह कहना वेहूदा वात थी कि सुभाष की बीमारी बनावटी है और मेरे किसी भी साथी ने मेरी जानकारी मे ऐसा इशारा नही किया।" जब तुम ऐसा कहते हो तो लगता है कि तुमने अपनी आँखो पर विल्कुल रगीन चश्मा चढा दिया है, जबकि त्रिपुरी मे और उसके पहले मेरे राजनैतिक विरोधियो ने सब जगह इस आशय का व्यवस्थित प्रचार किया था। यह एक और अतिरिक्त प्रमाण है कि पिछले कुछ समय से तुम्हारा मेरे विरुद्ध झुकाव रहने लगा है (देखो इस पत्र का प्रारभ) मैं नही सोचता कि शरत् ने त्रिपुरी के वातावरण आदि के बारे मे जो कुछ कहा है, वह जरा भी अत्युक्तिपूर्ण है।

तुमने त्रिपुरी मे सुनी कुछ अरुचिकर रिपोर्टो का जिक्र किया है। तुम्हारे लिए यह अजीव और अशोभनीय वात है कि तुम जानते हो कि वगाल ही एक ऐसा प्रान्त नही है जिसके प्रतिनिधियो के टिकट

असेम्बलियो और परिषदो के तमाम काँग्रेसी सदस्यो का सयुक्त समर्थन प्राप्त नही होगा तो वे कैसे अपना काम चला सकेंगे ?

क्या तुम इससे सहमत नही कि त्रिपुरी-काँग्रेस मे (विषय-समिति मे भी) पुराने नेतृत्व ने जनता की दृष्टि मे निष्क्रिय रुख रखा और मन्त्री रंगमच पर हावी रहे ? जब शरत् ने यह कहा तो क्या वह गलती पर थे ?

यह जले पर नमक छिडकना हुआ जब तुम शरत् के नाम अपने पत्र मे कहते हो "त्रिपुरी-प्रस्ताव काँग्रेस-अध्यक्ष और गांधी जी के बीच सहयोग की कल्पना करता है ।"

तुम इसी पत्र मे दावा करते हो कि तुमने त्रिपुरी मे और उसके पहले काँग्रेसियो मे सहयोग करने की कोशिश की। क्या मैं तुम्हे यह अप्रिय तथ्य बताऊँ कि दूसरे लोगो की इस बारे मे दूसरी राय है ? उनके खयाल से, त्रिपुरी-काँग्रेस मे काँग्रेसजनो और काँग्रेसजनो के बीच जो खाई पैदा हुई, उसकी जिम्मेदारी से तुम बच नही सकते ।

अब मैं तुम्हे अपनी नीति और कार्यक्रम स्पष्ट करने की दावत देता हूँ—अस्पष्ट सामान्य बातो के द्वारा नही, बल्कि यथार्थवादी विस्तार के साथ । मैं यह भी जानना चाहूँगा कि तुम क्या हो, समाजवादी या वामपक्षी या मध्यमार्गी या दक्षिणपन्थी या गांधीवादी या और कुछ ?

तुम्हारे शरत् को लिखे पत्र मे दो प्रशसनीय वक्तव्य हैं, "तमाम राजनैतिक प्रश्नो पर व्यक्तिगत पहलुओ को प्रधानता मिलते देखकर मुझे सबसे अधिक दु.ख हुआ । अगर काँग्रेसियो मे सघर्ष होना है तो मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि उसे ऊँचे स्तर पर और नीति तथा सिद्धान्त के मामलो तक ही सीमित रखा जाय ।" अगर तुमने खुद अपनी बात पर अमल किया होता तो काँग्रेस राजनीति की दूसरी शक्ल हुई होती ।

जब तुम कहते हो, तुम्हारी समझ मे नही आया कि त्रिपुरी में क्या रुकावट थी तो मै तुम्हारे 'सीधेपन' की बलाये लिये बिना नही रह सकता। त्रिपुरी-कांग्रेस ने असल मे सिर्फ एक ही प्रस्ताव पास किया और वह था पन्त प्रस्ताव और उसमे तुच्छता और प्रतिशोध की भावना भरी हुई थी। सत्य और अहिंसा के हिमायतियो ने अध्यक्ष के निर्वाचन के बाद दुनिया को बताया कि वे बहुमत के रास्ते मे रोडे नही अटकायेगे और बाधा न डालने की भावना से उन्होने कार्यसमिति की सदस्यता से त्यागपत्र दिया है। त्रिपुरी मे उन्होने कार्यसमिति की सदस्यता से त्यागपत्र दिया है। त्रिपुरी मे उन्होने बाधा डालने के अलावा और कुछ नही किया। उन्हे ऐसा करने का अधिकार था, किन्तु उन्होने ऐसे दावे क्यो किये, जिन्हे असल मे उन्होने झुठलाया ?

मैं इस लम्बे पत्र को समाप्त करने के पहले कुछ और बातो का जिक्र करूँगा।

तुमने त्रिपुरी मे बगाल के प्रतिनिधियो को टिकिट जारी करने में हुई दिक्कत का जिक्र किया है। एक दिन मैंने पत्रो मे पढा कि कलकत्ता की एक सार्वजनिक सभा मे कांग्रेस महासमिति के एक सदस्य ने कहा कि उसने सयुक्त प्रान्त के कुछ प्रतिनिधियो से सुना है कि इस तरह की दिक्कत सयुक्त प्रान्त के बारे में भी पेश आई थी।

क्या तुम यह नही सोचते कि पन्त-प्रस्ताव का बुनियादी हेतु महात्माजी को मेरे विरुद्ध खडा करना था ? क्या तुम ऐसे कदम को प्रामाणिक समझते हो, जबकि मेरे और महात्माजी के बीच कम-से-कम जहाँ तक मेरी तरफ का सवाल है, कोई खाई पैदा नही हुई थी ? अगर पुराने नेता मुझसे लडना चाहते थे तो उन्होने सीधे तरीके से ऐसा क्यो नही किया ? उन्होने महात्मा गांधी को हमारे बीच में क्यों डाला ? यह चतुर युक्ति थी किन्तु सवाल यह है कि क्या यह कदम सत्य और अहिंसा के अनुकूल था ?

मै तुमसे यह पूछ चुका हूँ कि क्या तुम सरदार पटेल के इस कथन को उचित समझते हो कि मेरा दुबारा निर्वाचन देश के ध्येय के लिए हानिकर होगा ? तुमने इस बारे मे एक शब्द भी नही कहा कि उन्हे अपना यह कथन वापस लेना चाहिए। इस प्रकार तुमने अप्रत्यक्ष रूप मे उनके आरोप का समर्थन किया। अब मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि तुम महात्माजी के इस आशय के उद्गार के बारे मे क्या सोचते हो कि आखिर मैं (सुभाष) देश का शत्रु नही हूँ। क्या तुम सोचते हो कि इस प्रकार का कथन उचित था ? यदि नही तो क्या तुमने मेरे पक्ष मे महात्माजी से एक भी शब्द कहा ?

तुम कुछ लोगो की इस चाल के बारे मे क्या सोचते हो कि जब हम त्रिपुरी में थे तो दैनिक पत्रो मे यह प्रकाशित हुआ था कि पन्त-प्रस्ताव को महात्माजी का पूरा समर्थन प्राप्त है ?

और अब तुम पन्त-प्रस्ताव के बारे मे क्या सोचते हो ? त्रिपुरी मे यह अफवाह थी कि तुम उसके बनाने वालो मे से एक थे। क्या यह तथ्य है ? क्या तुम इस प्रस्ताव को पसन्द करते हो, हालांकि उस पर मतदान के समय तुम तटस्थ रहे थे ? तुम उसकी क्या व्याख्या करते हो ? क्या तुम्हारे खयाल मे वह अविश्वास का प्रस्ताव था ?

मुझे खेद है कि मेरा पत्र इतना लम्बा हो गया है। बेशक उससे तुम्हारा धीरज खो जायगा किन्तु मुझे लम्बा लिखना पडा क्योकि मुझे बहुत-सी बातें कहनी थी।

सभव है, मुझे तुम्हे फिर लिखना पडे या अखबारो मे बयान देना पडे। यह अपुष्ट रिपोर्ट है कि कुछ लेखो मे तुम मेरी अध्यक्षता की प्रतिकूल आलोचना कर रहे हो। जब मैं तुम्हारे लेख पढूँगा तो मैं इस विषय मे कुछ कह सकूँगा और हमारे काम की तुलना कर सकूँगा, खासकर इस बात की कि वामपक्ष के ध्येय को तुमने दो साल मे और मैंने एक साल मे कितना आगे बढाया।

अगर मैंने कठोर भाषा का प्रयोग किया हो या कहीं तुम्हारी भावनाओं को चोट पहुँचाई हो तो क्षमा कर देना। तुम खुद कहते हो कि स्पष्टता सबसे अच्छी वस्तु है और मैंने स्पष्ट होने की कोशिश की है, शायद नग्न रूप से स्पष्ट।

मेरी तबीयत धीमे, पर लगातार सुधर रही है। आशा है, तुम स्वस्थ होगे।

सस्नेह तुम्हारा,
सुभाष

● ● ●